

# मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

ISSN 0974-0066

UGC Care List, Group-C (Multi disciplinary), Sl.no.-15

(अंक-83, जुलाई-दिसम्बर, 2022)

**संरक्षक**

प्रो. नीलिमा गुप्ता  
कुलपति

**प्रधान सम्पादक**

प्रो. अम्बिकादत्त शर्मा

**सम्पादक**

प्रो. भवतोष इन्द्रगुरु  
प्रो. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव  
डॉ. आशुतोष कुमार मिश्र

**प्रबन्ध सम्पादक**

डॉ. छबिल कुमार मेहेर



**डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय**

सागर (मध्यप्रदेश) - 470003

दूरभाष : (07582) 297133

ई-मेल : madhyabharti.2016@gmail.com

## सम्पादकीय परामर्श मण्डल

- प्रो. आनंद प्रकाश त्रिपाठी
- प्रो. अशोक अहिरवार
- प्रो. दिवाकर सिंह राजपूत
- प्रो. डी.के. नेमा
- प्रो. नागेश दुबे
- प्रो. अनुपमा कौशिक

# मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

अंक-83, जुलाई-दिसम्बर 2022

ISSN 0974-0066 (पूर्व-समीक्षित अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका)

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

UGC Care List, Group-C (Multi disciplinary), Sl.no.-15

प्रकाशित रचनाओं के अभिमत से डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर या सम्पादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है, तथा यहाँ प्रकाशित आलेखों 'प्लेजियरिज्म' (Plagiarism) सम्बन्धी शुचिता की जिम्मेदारी लेखकों की है।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार :

मध्य भारती

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय

सागर - 470003 (म.प्र.)

|               |           |            |
|---------------|-----------|------------|
| सदस्यता शुल्क | आजीवन     | रु. 2000/- |
|               | प्रति अंक | रु. 150/-  |
| व्यक्तिगत     | रु. 200/- | रु. 4000/- |
|               | संस्थागत  |            |

दूरभाष : (07582) 297133

ई-मेल : madhyabharti.2016@gmail.com

आवरण : डॉ. छबिल कुमार मेहेर

मुद्रण :

अमन प्रकाशन

कीर्ति स्तंभ के पास, नमक मंडी, सागर (म.प्र.)

## अनुक्रम

|                                                                                                                         |    |
|-------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----|
| हिस्टोरियोग्राफी : एक विमर्शात्मक टिप्पणी<br>कमलनयन                                                                     | 7  |
| 19वीं शताब्दी की एशियाई अध्ययन और प्राचीन भारत<br>की पवित्र वास्तुकला की समझ<br>अपराजिता भट्टाचार्य                     | 17 |
| धर्मपाल की इतिहास दृष्टि<br>राकेश मिश्रा                                                                                | 28 |
| कुबेरनाथ राय और उनका भारत बोध<br>मनोज कुमार राय                                                                         | 34 |
| स्वामी रामानन्द का समाजशास्त्र<br>विमल कुमार लहरी                                                                       | 42 |
| शिवलहरा की शैलोत्कीर्ण गुफाओं का प्रलेखीकरण और<br>शिलालेखों का विवेचन<br>आलोक श्रोत्रिय, मोहनलाल चढार एवं हीरासिंह गोंड | 48 |
| ‘चाँद’ पत्रिका : स्त्री-मुक्ति के परिधान में राष्ट्र-मुक्ति का सारथी<br>रितु शर्मा                                      | 65 |
| देशज शिक्षा प्रणाली : परंपरागत भारत की नैतिक व्यवस्था<br>अनुराग कुमार पाण्डेय, मिथिलेश तिवारी                           | 73 |
| पंडित दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिंतन<br>गुंजेश गौतम                                                                   | 79 |
| कबीर का सामाजिक-राजनैतिक दर्शन : बेगमपुरा या ‘अमर-देसवा’<br>आफरीन खान                                                   | 86 |

|                                                                                                                                                                                        |     |
|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-----|
| अद्वैत वेदांत के अनुसार मनस् तत्त्व की संकल्पना<br><i>नवीन दीक्षित</i>                                                                                                                 | 95  |
| निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार<br>और विद्यालय प्रबंधन समिति<br><i>श्याम सुन्दर पटैरिया</i>                                                                                  | 104 |
| मृत्युदण्ड का प्रावधान और विश्वम्भर नाथ शर्मा<br>'कौशिक' की कहानी 'फाँसी'<br><i>आशुतोष</i>                                                                                             | 112 |
| Humanity as reflected in the views of Gautama Buddha and<br>Rabindranath Tagore : A Comparative Study<br><i>Rekha Ojha</i>                                                             | 116 |
| Indian Modernity and J. Krishnamurti<br><i>Rajesh Kumar Chaurasia</i>                                                                                                                  | 121 |
| Livelihood Challenges of Saharia Tribe:<br>A Case Study from Central India<br><i>Usha Rana</i>                                                                                         | 129 |
| Buddhist Evidences at Early Historic Vidarbha<br><i>Nishant Sunil Zodape</i>                                                                                                           | 136 |
| Understanding the relationship between unforgiveness and<br>well-being among Indian adults : A thematic analysis<br><i>Ajit Kumar Singh, Gyanesh Kumar Tiwari and Pramod Kumar Rai</i> | 143 |
| Ecofeminist Jurisprudence: Nature, Gender and Law<br><i>Pratyush Pandey Sarita Pandey</i>                                                                                              | 150 |

|                                                                                                                                                     |     |
|-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-----|
| Gandhian Economic Philosophy in the 21 <sup>st</sup> Century<br><i>Sanjay Kumar Pandey</i>                                                          | 157 |
| Participation in Self Help Group and<br>Subsequent Social Capital Attainment<br><i>Monica Verma</i>                                                 | 162 |
| Cricketers Performance Enhancement Via Focussed<br>Meditation Monitoring (FMM) and Guided<br>Selection Method<br><i>K.Mahesh. D.Prasanna Balaji</i> | 182 |
| What Justice Is : An Inquiry into Nagarjuna's Contemplation<br>on 'happiness' and 'liberation' in <i>Ratnavali</i><br><i>David Khomdram</i>         | 188 |
| Right to Self Determination and Gender<br>Recognition of Transgenders<br><i>Veena Venugopal</i>                                                     | 196 |
| Surrogacy: Ethical and Legal Issues in India<br><i>Sunaina and Ritika Sharma</i>                                                                    | 204 |
| Role of Local Government in developing Green Marketing :<br>An Environmental Management Perspective<br><i>Priyanka Mahanta, Amit Kumar Singh</i>    | 213 |
| Expounding the Conflating Terms on Working Remotely<br><i>Swasti Singh, Yashwant Singh Thakur</i>                                                   | 220 |

Subaltern Space and the Politics of Place: A Tale of Ethnic  
Exclusion of the Tea-tribes of Eastern Himalayas 227  
*Mehebab Alam, Maya Shanker Pandey*

Share of Educational Loan Non-performing Assets in 233  
Total Loan Non-performing Assets Disbursed By  
Nationalized Banks in Madhya Pradesh: An Analysis  
*Anuradha Gupta, D.K Nema*

पुस्तक समीक्षा : 246  
जीवन और इतिहास के बीच एक सम्भव संवाद  
*आशुतोष*

## हिस्टोरियोग्राफी : एक विमर्शात्मक टिप्पणी

कमलनयन

इतिहासलेखन शब्द हिस्टोरियोग्राफी शब्द का अनुवाद है। इसका अर्थ अतीत का पुनर्लेखन किया जाता है। किन्तु हिस्टोरियोग्राफी का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है। यह अजीब लग सकता है कि हिस्टोरियोग्राफी, जिसका अर्थ हम सामान्यतः इतिहास लेखन समझते हैं, अनेकार्थक है, कई अर्थों में प्रयुक्त होने वाला। प्रोफेशनल इतिहासकार इसे विभिन्न अर्थों में लेते हैं - इतिहासलेखन, ऐतिहासिक प्रणाली (हिस्टोरिकल मेथडोलॉजी), व्याख्या के विभिन्न मतों सम्प्रदायों (स्कूल्स) का विश्लेषण अथवा इतिहासलेखन का इतिहास इत्यादि। जब हम हिस्टोरियोग्राफी पर लिखी गयीं पुस्तकों को देखते हैं तो पाते हैं कि उनमें इतिहासलेखन का इतिहास ही विवेचित हुआ है।

इतिहास पर, इतिहासलेखन पर विचार, पश्चिम में ही हुआ है। भारत में इतिहासलेखन पर विमर्श कम ही हुआ है। पीछे जो पुस्तकें इस विषय पर आई हैं वे विवरणात्मक हैं, विमर्शात्मक नहीं। भारत और राजस्थान की ऐतिहासिक परम्पराओं और भारत व राजस्थान के आधुनिक इतिहासलेखन पर जो पुस्तकें आई हैं वे इसका उदाहरण हैं। अन्यत्र भी यही स्थिति है। भारत में भारतीय इतिहास-परम्पराओं को आज आधुनिक दृष्टि से किये जा रहे इतिहास के पुनर्निर्माण में एक स्रोत के रूप में देखा जाता है। इन परम्पराओं को उनके सन्दर्भ में रखकर आँकने के बजाय आँका भी आज की दृष्टि से ही जाता है। प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहासलेखन की परम्पराओं की दृष्टि एवं उसके निर्धारक तत्वों पर विचार नहीं किया जाता। राजस्थान का उदाहरण लें। राजस्थान के आधुनिक इतिहासकार - श्यामलदास, जी. एस. ओझा, जी. एन. शर्मा, एम. एस. जैन, जी. एस. एल. देवड़ा, के. एस. गुप्ता आदि सभी - जर्मन इतिहासकार लियोपोल्ड वॉन रांके की परम्परा के इतिहासकार कहे जा सकते हैं। इन सभी का उद्देश्य राजस्थान के अतीत का वस्तुनिष्ठ प्रस्तुतिकरण है। यह बात अलग है कि इनका लेखन वस्तुनिष्ठता के आदर्श को कितना साध पाया है। जी. एस. ओझा के इतिहासलेखन पर यह आक्षेप है कि वे प्राचीन व मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास के तथ्यात्मक निरूपण व व्याख्या को लेकर जितने निष्पक्ष और ईमानदार रहे हैं, उतने राजस्थान के रजवाड़ों की अंग्रेजों के साथ 1818 की संधियों के बाद के इतिहासलेखन में नहीं दिखाई देते। अपने शिल्प के प्रति ईमानदारी की कसौटी वस्तुनिष्ठता है। यही श्यामलदास और ओझा का आदर्श है, जिसे उन्होंने अपने क्लाचीन एवं मध्यकालीन इतिहासलेखन में यथासंभव निभाया भी है। किन्तु ये इतिहासकार इस आक्षेप को स्वीकार नहीं करेंगे कि उनका आधुनिक काल का इतिहास अंग्रेजों के प्रति पक्षपातपूर्ण है। जैसा हमने पीछे कहा कि राजस्थान के आधुनिक इतिहासकार रांकीय परम्परा के इतिहास लेखक कहे जा सकते हैं, यह उनकी कृतियों की तथ्यमूलकता से स्पष्ट है। इनके पहले की, दो-एक अपवादों को छोड़कर, इतिहास की किसी भी परम्परा की दृष्टि वैज्ञानिक-अनुभववादी नहीं थी। हम जानते ही हैं कि इस दृष्टि का उदय योरप में 19 वीं शताब्दी में हुआ था। इसके पहले का इतिहासलेखन वहाँ भी तथ्यनिष्ठ वैज्ञानिक-अनुभववाद पर आधारित नहीं है।

यहाँ इस बात को इंगित कर देना आवश्यक है कि इतिहासलेखन की हम किसी भी परम्परा को देखें, वह होती दृष्टि सापेक्ष ही है। दूसरे, दृष्टि कितनी भी व्यापक क्यों न हो, निरपेक्ष और सार्वभौम नहीं होती, हो नहीं सकती। वह सदैव अनेक वास्तव-संभाव्य दृष्टियों में से एक होती है। यह इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि वैज्ञानिक-अनुभववाद, जो एक समय ज्ञान की सभी विधाओं का स्वीकृत आदर्श था, आज नहीं है।

हम अपने इस लेख में हिस्टोरियोग्राफी पर एक विमर्शात्मक टिप्पणी करेंगे।

कार्ल बेकर का एक 1938 का लेख है 'व्हाट इज़ हिस्टोरियोग्राफी?', उसमें उन्होंने हिस्टोरियोग्राफी पर विस्तार से विचार किया है। वे कहते हैं कि हिस्टोरियोग्राफी को हाल ही तक यूनानी इतिहासकारों के समय से लेकर चले आ रहे इतिहासलेखन का अंकन माना जाता है, जिसमें कुछ स्थान इतिहासकारों के उद्देश्यों और दृष्टिकोणों, उनके द्वारा प्रयुक्त स्रोतों और उनके खरेपन और पठनीयता आदि को भी दिया गया है। हिस्टोरियोग्राफी पर पुस्तकों का मुख्य उद्देश्य, आधुनिक मानकों के अनुसार, ऐतिहासिक रचनाओं का मूल्यांकन प्रस्तुत करना रहा है। वे इन्हें इतिहास-ग्रंथों और इतिहासकारों पर सहायक पुस्तिकाओं (मैन्युअल्स) की तरह देखते हैं। इनके माध्यम से मूल इतिहास-ग्रंथों को पढ़े बिना उनके लेखकों के कार्य और उनकी सीमाओं की जानकारी मिल जाती है। वे हेरी एल्मर बार्न्स की हिस्टरी ऑफ हिस्टोरिकल राइटिंग से स्वयं बार्न्स द्वारा उल्लिखित उद्देश्यों को उद्धृत करते हैं। बार्न्स कहते हैं कि उनका उद्देश्य पाश्चात्य सभ्यता के प्रत्येक प्रधान युग में हुई प्रगति की बौद्धिक पृष्ठभूमि का निरूपण करते हुए, विकास के प्रत्येक कालखंड में ऐतिहासिक साहित्य किस प्रकार के सांस्कृतिक सन्दर्भ में लिखा गया और प्रत्येक युग की मुख्य विशिष्टता को उभारते हुए इस क्षेत्र में हुई प्रगति और उस युग के बड़े इतिहास लेखकों के योगदान को प्रस्तुत करना है।

उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि हिस्टोरियोग्राफी को केवल इतिहासलेखन के अर्थ में नहीं लिया जाता। वास्तव में यह इतिहासलेखन का इतिहास है, साथ ही यह इतिहासलेखन को ज्ञान की अन्य विधाओं की तरह ही सांस्कृतिक अथवा साम्यतिक सन्दर्भ में अवस्थित कर उसके स्वभाव को समझने का प्रयास भी है। ऐसे अध्ययन के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों में और विभिन्न युगों में इतिहास की, इतिहास-चेतना की, ऐतिहासिक आत्मबोध की विविध परम्पराओं की, विभिन्न सांस्कृतिक युगों में अतीत को किस रूप में देखा और याद रखा गया आदि को समझा और व्याख्यायित किया जा सकता है। इस प्रकार, हिस्टोरियोग्राफी एक ओर युगबोध की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है तो दूसरी ओर अतीत को, उसके बोध को, संजोकर रखने का भी।

इसी प्रसंग में जॉर्ज इगर्स कहते हैं कि हिस्टोरियोग्राफी न केवल अतीत को, जैसा हुआ वैसा ही, प्रस्तुत करने का प्रयास करती है, बल्कि अतीत को कैसे याद रखा गया इसका आकलन भी प्रस्तुत करती है। किन सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भों में किस प्रकार का इतिहासलेखन हुआ उसके विषय में वे उदाहरण देते हैं : वे कहते हैं कि इतिहास में और इतिहास के अध्ययन में गहरी रुचि का प्रादुर्भाव योरोप में ही नहीं पश्चिमी राष्ट्रों के कभी उपनिवेश रहे भारत जैसे देशों में भी पैदा हुए शक्तिशाली राष्ट्रवाद के साथ जुड़ा हुआ है। भारत जैसे उन राष्ट्रों ने, जो पहले राष्ट्र के रूप में अस्तित्व में नहीं थे, इतिहास के माध्यम से स्वयं को, अपनी राष्ट्रीयता को आविष्कृत किया, अपने अतीत में राष्ट्रीयता का काल्पनिक चित्र गढ़कर अपने वर्तमान को, अपनी वर्तमान राष्ट्रीयता को ऐतिहासिक आधार प्रदान किया। इगर्स आगे कहते हैं कि इतिहासकारों की राष्ट्रीय स्मृति की रचना में मुख्य भूमिका रहती है। सिद्धांततः तो कल्पना (लेजेण्ड) और ज्ञान (स्कॉलरशिप) को एक स्पष्ट विभाजक रेखा अलग करती है, किन्तु व्यवहार में ये दोनों ऐतिहासिक कल्पना में युगनद्ध रहते हैं, संयुक्त रहते हैं। यह इतिहासलेखन के एक बृहत्तर सांस्कृतिक परिवेश का अंग होने को ही प्रमाणित करता है। भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान भारत की एक राष्ट्र के रूप में खोज इसका उदाहरण है। हम एक राष्ट्र हैं, एक राष्ट्र के रूप में हमारी एक विरासत है, पहचान है, इस भावना को इतिहासकारों द्वारा भारत के सांस्कृतिक अतीत में गढ़ा गया।

इतिहासलेखन के साथ इतिहासकारों की प्रेरणा, उनके मंतव्य, उनके उद्देश्य के प्रश्न हमेशा जुड़े रहते हैं : कि उन्होंने जैसा लिखा वैसा क्यों लिखा? अतीत के लोगों को अपने अतीत में क्या महत्वपूर्ण लगा और जो उन्हें

महत्त्वपूर्ण लगा वह उन्हें महत्त्वपूर्ण क्यों लगा? वो कौन सा 'अतीत' था जिस ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ, और किस रूप में वह निरूपित होगा यह निर्धारित हुआ और क्यों और कैसे अतीत का प्रस्तुतिकरण समय के साथ बदलता रहा, और कैसे एक ही कालखंड में इन प्रश्नों के भिन्न-भिन्न उत्तर संस्कृति के भीतर विभिन्न दृष्टिकोणों को अभिव्यक्त करते हैं? क्यों इतिहासलेखन की नई नई शैलियाँ रूप लेती हैं? इन प्रश्नों पर जॉन बरो ने अपनी पुस्तक अ हिस्टरी ऑफ हिस्टरीज में इतिहासलेखन की विभिन्न शैलियों के निरूपण के माध्यम से विवेचन किया है। बरो कहते हैं कि मैंने उस अतीत पर जिसे लोगों ने अपने लिए चुना और क्यों और कैसे उसे प्रस्तुत किया, विचार किया है।<sup>1</sup>

इस प्रसंग में रिचर्ड ऐवन्स एक महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं, “ऐसे इतिहासकार विरले ही हैं जिनमें यह योग्यता और विशेषज्ञता है कि वे उस स्तर पर इतिहास विषयक सिद्धांतों पर विमर्श कर सकें जिस स्तर पर एक दार्शनिक कर सकता है। इसी कारण यह कहा ही जाता है कि ऐतिहासिक व्याख्या के प्रश्नों को दार्शनिकों के लिए ही छोड़ देना उचित है।” किन्तु ऐवन्स मानते हैं कि इतिहासकार दो कारणों से यह नहीं कर सकते। एक, क्योंकि यह स्पष्ट नहीं कि इतिहासकार के और दार्शनिक के सरोकारों में, उद्देश्यों में समानता है और दो, न ही यह कहा जा सकता कि दार्शनिक को यह ठीक से मालूम होता है कि इतिहासकार क्या करना चाहता है, उसका क्या उद्देश्य है। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि इस महत्त्वपूर्ण और मूलभूत किन्तु विवादास्पद विषय पर इतिहासकारों की कृतियों, उनकी रचनाओं के माध्यम से यह देखा जाय कि उनकी दार्शनिक पूर्वमान्यतायें क्या हैं। ऐवन्स मानते हैं कि इतिहासकारों का योगदान इस विवाद में फलदायी हो सकता है और यह कि इस महत्त्वपूर्ण विषय को दार्शनिकों अथवा सिद्धांतकारों के लिए नहीं छोड़ा जा सकता।<sup>2</sup> दूसरी और जॉर्ज इगर्स इससे उल्टी किन्तु उतनी ही महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं। “इतिहासलेखन का ऐसा इतिहास संभव नहीं है जो केवल इतिहास के दायरे में सीमित तत्त्वों को ही अपनी विवेचना का अंग बनाये।<sup>3</sup> लूद्मिला जोर्डानोवा कहती हैं कि ऐतिहासिक ज्ञान की प्रामाणिकता पर ज्यादातर प्रश्न ह्यूमैनीटीज के अन्य अनुशासनों द्वारा ही उठाये जाते रहे हैं।<sup>4</sup> इस प्रश्न का, इस विवाद का सुलझाव हिस्टोरियोग्राफी और फिलॉसोफी की परस्परता अथवा इनके मध्य की अंतरानुशासनात्मकता के माध्यम से ही संभव हैं।

किन्तु प्रश्न यह है कि इतिहासकार इतिहास में उठने वाले दार्शनिक प्रश्नों का सामना कैसे करते हैं? टैलिंग द टुथ अबाउट हिस्टरी में प्रतिष्ठित अमरीकी इतिहासकारों, जोएस एपल्बी, लिन हंट और मागरिट जेकब, ने ऐतिहासिक ज्ञान के स्वरूप पर, उसकी सत्यता पर, इसकी वैधता पर, इसकी निरपेक्षता पर, उठने वाले प्रश्नों को व्याख्यायित कर उनके उत्तर देने का सशक्त प्रयास किया है। वे इन प्रश्नों पर विचार समकालीन अमेरिकी बौद्धिक परिदृश्य में स्वयं को रखते हुए, संदर्भित करते हुए करते हैं। उन्हें लगता है कि इतिहास लेखन की परम्परा में समय समय पर होने वाले बदलाव अथवा परिवर्तन राष्ट्रों के (और वैश्विक) राजनीतिक-सांस्कृतिक जीवन में हो रहे परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में घटित होते हैं। उनका प्रधान तर्क यह है कि विशेष रूप से उत्तर-आधुनिक चुनौती और उससे निर्धारित दार्शनिक प्रश्नों को इसी उत्तर-आधुनिक परिप्रेक्ष्य में ही समझा जा सकता है। वे कहती हैं, लगभग सबका ज्ञान के मूल्य एवं उसकी प्रामाणिकता और असंदिग्धता से विश्वास डिगा हुआ है। आज बौद्धिक परिवेश में संदेहवाद छाया हुआ है, एक के बाद एक, विचार के सभी क्षेत्र इससे ग्रसित होते चले गए हैं।<sup>5</sup> ऐसा क्यों है? ज्ञान के वर्तमान संकट का प्रमुख कारण उनके अनुसार बौद्धिक और राजनीतिक निरपेक्षतावाद और सर्वसत्तावाद (एक्सोल्यूटिज्म) का पतन है। जिसके स्थान पर ज्ञान के विविध दृष्टिकोणों, परिप्रेक्ष्यों को मान्यता मिली है। लेखक मानते हैं कि सत्य को लेकर न केवल विज्ञान में अपितु इतिहास और राजनीति में भी, संदेहवाद और सापेक्षतावाद का स्रोत अमेरिकी समाज की जनतांत्रिकता के प्रति निष्ठा और आग्रह में निहित है।<sup>6</sup> ‘विश्वविद्यालय के लोकतंत्रिकरण’ (डेमोक्रेटाईजेशन) के कारण विश्वविद्यालयीय शिक्षा के विस्तार और विभिन्न जातीय समुदायों के उसमें प्रवेश पा जाने के कारण बढ़ते जातीय (एथनिक) वैविध्यीकरण के परिणामस्वरूप अकादमिक संस्थानों में व्याप्त पूर्वाग्रह और समाज में व्याप्त इसकी राजनितिक और सांस्कृतिक प्रेरणायें उच्च शिक्षा में प्रवेश पाने वालों नये

वर्गों में असंतोष और संदेहवाद का कारण बनीं। 20वीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश के आते आते एनलाइटनमेंट दृष्टि (विज्ञान) - अंधविश्वास और अज्ञान को मिटा देने वाले और सतत विकास के मार्ग पर ले जाने वाले परम, मूल्य-निरपेक्ष सत्य से संपन्न दृष्टि - अपना औचित्य, प्रासंगिकता और विश्वसनीयता खो चुकी थी।<sup>9</sup> वे नए वर्ग, जो अब विश्वविद्यालयों में प्रविष्ट हुए थे, उनके लिये उत्तर-आधुनिक संदेहवाद अन्यो की अपेक्षा अधिक स्वीकार्य था।<sup>10</sup> विश्वविद्यालयों के लोकतंत्रीकरण से संदेहवाद और सापेक्षतावाद द्वारा प्रस्तुत चुनौती अब अकादमिक विमर्श के केंद्र में आ खड़ी हुई। इस प्रकार, अब संदेहवाद ज्ञान की सभी विधाओं में एक समस्या, एक चुनौती बन गया। 20वीं सदी के आखिरी पड़ाव पर 19वीं सदी की सत्य और वस्तुनिष्ठता की परिभाषायें अब अमान्य हो चली थीं। अब समय इन पर पुनर्विचार का था। अब इतिहासकारों का भी यह दायित्व था कि वे स्पष्ट करें कि उनके उद्देश्य क्या हैं और उन्हें प्राप्त करने के लिए वे क्या कर रहे हैं, कैसे कर रहे हैं, और उनके उद्यम की मूल्यवत्ता क्या है, महत्त्व क्या है?

सामान्यतः हिस्टोरियोग्राफी के विश्लेषण विषयक समस्त प्रश्न दार्शनिक प्रश्न हैं। क्या अतीत का ज्ञान संभव है? अतीत के ज्ञान की सीमाएँ क्या हैं? अतीत के प्रामाणिक व अप्रामाणिक विवरण में विवेक का क्या आधार है? अतीत की तर्क संगत व्याख्या को कपोल कल्पना से किस प्रकार अलग किया जा सकता है? दूसरे शब्दों में, हम यह कैसे जान सकते हैं कि हम जो कहते हैं कि 'यह हुआ था' वो 'वास्तव में हुआ था'? ये सभी प्रश्न अतीत के प्रामाणिक वर्णन और ज्ञान के अन्वेषण से सम्बंधित हैं।<sup>11</sup>

सामान्यतः इतिहासकार अपने लिए ज्ञान के 19वीं सदी के वैज्ञानिक विधि के मॉडल को ही स्वीकार करते चले आये हैं, आज भी करते हैं। प्रत्यक्षवादी-वस्तुवादी चिंतन 20वीं शताब्दी के मध्य तक अपनी पराकाष्ठा पर था। सामाजिक विज्ञानों पर इसका गहरा प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यहाँ तक कि टॉयन्बी जैसे स्पैक्यूलेटिव इतिहासकार भी अपने इतिहासलेखन को अनुभववादी-वस्तुवादी इतिहासलेखन कहलवाना चाहते हैं। यहाँ महत्त्व की बात यह है कि वैज्ञानिक-पद्धति पर आधारित वैज्ञानिक मॉडल का साध्य अथवा लक्ष्य मूल्य-निरपेक्ष, निष्पक्ष प्रयोगों पर आधारित वस्तुनिष्ठता है। इतिहास लेखन पर वैज्ञानिकतावाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रभाव अभी भी देखा जा सकता है। इतिहासकार एक निष्पक्ष अन्वेषक के रूप में प्रवृत्त होकर अतीत 'जैसा था', उसका 'वैसा ही' पुनर्निर्माण करने का प्रयास करता है। इतिहासकार का यह पुराना आदर्श है कि वह अतीत को, जैसा था, वैसा ही प्रस्तुत करे। 19वीं सदी में जर्मनी के रांके व अन्य इतिहासवादियों का यही आदर्श था। आज भी इतिहासकार वस्तुनिष्ठ इतिहास लिखने का दावा करते हैं।

अब प्रश्न यह है कि क्या ऐसा संभव है? इस विषय पर विचार हम इतिहास के स्वरूप और ऐतिहासिक तथ्यों की प्रकृति पर चर्चा के माध्यम से करेंगे। जिससे हमें आधुनिक इतिहास लेखन और उसके समक्ष उत्तर-आधुनिक चुनौती और इस चुनौती के इतिहासलेखन की फिलॉसफी पर प्रभाव को समझने में सुविधा होगी। वैसे हम ऊपर चर्चा में इंगित कर आये हैं कि इतिहास-बोध व लेखन संस्कृति अथवा सांस्कृतिक युगों के सापेक्ष होता है।

आज इतिहास शब्द का अर्थ प्राचीनकाल में प्रचलित अर्थ से भिन्न है। आजकल 'आख्यान' और इतिहास में भेद किया जाता है। प्राचीनकाल में यह भेद नहीं किया जाता था। इस कारण दैवीय आख्यान, वीर गाथायें और संत-महात्माओं के चरित् क्रमशः मिथ, हीरोइक-लेजेण्ड और हेजियोग्राफी कहे जाते हैं। ये समस्त विधायें अतीत सम्बन्धी होने के बावजूद इतिहास नहीं मानी जातीं। इन्हें भाव-कल्पनात्मक अथवा भावानुप्रेरित-कल्पना-प्रसूत माना जाता है। उदाहरण के लिये राजस्थान कहलाने वाले भूभाग में जो मध्यकालीन इतिहास-परम्परायें-वात, ख्यात, विगत आदि - मिलती हैं वे इसी कोटि में रखी जाती हैं। राजस्थान के आधुनिक इतिहासकारों ने और उनसे पहले कर्नल टॉड ने - इन परम्पराओं का प्रयोग वर्तमान राजस्थान के रजवाड़ों के इतिहास के पुनर्निर्माण में किया है। इसी प्रकार, वैदिक नारांसी गाथायें, पुराण, रामायण, महाभारत आदि परम्परा में इतिहास कहे जाने वाले ग्रन्थ और चरित् ग्रन्थ, मध्यकालीन निबन्ध ग्रन्थ आदि सभी आधुनिक इतिहासकारों द्वारा अतीत पुनर्लनमाण में स्रोत के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। इन्हें इतिहास नहीं माना जाता।

इतिहास की आधुनिक अवधारणा की जड़ें 17वीं-18वीं सदी में योरप में हुई वैज्ञानिक क्रान्ति (साइंटिफिक रेवोल्यूशन) व उसके बाद आये एनलाईटनमेंट में देखी जा सकती हैं। योरपीय आधुनिकता व आधुनिकतावाद भी एनलाईटनमेंट का ही परिणाम है। यही वह समय है जब अन्य समाज विज्ञानों के साथ-साथ ऐतिहासिक ज्ञान के स्वरूप एवं इसकी ज्ञानमीमांसा पर विचार होना आरम्भ हुआ। प्राकृतिक एवं मानव विज्ञान धर्म की पकड़ से मुक्त हुए। इतिहास समेत सभी मानव विज्ञानों का लौकिकीकरण (सैक्यूलराइजेशन) घटित हुआ। ऐतिहासिक प्रगति अब किन्हीं दैवीय उद्देश्यों की सिद्धि में नहीं अपितु लौकिक लक्ष्यों की सिद्धि में देखी जाने लगी। इस काल में हुई प्राकृतिक विज्ञानों की प्रकृति के रहस्यों को खोलने में मिली अभूतपूर्व सफलता के प्रभाव के परिणामस्वरूप समाजशास्त्रों में भी वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया गया। यह पद्धति इस मान्यता पर आधारित है कि विषय और विषयी एक दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र सत्तायें हैं। प्रकृति की तरह इतिहास भी स्वतंत्र ज्ञान का विषय (ऑब्जेक्ट ऑफ नॉलेज) है और उसका अध्ययन भी उसी प्रकार किया जा सकता है जैसे प्रकृति का किया जाता है। एक वैज्ञानिक की तरह ही इतिहासकार तथ्यों के साक्ष्य के आधार पर किसी घटना अथवा व्यक्ति की ऐतिहासिकता (उसके हुए होने को) सिद्ध करता है। जिस घटना के लिये साक्ष्य नहीं दिया जा सकता वह घटना ऐतिहासिक नहीं मानी जाती। नियति, चमत्कार, अवतार आदि को तथ्यों के आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सकता अतः इतिहास के क्षेत्र में इनके लिये कोई स्थान नहीं है।

अब यह स्पष्ट ही है कि 19वीं सदी में मान्य इतिहास की यह अवधारणा वस्तुवाद पर आधारित है। जिसका अन्तर्निहित अर्थ है कि ऐतिहासिक घटनायें प्राकृतिक घटनाओं की तरह मानव चेतना से स्वतन्त्र बाह्य वस्तु हैं तथा उनका यथातथ्य निरूपण करना ही इतिहासकार का उद्देश्य है। किन्तु यह स्पष्ट ही दिखता है कि ऐतिहासिक घटनायें प्राकृतिक घटनाओं की तरह की वस्तु नहीं होतीं। इसलिये बीसवीं शताब्दी में इतिहास दार्शनिकों ने इतिहास की वस्तुवादी अवधारणा को अस्वीकार कर दिया। इस पक्ष पर चर्चा हम थोड़ा बाद में करेंगे।

### ऐतिहासिक अतीत व वास्तविक अतीत

अब यह स्पष्ट ही है कि इतिहास का सम्बन्ध मानवीय अतीत से है। किन्तु समस्त मानवीय अतीत से नहीं केवल उस मानवीय अतीत से जिसका रिकार्ड उपलब्ध होता है। यह अतीत ऐतिहासिक अतीत कहलाता है। ऐतिहासिक अतीत वास्तविक अतीत नहीं होता। वास्तविक अतीत प्रमाणातीत अतीत को कहते हैं, उसे पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता। वास्तविक अतीत की कल्पना तो की जा सकती है, किन्तु उसके लिये प्रमाण नहीं दिया जा सकता। प्रमाण के अभाव में यह अतीत इतिहास नहीं बनता, ऐतिहासिक नहीं होता।

इस प्रकार, उस मानवीय अतीत को ऐतिहासिक कहा जाता है, जो न केवल वास्तव में घटित हुआ हो, साथ ही उसका रिकार्ड भी उपलब्ध हो। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या वह समस्त अतीत जिसका रिकार्ड उपलब्ध है, ऐतिहासिक है? ऐसा भी नहीं है। केवल वे घटनायें ही ऐतिहासिक कहलाती हैं, जिन्हें इतिहासकार अपने विवरणों में स्थान देते हैं। शेष घटनायें इतिहास बनने की संभावना के साथ पड़ी रहती हैं।

अतीत के ऐतिहासिक अतीत होने के लिये दो आवश्यक शर्तें हैं - एक, उसका रिकार्ड अथवा साक्ष्य उपलब्ध हो और दो, उसे इतिहासकार अपने विवरणों में स्थान प्रदान करें। प्रमाण विहीन इतिहास कल्पना, आख्यान, कथा, मिथक, पुराण आदि की कोटि में रखा जाता है। दूसरे शब्दों में, अतीत को यदि सिद्ध नहीं किया जा सके अथवा यदि उसके घटित हुए होने को साक्ष्यों के आधार पर बताया न जा सके तो ऐसा अतीत इतिहास के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सकता।

ऐतिहासिक अतीत वास्तविक अतीत से इस अर्थ में भी भिन्न होता है कि इतिहासकार उसकी पुनर्चना कर सकता है। वह जिस अतीत की पुनर्चना करता है, वह उसका चश्मदीद गवाह नहीं होता। वह एक वकील की तरह साक्ष्यों के आधार पर घटनाचक्र की विचार-कल्पना से पुनर्चना करता है। घटना चक्र वास्तव में वैसे ही घटित हुआ था अथवा नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। यह उसका कल्पना चित्र होता है। किन्तु यह कपोल-कल्पना भी नहीं होता। वह साक्ष्यों के आधार पर घटनाओं को तार्किक संगति में व्यवस्थित करते हुए उन्हें एक कहानी का रूप दे देता है।

### ऐतिहासिक तथ्य एवं साक्ष्य

ऐतिहासिक साक्ष्य इतिहास का आधार हैं। इनके अभाव में इतिहास का पुनर्निर्माण संभव नहीं है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अन्तर्गत वह समस्त सामग्री आ जाती है, जिससे अतीत विषयक जानकारी मिलती हो। किन्तु जैसा कि हमने ऊपर देखा, अतीत विषयक समस्त सूचनायें, समस्त तथ्य ऐतिहासिक साक्ष्य की श्रेणी में नहीं आते। इतिहासकार जब अतीतान्वेषण के क्रम में इन तथ्यों का प्रयोग इतिहास निर्माण के लिये करता है, तब ये तथ्य ऐतिहासिक साक्ष्य का रूप ग्रहण कर लेते हैं। किन्तु कौन से तथ्य ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में प्रयुक्त होंगे, यह इतिहासकार के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है या कहें कि उन प्रश्नों पर निर्भर करता है जिनको लेकर इतिहासकार अतीत की ओर मुखातिब होता है।

यहाँ अतीत विषयक तथ्यों तथा उन पर आधारित इतिहास के विषय में थोड़ा स्पष्टीकरण उचित होगा। तथ्य क्या है? कहा जा सकता है कि कोई भी वस्तु-स्थिति अथवा घटना जो वास्तव में घटित हुई हो और जिसका रिकॉर्ड उपलब्ध हो तथ्य कही जा सकती है। तब तथ्य को अनुभव का, इन्द्रिय प्रत्यक्ष का ऐसा डेटा कहा जा सकता है, जो व्याख्या से स्वतन्त्र और निरपेक्ष हो। दूसरे शब्दों में, तथ्य वह है जो किसी वस्तु स्थिति अथवा घटना को, जैसी वह घटित हुई वैसे ही बयान करता हो। इस प्रकार के तथ्य प्राथमिक स्रोतों - दस्तावेजों, अभिलेखों आदि - से प्राप्त होते हैं। ऐसा माना जाता है कि इतिहास सुनिश्चित तथ्यों का संकलन है। इतिहासकार का यह दायित्व है कि वह इन तथ्यों को ज्यों-का-त्यों निरूपित करे। उन्नीसवीं शताब्दी में इतिहास की यही अवधारणा मान्य थी। रांके ने कहा था : इतिहासकार का कार्य है कि वह 'जैसा घटित हुआ उसे वैसा ही प्रस्तुत करे।' क्या उचित है अथवा अनुचित यह बताना उसका कार्य नहीं है। उसे यह ध्यान रखना चाहिये कि उसके अपने पूर्वाग्रह, मान्यतायें आदि उसके विवरणों को प्रभावित नहीं करें। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में केम्ब्रिज मॉडर्न हिस्टरी के सम्पादक एक्टन ने लेखकों को जो निर्देश दिया था उसकी भावना भी यही थी। उन्होंने अपने लेखकों को लिखा था कि "हमारा वाटरलू यही है कि हम फ्रान्सिसी, अंग्रेज, जर्मन और डच, सभी की कसौटी पर खरे उतरें, सभी को बराबर संतुष्ट कर सकें, कि कोई भी पाठक लेखकों की विषय सूची को देखे बिना यह न बता सके कि कहाँ पर आक्सफर्ड के बिशप ने अपना लेखन समाप्त किया और वहाँ से फेयरबर्न अथवा गेसेट, लाइबरमान अथवा हैरीसन में से किसने लिखना आरम्भ किया।"<sup>12</sup> यहाँ एक्टन का आशय यह है कि लेखक अपने दृष्टिकोण, इच्छाओं, अकांक्षाओं, पूर्वाग्रहों आदि से ऊपर उठकर निष्ठापूर्वक तथ्यों का निरूपण करे। यहाँ यह दोहरा देना अस्थाने न होगा कि इतिहास की यह अवधारणा अनुभववादी-वस्तुवादी दर्शन (फिलॉसोफी) पर आधारित है।

अनुभववादी विषय और विषयी के बीच पूर्ण पार्थक्य को मानकर चलते हैं। उनके अनुसार तथ्य ऐन्द्रिय विषयों की ही तरह, प्रेक्षक (विषयी) की चेतना से स्वतंत्र होते हैं। इतिहासकार को एक वैज्ञानिक की तरह तथ्यों का निर्धारण करके उन तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष स्थापित करने चाहिये। उन्नीसवीं शताब्दी में रांके आदि की मान्यता थी कि तथ्यपरक, वस्तुनिष्ठ इतिहास ही 'प्रामाणिक' इतिहास है, इसे ही सही अर्थों में इतिहास कहा जा सकता है।

अब यदि इतिहासकार का लक्ष्य इतिहास का यथातथ्य निरूपण है, तो यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इतिहासकार किन तथ्यों को आधार बनाकर अतीत का निरूपण करेगा? क्योंकि जो कुछ भी अतीत में घटित हुआ है, इतिहासकार उस सब का निरूपण नहीं करता, कर भी नहीं सकता। वह केवल उन तथ्यों का चयन करता है, जो उसकी दृष्टि से उसके ऐतिहासिक विवरण के लिये उपयुक्त साक्ष्य होते हैं, महत्वपूर्ण होते हैं। कौन से तथ्य साक्ष्य-रूप में उपयुक्त होंगे यह इतिहासकार की परिकल्पना, उसकी व्याख्या अथवा उन प्रश्नों और जिज्ञासाओं से निर्धारित होता है जिन्हें लेकर वह अतीत की ओर उन्मुख होता है। इन प्रश्नों, इन जिज्ञासाओं से यह निर्धारित होता है कि वह उन तथ्यों का अन्वेषण करेगा जिनसे उसे अपने प्रश्नों के उत्तर मिल सकें। शेष तथ्यों को वह छोड़ देगा। इस प्रकार, ऐतिहासिक तथ्य व साक्ष्य व्याख्या सापेक्ष हो जाते हैं। इस प्रकार इतिहास लेखन के आरम्भिक चरण में ही इतिहासकार का दृष्टिकोण, उसकी मान्यतायें उसके पूर्वाग्रह आदि प्रवेश कर जाते हैं। दूसरी बात यह कि अतीत

विषयक सूचना अथवा तथ्य प्रदान करने वाले दस्तावेज भी वस्तु-निष्ठ (ऑब्जेक्टिव) नहीं होते। ये दस्तावेज इन्हें लिखने वालों के दृष्टिकोण व मान्यता आदि सापेक्ष होते हैं। दस्तावेजों के विषय में यह कहना कि 'जैसा घटित हुआ, उनमें वैसा दर्ज किया' नहीं अपितु 'जैसा दिखा, वैसा दर्ज किया', सही होगा। क्योंकि दर्ज करने वाला जैसा अपनी दृष्टि से, अपनी मानसिक-बौद्धिक संरचना के अनुसार देखता है, वैसा ही दर्ज करता है। किसी की भी दृष्टि निरपेक्ष दृष्टि नहीं होती। हो भी नहीं सकती। हम सब अपने अनुभव से यह जानते हैं कि एक ही घटना को दो व्यक्ति अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत करते हैं। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का देखना दूसरे व्यक्तियों के देखने से भिन्न होता है। एक व्यक्ति उस घटना के 'अ' तत्व को प्रधानता देता है तो दूसरा 'ब' तत्व को। किसके लिए किसी घटना के कौन से तत्व महत्वपूर्ण होंगे यह उनकी मानसिक-बौद्धिक संरचना पर निर्भर करता है।

इस प्रकार, कहा जा सकता है कि न तो तथ्यों की जानकारी प्रदान करने वाले दस्तावेज विषय-निष्ठ अथवा वस्तु-निष्ठ होते हैं और न ही तथ्यों के साक्ष्य पर आधारित इतिहास।

ऐतिहासिक साक्ष्य क्या होता है? इसके लक्षण क्या हैं? उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि साक्ष्य की प्रकृति अध्ययनाधीन विषय से निर्धारित होती है। ऐतिहासिक साक्ष्य का स्वरूप वैज्ञानिक साक्ष्य से नितान्त भिन्न प्रकार का होता है। क्योंकि वैज्ञानिक और इतिहासकार के अन्वेषण के क्षेत्र नितान्त भिन्न प्रकार के होते हैं। वैज्ञानिक का अन्वेष्य प्रकृति है और इतिहासकार का अन्वेष्य मनुष्य का अतीत। प्रकृति का अध्ययन प्रत्यक्ष मूलक होता है। इतिहास का प्रत्यक्ष मूलक अध्ययन संभव नहीं है। क्योंकि ऐतिहासिक घटनायें अद्वितीय (यूनीक) एवं अपुनरावर्ती (नॉन-रिकरेंट) होती हैं। इस कारण ऐतिहासिक विवरण का परीक्षण प्रत्यक्ष मूलक प्रमाणों अथवा साक्ष्यों के आधार पर नहीं किया जा सकता। इसे अतीत विषयक सूचना देने वाले साक्ष्यों के प्रकाश में जांचा जा सकता है। दस्तावेज अथवा अतीत कालिक विवरण ऐतिहासिक साक्ष्यों के स्रोत होते हैं। जैसा कि हम देख आये हैं, दस्तावेज तथा विवरण वस्तुनिष्ठ नहीं होते, व्यक्ति-साक्षेय होते हैं। इसलिये इतिहासकार के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह इनका आलोचनात्मक मूल्यांकन व परीक्षण करके इनके द्वारा प्रदत्त तथ्यों की अन्यत्र प्राप्त सूचनाओं के साथ तुलना करके, इन्हें क्रॉस-चौक करके इनका निर्धारण कर प्रयोग करे। इस प्रकार, इतिहास-लेखन में इतिहासकार की विचार-कल्पना की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। ऐतिहासिक विवरण की गुणवत्ता इसके लेखक की विचार-कल्पना की गहराई पर निर्भर करती है। इस सन्दर्भ में इतिहास की प्रत्ययवादी अवधारणा पर संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है।

### इतिहास की प्रत्ययवादी व विषयी-सापेक्ष अवधारणा

बीसवीं शताब्दी में क्रोचे और कॉलिंगवुड और उनके अग्रज समकालिक डिल्थाय ने इतिहास की वस्तुवादी अवधारणा को अस्वीकार कर दिया था। क्रोचे की प्रसिद्ध उक्ति 'समस्त इतिहास समकालीन इतिहास है', ऐतिहासिक वस्तुवाद को पूर्णतया निरस्त करती है। उनकी मान्यता थी कि इतिहास वर्तमान की दृष्टि से अतीतान्वेषण के माध्यम से ही लिखा जा सकता है। वर्तमान दृष्टि से अतीत को देखने का अर्थ है, वर्तमान की चिन्ताओं, अकांक्षाओं, अपेक्षाओं, मान्यताओं और वैचारिक-परिप्रेक्ष्य से अतीत को देखना। यही नहीं, क्रोचे के अनुसार इतिहासकार का कार्य अतीत को प्रस्तुत करना नहीं अपितु अतीत का मूल्यांकन करना है। क्योंकि जब तक इतिहासकार मूल्यांकन नहीं करेगा तब तक वह यह कैसे तय कर सकता है कि क्या प्रस्तुत करने योग्य है? <sup>13</sup> कॉलिंगवुड के अनुसार इतिहास न तो मात्र अतीत का विवरण होता है और न ही मात्र इतिहासकार का अतीत विषयक विचार। इतिहास इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। दूसरे शब्दों में, इतिहास एक ओर इतिहासकार द्वारा अतीत का अन्वेषण है तो दूसरी ओर अतीत की घटनाओं की क्रमबद्ध श्रृंखला, जिसका वह अन्वेषण करता है। जिस अतीत का अध्ययन इतिहासकार करता है, वह मृत अतीत नहीं अपितु ऐसा अतीत होता है जो किसी न किसी अर्थ में वर्तमान में जीवित होता है। <sup>14</sup>

कॉलिंगवुड मानते थे कि दस्तावेजों के आधार पर अतीत का वस्तुनिष्ठ निरूपण नहीं किया जा सकता, क्योंकि इतिहास लेखन में इतिहासकार की 'कल्पना' अथवा विचार-कल्पना तीन महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन

करती है। पहला, ऐसा इतिहासकार भी जो यह दावा करता है कि वह केवल वही निरूपित कर रहा है जो दस्तावेजों में दर्ज है, तब भी वह यह चुनाव करता ही है कि वह किन दस्तावेजों का अपने इतिहास-लेखन में प्रयोग करे। क्योंकि वह उन्हीं दस्तावेजों और तथ्यों को अपने लेखन में सम्मिलित करता है जो उसके लिये उपयोगी होते हैं। कौन से दस्तावेज उपयोगी हैं, इसका निर्धारण वह अपनी विचार-कल्पना से करता है। दूसरा, वह इन दस्तावेजों का प्रयोग अतीत कालिक घटना-चक्र के पुनर्निर्माण के लिये करता है। दस्तावेज स्वयं कोई कहानी नहीं कहते। इसका निर्माण इतिहासकार अपनी कल्पना से करता है। तीसरा, इतिहासकार दस्तावेजों में उल्लिखित तथ्यों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार नहीं करता। वह प्रत्येक दस्तावेज का आलोचनात्मक परीक्षण व मूल्यांकन करता है। वह इन दस्तावेजों की शुद्धता और प्रामाणिकता पर प्रश्न उठाता है, अन्यत्र उपलब्ध तथ्यों के प्रकाश में उनका पुनः परीक्षण करता है। इस प्रकार, इतिहासकार दस्तावेजों से उन सूचनाओं को भी सामने लाता है, जिन्हें दस्तावेज लिखने वाला छुपाना चाहता है। संक्षेप में, दस्तावेजों व तथ्यों का चुनाव, उनके आधार पर अतीत का पुनर्निर्माण तथा दस्तावेजों का आलोचनात्मक परीक्षण ये तीनों कार्य इतिहास-लेखन हेतु अपरिहार्य हैं।<sup>15</sup> उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि तथ्यों का, जिस रूप में वह प्राप्त होते हैं, उसी रूप में उनका निरूपण संभव ही नहीं होता। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह कि दस्तावेज भी 'शुद्ध' नहीं होते। जैसा हम कह आये हैं, वे इन्हें लिखने वालों की मानसिक-बौद्धिक संरचना व पूर्वमान्यताओं आदि से रंजित होते हैं।

अब यदि इतिहास-लेखन में कल्पना की अथवा विचार-कल्पना की इतनी महत्वपूर्ण भूमिका है तो इतिहासकार और उपन्यासकार में क्या भेद है? कालिंगवुड का उत्तर होगा कि बहुत हद तक इतिहासकार भी उपन्यासकार की ही विधि अपनाता है। इतिहासकार व उपन्यासकार दोनों ही अपनी विषय-वस्तु को, अपने कथ्य को, देश और काल में व्यवस्थित करते हैं, दोनों ही कालक्रमानुसार घटनाओं को एक तार्किक व्यवस्था प्रदान करते हैं। किन्तु इतिहासकार उपन्यासकार से इस दृष्टि से भिन्न है कि इतिहासकार का निरूपण तथ्यों के साक्ष्य पर आधारित होता है।

### इतिहास की व्याख्या सापेक्षता

इ. एच. कार, जो स्वयं बड़े इतिहासकारों में गिने जाते हैं, उन्होंने भी तथ्यों की बनिस्पत व्याख्या को प्रधानता दी है। व्हाट इज हिस्ट्री में वे पिरेंडेल्लों (एक इतालवी नाटककार, उपन्यासकार) के किसी पात्र को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि तथ्य एक थैले की तरह होता है, जब तक आप इसमें कुछ भरेंगे नहीं, यह खड़ा नहीं होगा। कार आगे कहते हैं कि हेस्टिंग्स में 1066 ई. में युद्ध हुआ था, इस जानकारी में हमारी रुचि इसलिये है, क्योंकि इतिहासकार इसे एक महत्वपूर्ण घटना के रूप में प्रस्तुत करता है। यह इतिहासकार ही निर्धारित करता है कि रूबिकन के नाले को सीजर द्वारा पार करना एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य है, जबकि हजारों-हजार लोग उसके पहले और उसके बाद इसे पार कर चुके हैं, इस बात में किसी की भी रुचि नहीं है। अतः कार इस मान्यता को कि आधारभूत ऐतिहासिक तथ्यों का निरपेक्ष एवं व्याख्या से स्वतंत्र अस्तित्व होता है, अस्वीकार करते हैं। साक्ष्य के रूप में ऐतिहासिक व्याख्या में स्थान पाकर ही तथ्य ऐतिहासिक साक्ष्य बनते हैं।<sup>16</sup>

इस प्रकार, इतिहासकार की दृष्टि तथ्यों के ऊपर केन्द्रीय महत्त्व की हो जाती है। 19वीं सदी में इतिहासलेखन की प्रकृति और स्वरूप पर विचार करने वाले इसे नहीं देख पाये। किन्तु आज भी प्रोफेशनल इतिहासकार इसे स्वीकार करने में हिचकिचाते हैं और अपने इतिहास में तथ्यों को ही सर्वोपरि मानते हैं। देखा जाय तो इतिहासलेखन के विभिन्न सम्प्रदाय - वामपंथी, दक्षिणपंथी, राष्ट्रवादी, उपनिवेशवादी आदि - दृष्टि सापेक्षता के ही उदाहरण हैं। किन्तु वे सभी, इतिहास का विवेचन अपनी दृष्टि से करते हुए भी दावा निरपेक्षता का, वस्तुनिष्ठता का ही करते हैं और अन्य दृष्टियों को पक्षपातपूर्ण और पूर्वाग्रहग्रस्त कहते हैं। यहाँ यह चर्चा अवान्तर है, इसलिए इसमें नहीं जायेंगे।

### उत्तर-आधुनिक दृष्टिकोण

पहले बात 20वीं सदी के इस इतिहास विषयक सापेक्षतावादी दृष्टिकोण (अप्रोच) के विरुद्ध जी. आर.

एल्टन ने 1967 में द प्रैक्टिस ऑफ हिस्टरी में एक सशक्त प्रतिवादी परिप्रेक्ष्य की। एल्टन के अनुसार इतिहास का उद्देश्य अतीत विषयक निरपेक्ष (ऑब्जेक्टिव) सत्य की खोज करना है। दूसरे शब्दों में, इतिहास का उद्देश्य अतीत का निर्विवाद तथ्यों पर आधारित वस्तुनिष्ठ, निरपेक्ष प्रस्तुतिकरण है। जहाँ कार अपने पाठकों को उसके तथ्यों को जानने से पहले इतिहासकार को जानने की सलाह देते हैं, वहीं एल्टन अपने पाठकों को इतिहासकार और उसके उद्देश्य को नजरअंदाज करते हुए ऐतिहासिक खरेपन और सत्यता के निर्धारक अतीत के दस्तावेजों पर ध्यान देने का आग्रह करते हैं। यह कहा जा सकता है कि एल्टन इतिहास विषयक आधुनिकतावादी प्रज्ञा के, समझ के एक प्रमुख प्रतिनिधि हैं। किन्तु इतिहास पर विचार करने वाले अब उनके मत को महत्व नहीं देते। उनका इतिहास की वस्तुनिष्ठता का आग्रह आज लगभग अमान्य हो चुका है। किन्तु प्रोफेशनल इतिहासकार (उत्तर-आधुनिकों के अपवाद को छोड़कर) अब भी प्रयास वस्तुनिष्ठता साधने का ही करते हैं। वे इतिहास को किसी 'वास्तविक अतीत' का विवरण मानकर ही प्रस्तुत करते हैं। किसी वास्तविक अतीत की पुनर्रचना की संभाव्यता को लेकर जिन प्रश्नों पर ऊपर हमने चर्चा की वे सभी जायज प्रश्न हैं। ये सभी प्रश्न इतिहास की वस्तुनिष्ठता को लेकर हैं। वास्तव में तो ये इतिहास की निरपेक्ष ज्ञान की विधा के रूप में वैधता (वैलिडिटी) पर ही प्रश्न चिह्न लगाते हैं। इस प्रकार, इतिहास में सापेक्षतावादी दृष्टि, जिसका प्रतिपादन 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ वह 1980 के दशक में उत्तर-आधुनिक दृष्टि के प्रभाव से अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी। उत्तर-आधुनिकतावादी और उनके समर्थक कहते हैं कि उत्तर-आधुनिकतावाद ने इतिहासेतर विधाओं की तरह ही इतिहास को भी आधुनिकतावादी रूढ़िवाद और उसके बन्धनों से मुक्त करवा लिया। किन्तु इतिहासज्ञ समझते हैं कि उत्तर-आधुनिकतावादी नास्तिवादी (नाहिलिस्टिक) निराशावाद की ओर ले जाते हैं। जिस कारण इतिहास पर ज्ञान की एक विधा के रूप में ही प्रश्न चिह्न लग जाता है। यही 'इतिहास का अंत' है। इतिहासलेखन के दर्शन के अंतर्गत इतिहासकारों द्वारा स्वयं अपने कर्तृत्व और प्रणाली पर विमर्श और दार्शनिकों द्वारा इतिहास पर सैद्धांतिक विचार, ये दोनों सम्मिलित हैं। उत्तर-आधुनिकता ने दोनों पर गहरा प्रभाव डाला है। प्राचीन काल से इतिहास का उद्देश्य वास्तविक अतीत का निरूपण माना जाता जाता रहा है। उत्तर-आधुनिक विमर्श ने तो इतिहास की ज्ञानमीमांसीय व तत्त्वमीमांसीय धारणाओं पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया है। उत्तर-आधुनिकों के लिए अतीत मात्र बुद्धि-विकल्प (कॉन्स्ट्रक्ट) है। अतीत ही नहीं 'सत्य' भी बुद्धि-विकल्प है। इस कारण उत्तर-आधुनिकतावाद सत्य का दावा करने वाली ज्ञान की सभी विधाओं के दावों को अस्वीकार करता है। 1970 के दशक के अंतिम वर्षों में उत्तर-आधुनिकतावादी 'लिंग्विस्टिक टर्न' ने इतिहास को भाषायी मीमांसा अथवा विमर्श में रूपांतरित कर दिया।

इस 'भाषायी मोड़' (लिंग्विस्टिक टर्न) ने अतीत को पाठात्मक अभिव्यक्ति (टेक्स्च्युअल रेप्रिजेंटेशन) से बाहर किसी भी प्रकार की सत्ता अथवा अस्तित्व से विहीन कर दिया। उनके अनुसार पाठ (टेक्स्ट) के बाहर अतीत का अस्तित्व नहीं होता। और न ही इन पाठात्मक अभिव्यक्तियों को इतिहासकार की अवधारणात्मक एवं सैद्धांतिक संरचनात्मकता (आइडियोलॉजिकल फ्रेमवर्क) से अलग किया जा सकता है। इस प्रकार, इतिहास, इतिहासकार द्वारा अन्तर्पाठात्मक (इंटरटेक्स्च्युअल) पुनर्लेखन की एक सतत प्रक्रिया में रूपांतरित होकर मूलतः एक साहित्यिक सर्जन हो जाता है। उत्तर-आधुनिकों के अनुसार इसका कारण यह है कि ऐतिहासिक व्याख्या की प्रकृति व्याख्या की संरचना में अन्तर्भूत रहती है ऐतिहासिक ज्ञान वृत्तांतों, व्याख्याओं (नैरेटिव्स) के मध्य सतत चलने वाले वाद-विवाद में उपजता है, अतीत के आद्य, अलिखित अथवा असन्दर्भित अवशेषों/चिन्हों से नहीं। एफ. आर. एंकरस्मिट यह दावा करते हैं कि इतिहासकारों को ऐतिहासिक पाठों/व्याख्याओं की अन्योन्याश्रित-क्रिया (इंटरप्ले) के अतिरिक्त कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। इतिहासकारों की यह मान्यता कि वे वास्तविक तथ्यों के आधार पर वास्तविक अतीत का ही पुनर्निर्माण करते हैं, भ्रामक है।<sup>17</sup> हेडन व्हाइट के अनुसार इतिहासकार अतीत के वर्णन व मूल्यांकन के क्रम में वास्तव में इतिहास को कल्पित अथवा आविष्कृत करते हैं। इतिहासकार किसी पहले से अस्तित्वमान घटनावली का वर्णन नहीं करते अपितु वे अतीत का सृजन करते हैं। उनका वर्णन अतीत की एक कल्पना होता है। इसका अतीत के किसी सत्य से, किसी वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता।<sup>18</sup>

इतिहास के अस्तित्व पर उत्तर-आधुनिकतावाद के कारण आये संकट का सामना कैसे किया जा सकता है? अनेक इतिहासकारों ने इसका सशक्त प्रत्युत्तर दिया है। आर्थर मरविक कहते हैं कि इतिहासकार जानते हैं कि उन्हें अपना कार्य कैसे करना है, और जिस विधा की उपलब्धियों का इतना समृद्ध रिकॉर्ड हो उसे बाहरी आलोचकों के परामर्श की आवश्यकता कैसी?<sup>19</sup> एण्पल्बी और अन्य कहते हैं कि अब इतिहासकारों को यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि वे क्या करते हैं, कैसे करते हैं और उनका उद्यम क्यों महत्वपूर्ण है।<sup>20</sup> हम देखते ही हैं कि उत्तर-आधुनिक नास्तिवाद की प्रचंड चुनौती के बावजूद इतिहासकार इतिहास को ज्ञान का प्रमाणिक क्षेत्र मानकर ही प्रवृत्त होते हैं।

पी 51, मधुवन पश्चिम, किसान मार्ग,  
टोंक रोड, जयपुर 302018

#### संदर्भ -

1. बेकर, कार्ल, 'व्हाट इज़ हिस्टोरियोग्राफी?', द अमेरिकन हिस्टोरिकल रिव्यू, वोल्यूम 44, न. 1, अक्टूबर, 1938।
2. जॉर्ज जी इगर्स, क्यू एडवर्ड वांग व सुप्रिया मुखर्जी, अ ग्लोबल हिस्टरी ऑफ़ मॉडर्न हिस्टोरियोग्राफी, लॉन्गमैन, 2016, पृ.4।
3. जॉन बरो, अ हिस्टरी ऑफ़ हिस्टरीज़, विंटेज, रीप्रिंट संस्करण, 2009 पृ. xv।
4. रिचर्ड जे. ऐवन्स, इन डिफेंस ऑफ़ हिस्टरी, ग्रांटा बुक्स, लन्दन 2000, पृ. 8-12।
5. जॉर्ज इगर्स, हिस्टोरियोग्राफी इन द ट्वेंटीएथ सेंचुरी, वैज़लियन यूनिवर्सिटी प्रैस, कनैक्टिकट, 1997, पृ. 18।
6. लुद्मिला जोर्दानोवा, द प्रैक्टिस ऑफ़ हिस्टरी, ब्लूम्सबरी एकेडेमिक, लंदन, न्यूयॉर्क, 2019, पृ. 18।
7. जोएस एण्पल्बी, लिन हंट और मार्गरेट जेकब, टैलिंग द टूथ अबाउट हिस्टरी, डबल्यू. डबल्यू. नॉर्टन एण्ड कम्पनी, न्यू यॉर्क, लंदन, 1994, पृ. 243।
8. वही, पृ. 3।
9. वही, पृ. 189।
10. वही, पृ. 217।
11. देखें. पीटर कोस्सो का लेख 'फिलॉसोफी ऑफ़ हिस्टोरियोग्राफी', ऐविज़र टकर, अ कम्पेनियन टू द फिलॉसोफी ऑफ़ हिस्टरी एंड हिस्टोरियोग्राफी में संकलित, वायली ब्लैकवेल, 2009।
12. ई. एच. कार, व्हाट इज़ हिस्टरी, पेंग्यूइन बुक्स, 1974, पृ. 7।
13. देखें, बेनेडिक्टो क्रोचे, हिस्टरी, इट्स थियरी एण्ड प्रैक्टिस, लीयोपॉल्ड क्लासिक लाइब्रेरी, 2017।
14. देखें, आर. जी. कॉलिंगवुड, 'इपिलीगोमीना', आईडिया ऑफ़ हिस्टरी, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 2007।
15. देखें, वही।
16. देखें, ई. एच. कार, व्हाट इज़ हिस्टरी... पूर्वोद्धृत, प्रथम अध्याय।
17. एफ़. आर. एंकरस्मिट, 'हिस्टोरियोग्राफी एण्ड पोस्टमॉडर्निज़्म', हिस्टरी एण्ड थियरी, वोल्यूम 28, 1989, पृ. 137-153।
18. हेडन व्हाइट, मेटाहिस्टरी : द हिस्टोरिकल इमैजिनेशन इन नाइनटीन्थ-सेंचुरी योरप. जॉन होपकिंस यूनिवर्सिटी प्रैस, बोल्तिमोर, 1973।
19. आर्थर मरविक, 'टू अप्रोचेज़ तो हिस्टोरिकल स्टडी : मेटाफिज़िकल (इन्क्लूडिंग पोस्टमॉडर्निज़्म) एण्ड दी हिस्टोरिकल', जर्नल ऑफ़ कांटेम्पोरेरी हिस्टरी, वोल्यूम 30, न. 1, पृ. 5-35।
20. जोएस एण्पल्बी व अन्य, टैलिंग द टूथ... पूर्वोद्धृत, 1994, पृ. 9।

## 19वीं शताब्दी की एशियाई अध्ययन और भारत की पवित्र वास्तुकला की समझ

*अपराजिता भट्टाचार्य*

अंग्रेजी में भारतीय वास्तुकला पर किसी भारतीय द्वारा लेखन की शुरुआत 1834 में हुई, जिसके तहत रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन ने मरणोपरांत एक भारतीय न्यायाधीश राम रज द्वारा लिखित 'द एसे ऑन द आर्किटेक्चर ऑफ द हिंदू' का प्रकाशन किया। अंग्रेजी में रज की दक्षता और दक्षिण भारतीय स्थानीय भाषाओं एवं संस्कृत को लेकर उनकी समझ ने उन्हें प्राचीन वास्तुशिल्प ग्रंथ को समझने और मंदिरों जैसे जीवंत स्मारकों की प्रतीकात्मक उपयोगिता को समझने के लिए एक स्तरित दृष्टिकोण प्रदान किया था। राम रज की पद्धति को बड़े पैमाने पर यूरोपीय विद्वानों द्वारा नाकार दिया गया, लेकिन राजेंद्रलाल मित्रा द्वारा कुछ हद तक उनको पुनः स्थापित किया गया, जो एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल (1885) के पहले भारतीय अध्यक्ष बने, इसके लिए जेम्स फर्ग्यूसन ने उनकी कड़े शब्दों में निंदा की और उनको नस्लीय आलोचना का सामना करना पड़ा। मित्रा की विभिन्न भाषाओं पर महारत और आधुनिक पश्चिमी प्रणालियों पर पकड़ के साथ ही एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन और इंडियन नेशनल कांग्रेस जैसे कई प्रतिष्ठित संस्थानों के साथ उनकी सक्रिय भागीदारी ने उनको 'देशी' बुद्धिजीवियों की लीग में सबसे आगे खड़ा कर दिया था।

सर विलियम जोन्स ने वर्ष 1784 में कलकत्ता में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना की, सोसाइटी की स्थापना के साथ ही दुनिया के पूर्वी हिस्से के धर्मों, भाषाओं और संस्कृतियों के अधिक गंभीर, व्यवस्थित अध्ययन का मार्ग प्रशस्त हुआ, जिसमें पाश्चात्य दृष्टिकोण को प्रमुखता से अपनाया गया। औपनिवेशिक संदर्भ में इस तरह के अध्ययनों का कारण भारत के विविधतापूर्ण साम्राज्य को समझना और उस पर शासन करने के उद्देश्य को पहचाना था, यह अध्ययन मूलतः यूरोपीय जनता के लिए थे, जिसके लिए प्राच्य शास्त्रों और साहित्यिक कार्यों की खोज, संकलन और अनुवाद का कार्य किया गया। सर विलियम जोन्स ने भारतीय कारीगरों के पारंपरिक ज्ञान और प्रथाओं से उपजे शिल्पशास्त्र ग्रंथों, प्राचीन कलात्मक मैनुअल और स्थापत्य ग्रंथों के अध्ययन पर जोर दिया, लेकिन कला के रूप में पूर्व-औपनिवेशिक स्थापत्य विरासत की विश्वसनीयता को मान्यता देने से इनकार कर दिया। 'एशियाई' अध्ययन के अग्रदूत के लिए भारत के प्राचीन वास्तुशिल्प अवशेष केवल 'प्राचीनता के स्मारक' हैं, जिनमें कोई कलात्मक या ऐतिहासिक मूल्य नहीं हैं और इसलिए वे कला के रूप में पहचान पाने के हकदार नहीं हैं।<sup>1</sup>

इस भेदभावपूर्ण रवैये को जेम्स मिल की 'द हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया (1817)' में अभिव्यक्ति मिलती है जहां मिल ने 'ललित कला' और 'अनुप्रयुक्त कला' के बीच एक अंतर को रेखांकित किया है और भारतीय कलाकारों को वस्त्र और हस्तशिल्प जैसी उपलब्धियों के लिए श्रेय दिया, न कि वास्तुकला और मूर्तिकला को लेकर उनके योगदान को मान्यता दी।<sup>2</sup> मिल ने औपनिवेशिक सरकार की स्थापना से पहले भारत के पूर्व-आधुनिक इतिहास को

हिंदू और इस्लामी धार्मिक कोष्ठकों में कालानुक्रमिक रूप से विभाजित करने की प्रथा की शुरुआत की। भारत के पूर्व-औपनिवेशिक अतीत की निर्मित विरासत का दस्तावेजीकरण और संरक्षण करने के लिए आधिकारिक औपनिवेशिक संस्थानों की शुरुआत होने से पूर्व, व्यक्तिगत प्रशासकों या सैन्य अधिकारियों द्वारा प्राच्य वास्तुकला के चयनित नमूनों के एल्बम चित्र भारतीय में यूरोपीय हितों के दो सामान्य रुझानों को दिखाते हैं। प्रथम सर्वेक्षणकर्ता - भारत के जनरल, कर्नल कॉलिन मैकेंज़ी के दक्षिणी भारत में क्षेत्रीय सर्वेक्षण विशेष रूप से अमरावती स्तूप के प्रलेखन और इसके बाद मद्रास प्रेसीडेंसी के एक अन्य सिविल वर्कर सर वाल्टर इलियट द्वारा इनको इंग्लैंड ले जाना ब्रिटिश शासन के आकर्षण को दिखाता है।<sup>1</sup>

अठारहवीं शताब्दी के ब्रिटिश पेशेवर कलाकारों ने भारतीय स्मारकों को कलात्मक दृष्टि और रोमांटिक कल्पना के संयोजन के साथ चित्रित करने की एक नई 'सुरम्य' शैली का आविष्कार किया था, जिसमें मंदिरों, किलों और महलों की बिगड़ती संरचनाओं को चित्रित किया गया था और जो अक्सर जंगल से घिरा हुआ था, जो उनके वैभव के खो जाने या उदासी का भाव व्यक्त करता था। भारत के पूर्व-राज भवनों के इस तरह के दृश्य चित्रण ने पश्चिमी दर्शकों के बीच लोकप्रियता और ग्राहकता प्राप्त की, विलियम होजेस और थॉमस और विलियम डेनियल की जोड़ी ने सफल चित्रकारों के तौर पर शुरुआत की, जिन्होंने पानी के रंग के रेखाचित्रों को प्रिंट में ढालने की एक्वाटिंट तकनीक विकसित की।<sup>2</sup> डेनियल्स के ओरिएंटल सीनरी वॉल्यूम यूरोपीय जनता की 'चित्रमय' अपील की गवाही देते हैं।<sup>3</sup>

इंपीरियल संग्रहालय की स्थापना 1814 में औपनिवेशिक राजधानी कलकत्ता में की गई थी, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य के प्राकृतिक और साथ ही पुरातात्विक खजाने को संरक्षित और प्रदर्शित करना था। लेकिन भारत का पहला संग्रहालय न केवल ज्ञान के भंडार के रूप में उभरा, बल्कि औपनिवेशिक सरकार की शक्ति और अधिकार के प्रतीक के रूप में उभरा।<sup>4</sup> भारतीय उपनिवेश से प्राप्त शानदार कला और शिल्प की वस्तुएं का प्रदर्शन उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान राजधानी लंदन में एक नियमित आयोजन बन गया था और इस प्रकार 'दृश्य प्रदर्शन' की संस्कृति सामने आई।<sup>5</sup> 1835 में शिक्षा पर मिनट थॉमस बबिंगटन मैकाले ने पश्चिमी ज्ञान के प्रसार के लिए भारतीयों के बीच अंग्रेजी को बढ़ावा देने की वकालत करते हुए ब्रिटिश शासन की नई शिक्षा नीति का लक्ष्य निर्धारित किया, जो अंग्रेजी जानने वाले एक नए वर्ग को जन्म देगा "जो रक्त और रंग से भारतीय होंगे, लेकिन रुचि, राय और बुद्धि से अंग्रेजी होंगे"।<sup>6</sup> जिससे अंग्रेजी शिक्षित भारतीयों के एक अधीनस्थ वर्ग के निर्माण से औपनिवेशिक आधिपत्य को मजबूत और सुगम बनाया जा सके, जो मानदंडों का पालन करते हुए वास्तव में कभी भी सत्ता का सामना करने का साहस नहीं दिखा सकते हैं।<sup>7</sup>

### राम रज और भारतीय वास्तुकला पर अंग्रेजी में पहला स्वदेशी कार्य

अंग्रेजी में प्राचीन भारतीय वास्तुकला पर लेखन की शुरुआत बैंगलोर के एक भारतीय न्यायाधीश राम रज (1790-1833) द्वारा लिखित 'द एसे ऑन द आर्किटेक्चर ऑफ द हिंदू' के प्रकाशन के साथ हुई थी। पुस्तक को मरणोपरांत 1834 में ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी द्वारा लंदन से प्रकाशित किया गया था।<sup>8</sup> राम रज का करियर मद्रास की पैदल सेना में एक क्लर्क से शुरू हुआ, जिसके बाद वह सेंट जॉर्ज के किले में प्रधान अंग्रेजी शिक्षक बनें और अंत में बैंगलोर के न्यायाधीश और मजिस्ट्रेट के पद पर आसीन हुए, जो उनके उल्लेखनीय उत्थान को दर्शाता है। इस पेशेवर उत्थान के साथ ही उनको पारंपरिक और स्थानीय भाषा के साहित्य के एक कुशल विद्वान के रूप में भी प्रसिद्धि मिली, जिसकी अंग्रेजी पर पकड़ थी। राम रज पाश्चात्य ज्ञान और प्राच्य ज्ञान के मध्यस्थ बनें- यह एक ऐसा गठजोड़ था, जिसे 19 वीं शताब्दी की शुरुआत में अनदेखा करना बहुत कठिन था। ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के संबंधित सदस्य के रूप में रज की स्वीकृति, सोसाइटी द्वारा पहले 'मूल' खंड के प्रकाशन भारतीय विद्वानों की एक नई पीढ़ी के आगमन का प्रतीक है, जिसकी मान्यता औपनिवेशिक शिक्षा पर निर्भर थी।

राम रज का मरणोपरांत मोनोग्राफ भारतीय वास्तुकला के अध्ययन में एक केंद्रित दृष्टिकोण को प्रदर्शित करता है जो पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र या संस्कृत के शिल्पशास्त्र ग्रंथों पर लेखक द्वारा 48 चित्रों का पूरक है और इस प्रकार एक 'वर्गीकरण योजना' प्रदर्शित करता है।<sup>11</sup> रॉयल एशियाटिक सोसाइटी द्वारा जारी पुस्तक के पहले संस्करण की प्रस्तावना में यूरोपीय दर्शकों के लिए 'हिंदू वास्तुकला के सिद्धांतों' के एक अंदरूनी सूत्र के आत्मनिरीक्षण की विश्वसनीयता को 'रहस्योद्घाटन' से कम नहीं बताया गया था।<sup>12</sup>

रज द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण मानसार के प्रारंभिक मध्ययुगीन शिल्पशास्त्र पाठ जैसे वास्तुशिल्प ग्रंथों का अध्ययन करना था और मंदिर वास्तुकला के वास्तविक स्मारकीय अवशेषों के साथ पुरोहित समुदाय और कलाकारों की मदद से उसकी व्याख्या करना था। इस तरह के आत्मनिरीक्षण से यह पता चला है कि इनमें से कई ग्रंथों को कलाकारों और विद्वानों द्वारा विभिन्न व्याख्याओं के अधीन नुस्खे और नियमों वाले चरित्र में आदर्श के रूप में सबसे अच्छा समझा जा सकता है।<sup>13</sup>

लेकिन दुर्भाग्य से उनकी मृत्यु के बाद इस तरह के दृष्टिकोण को आगे नहीं बढ़ाया गया क्योंकि यूरोपीय विद्वानों ने राम रज के मार्ग पर चलने में कम दिलचस्पी दिखाई।<sup>14</sup> प्राच्यवाद की प्रमुख धाराओं जैसे ज्ञान की समकालीन पश्चिमी धारणा से अच्छी तरह से वाकिफ और अच्छी तरह से परिचित, राम रज शायद पवित्र वास्तुकला के प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व को समझने का पहला प्रयास था जो उन्हें प्रारंभिक भारत में वास्तुकला की उत्पत्ति के पीछे पश्चिमी या ग्रीको-रोमन या मिस्र की प्रेरणा वाले सिद्धांत का खंडन करने के लिए प्रेरित करता है। "कुछ पश्चिमी लेखकों ने मिस्र और भारत में इमारतों की प्रमुख विशेषताओं में एक निश्चित समानता का पता लगाया है और तब से यह निष्कर्ष निकाला है कि दोनों देशों के बीच वास्तुशिल्प ज्ञान का आदान प्रदान बहुत पहले होता रहा है। लेकिन इस बात को पूरी तरह से नकारा नहीं जा सकता कि यह समानता केवल किसी संयोग के कारण हो सकती है; वास्तुकला के साथ-साथ मानव जाति की सुविधा की अन्य आवश्यक चीजों में भी समानता हो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, और इसके लिए जरूरी नहीं है कि दो राष्ट्रों के बीच कोई संबंध हो या समानता हो, क्योंकि मनुष्य द्वारा महसूस की जाने वाली इच्छाएं समान हैं, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि उन्हें पूरा करने के लिए जिन उपायों का सहारा लिया जाता है, वे भी समान या लगभग समान हों। हालांकि, इन दोनों देशों में वास्तव में शुरुआती दौर में कोई संवाद नहीं था, तो यह निर्धारित करना कठिन है कि उनमें से कौन दूसरे का ऋणी रहा होगा। पुरावशेषों पर लिखने वाले पाश्चात्य लेखकों ने इस विषय को संदेह से परे नहीं रखा है। और अपने अतीत के लिए, मैं मिस्र और भारत की वास्तुकला में इस कथित आत्मीयता के बारे में कोई राय बनाने का साहस नहीं करूंगा। इसलिए, मैं विनम्रतापूर्वक मानता हूं कि जब तक हिंदुओं के शिल्प शास्त्र को सही ढंग से चित्रित नहीं किया जाता है और जनता के सामने नहीं रखा जाता है, यह सवाल कि क्या कला की उत्पत्ति दोनों देशों में से एक या दूसरे के लिए है, समस्या बनी रहेगी।"<sup>15</sup>

राम रज की पाठ केंद्रित पद्धति को बड़े पैमाने पर यूरोपीय विद्वानों द्वारा नकार दिया गया था, जो जेम्स फर्ग्यूसन और उनके शिष्य जेम्स बर्गस द्वारा समर्थित वास्तुकला केंद्रित दृष्टिकोण के पक्ष में थे। हालांकि, वास्तुकला के लिए राम रज के पाठ आधारित दृष्टिकोण ने भविष्य के भारतीय विद्वानों को बड़े पश्चिमी दर्शकों के लिए प्राचीन वास्तुशिल्प ग्रंथों को अंग्रेजी में पुनः अनुवादित करने के लिए प्रेरित किया।

राजेंद्रलाल मित्रा ने हालांकि ग्रंथों और स्मारकों के बीच संतुलन बनाने का प्रयास किया, जिनको लेकर राम रज ने भी चिंता जाहिर की थी। जेम्स फर्ग्यूसन द्वारा मित्रा की सार्वजनिक निंदा उनके नस्लीय पूर्वाग्रहों और तनाव को दर्शाती है। इसका कारण इस तथ्य से समझाया जा सकता है कि भारतीय वास्तुकला का अध्ययन कभी भी उदासीन या विशुद्ध रूप से अकादमिक नहीं थारू इसका एक राजनीतिक आयाम था और व्यापक औपनिवेशिक संदर्भ से जुड़ा था। इस व्यापक संदर्भ में राम रज को भारत का पहला वास्तुशिल्प राष्ट्रवादी कहा जा सकता है।<sup>16</sup>

### जेम्स फर्ग्यूसन और भारत के स्थापत्य इतिहास का अध्ययन

जेम्स फर्ग्यूसन (1808-1886) स्कॉटिश नीलकर साहब के रूप में भारत आए, लेकिन प्रारंभिक भारत की वास्तुकला के व्यवस्थित अध्ययन में उनके योगदान के लिए उन्हें सबसे ज्यादा याद किया जाता है। 1836 और

1841 के बीच भारत में उनके द्वारा किए गए व्यापक कार्य, 1845 में इंग्लैंड लौटने के बाद, 'ऑन द रॉक-कट टेम्पल्स ऑफ इंडिया' शीर्षक से भारतीय वास्तुकला पर उनके पहले प्रकाशन का आधार बने। फर्ग्यूसन ने स्मारकों के फोटोग्राफिक प्रलेखन पर महत्व दिया और पाठ केंद्रित अध्ययनों से हटकर वास्तुकला के प्रति प्रत्यक्ष दृष्टिकोण की वकालत की। उनके शब्दों में, वह भाग्यशाली थे कि उन्होंने भारतीय कला को देखा, 'हालांकि यह पुरानी थी' और 'उसी रास्ते का अनुसरण कर रही थी, जो इसकी युवावस्था में था'...।<sup>17</sup> फर्ग्यूसन का यह दृष्टिकोण सर्वव्यापी पाश्चात्य संवेदनशीलता के अनुरूप है।<sup>18</sup> फर्ग्यूसन की वास्तुशिल्प नियतत्ववाद की विधि 1876 में प्रकाशित उनके मौलिक काम, 'हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर' के पहले संस्करण की प्रस्तावना से उनकी टिप्पणी में सबसे अच्छी तरह से परिलक्षित होती है, जहां उन्होंने अपने दृष्टिकोण की विश्वसनीयता के पक्ष में तर्क दिया :

“कुछ प्रतिष्ठित विद्वान, इमारतों की तुलना में पुस्तकों पर जोर दे रहे हैं, स्वाभाविक रूप से लिखित तथ्यों के आधार पर अपना ज्ञान एकत्र कर रहे हैं और निष्कर्ष निकाले हैं, यह अब पहले जैसी नहीं है समय के साथ इनमें बदलाव आ चुका है, जिससे उनके दावे गलत साबित होता है। इसके विपरीत चट्टानों, मूर्तियों और नक्काशी और अभिलेख को लेकर मेरी समझा यह बताती है कि यह तत्कालीन लोगों के विश्वास और भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिन्होंने उन्हें निष्पादित किया था और जो आज तक अपना मूल आकार बरकरार रखे हुए हैं। भारत जैसे देश में मूर्तिकारों की कला वहां के लेखकों की तुलना में अधिक भरोसेमंद होने का दावा कर सकता हूँ।”<sup>19</sup>

भारतीय और पूर्वी वास्तुकला के इतिहास में फर्ग्यूसन ने बौद्ध वास्तुकला, वास्तुकला की हिमालयी शैली, द्रविड़ियन, चालुक्य, जैन वास्तुकला, उत्तर भारत की इंडो-आर्यन शैली और सरसेनिक (इंडो-इस्लामिक) वास्तुकला की शैली पर चर्चा की और फर्ग्यूसन की कार्यप्रणाली में स्मारकों के एक व्यापक क्षेत्र सर्वेक्षण की आवश्यकता पर जोर दिया है क्योंकि उन्होंने खुद कहा था कि वह तब तक संतुष्ट नहीं होंगे जब तक कि वह 'पत्थरों पर छेनी के निशानों को देखते नहीं हैं, वह उस विचार को देखना चाहते थे, जिसको लेकर कलाकार ने उस डिजाइन को तैयार किया है,' और वह स्वयं को उस कलाकार की जगह पर रखना चाहते थे जिसने उसका निर्माण किया है।<sup>20</sup> हालांकि, पूर्व-औपनिवेशिक स्थापत्य परंपराओं के बारे में फर्ग्यूसन की समझ पश्चिमी सभ्यता की सांस्कृतिक श्रेष्ठता और ग्रीस और रोम की कला की महानता से प्रभावित थी, जिसका मानक भारतीय कला के लिए अप्राप्य था और भारतीय दिमाग के लिए समझ से बाहर था।<sup>21</sup> फर्ग्यूसन का दृष्टिकोण पश्चिमी विद्वानों के विशिष्ट प्राच्यवादी ढांचे में निहित है जहां भारत में उस तरह के ठोस डेटा योग्य अभिलेखों और सामग्रियों का अभाव है जो इसके इतिहास के निर्माण के लिए आवश्यक हैं और गैर प्रगति एवं ठहराव की एक तस्वीर का प्रतिनिधित्व करते हैं।<sup>22</sup> फर्ग्यूसन ने 250 ईसा पूर्व के आसपास भारत में स्थापत्य गतिविधियों की शुरुआत का पता लगाया और माना कि तब से छठी शताब्दी तक बौद्ध धर्म ने भारत में प्रारंभिक वास्तुशिल्प उद्यमों के लिए धार्मिक आधार प्रदान किया। हिंदू धर्म की मंदिर वास्तुकला 7 वीं -8 वीं शताब्दी के आसपास आई थी। स्पष्ट रूप से फर्ग्यूसन ने वैदिक ब्राह्मणवाद और पौराणिक हिंदू धर्म के बीच अंतर किया और प्रायद्वीपीय भारत में बौद्ध धर्म की अनुपस्थिति के बारे में गलत निष्कर्ष निकाला था क्योंकि हिंदू धर्म विंध्य के दक्षिण में एक प्रमुख स्थान रखता था।<sup>23</sup>

### सर अलेक्जेंडर कनिंघम और 19वीं सदी में कला का ऐतिहासिक अध्ययन

अब तक की चर्चा से यह स्पष्ट है कि फर्ग्यूसन ने भारत के सामान्य स्थापत्य इतिहास पर काम किया और विंध्य के दक्षिण में मंदिर संरचनाओं के विकास पर काफी ध्यान दिया। दूसरी ओर, उनके समकालीन सर अलेक्जेंडर कनिंघम ने विंध्य के उत्तर में पुरातात्विक अन्वेषणों और भारत की मंदिर कला की चित्रित स्थापत्य विशेषताओं पर काम किया। कनिंघम की तुलना में फर्ग्यूसन ने उपमहाद्वीप में बहुत कम समय बिताया और किसी भी भारतीय भाषा - क्लासिक या स्थानीय भाषा को सीखने का प्रयास नहीं किया। इसलिए भारतीय वास्तुकला के प्रति फर्ग्यूसन का दृष्टिकोण सबसे खंडित माना जा सकता है, जो केवल शैली के सौंदर्यशास्त्र पर केंद्रित था लेकिन उन्होंने भी मंदिरों के अनुष्ठान और सामाजिक प्रभावों को समझने के लिए वास्तुकला के अध्ययन को प्रतीकात्मक, एपिग्राफिक और नृवंशविज्ञान अध्ययनों के साथ एकीकृत करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया था। 1876 में जब

फर्ग्यूसन अपनी पुस्तक भारतीय और पूर्वी वास्तुकला का इतिहास लेकर आए, तब तक कनिंघम की फील्ड रिपोर्ट के पांच खंड प्रकाशित हो चुके थे, लेकिन फर्ग्यूसन किसी प्रकार इससे अप्रभावित रहे। फर्ग्यूसन, कनिंघम और उनके सहायकों की कार्यप्रणाली के बारे में आलोचनात्मक थे, जिसे उन्होंने वास्तुकला के अध्ययन की उपेक्षा करते हुए पुरातात्विक क्षेत्र सर्वेक्षण पर अत्यधिक निर्भरता के रूप में बयान किया।<sup>24</sup>

जेम्स फर्ग्यूसन के विपरीत, भारत में सर अलेक्जेंडर कनिंघम का लंबा करियर (1833-1885) एक सैनिक के तौर पर शुरू हुआ और भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के संस्थापक महानिदेशक के रूप में समाप्त हुआ, जो ब्रिटिश राज में पुरातत्व के विकास और संस्थागतकरण को एक प्रशासनिक इकाई के रूप में दर्शाता है। कनिंघम ने पुरातात्विक अन्वेषणों के साथ-साथ पुरालेख और मुद्राशास्त्रीय अध्ययनों की एक सूक्ष्म पद्धति को तैयार करने वाले स्थलों और स्मारकों के प्रलेखन के लिए व्यापक यात्रा और सर्वेक्षण पर जोर दिया। 1861 में मेजर जनरल अलेक्जेंडर कनिंघम ने वायसराय लॉर्ड कैनिंग को एक ज्ञापन सौंपा, जिसमें उपमहाद्वीप के सदियों पुराने स्मारकों के पुरातात्विक दस्तावेजों के संरक्षण में औपनिवेशिक सरकार की भागीदारी के लिए वकालत की गई थी।<sup>25</sup> इस ज्ञापन को ब्रिटिश शासन से तीव्र प्रतिक्रिया मिली, क्योंकि 1857 के विद्रोह के बाद सरकार, भारत के लोगों के बीच खराब होती अपनी छवि को सुधारना चाहती थी। परिणामस्वरूप भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की स्थापना वर्ष 1861 में की गयी, जिसमें अलेक्जेंडर कनिंघम को पुरातत्व सर्वेक्षणकर्ता के रूप में जगह दी गयी। 1866-1870 के बीच एक संक्षिप्त अंतराल के बाद 1871 में अलेक्जेंडर कनिंघम के नेतृत्व में सर्वेक्षण को एक अलग विभाग के रूप में बहाल किया गया। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के प्रमुख के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान (1871-1885) कनिंघम ने तेईस खंड प्रकाशित किए। उनकी रिपोर्टों से पता चलता है उन्होंने लोककथाओं और स्थानीय परंपराओं सहित पुरातात्विक सर्वेक्षणों एवं नृवंशविज्ञान टिप्पणियों पर अपना ध्यान केंद्रित किया। लेकिन यह प्रकृति में वास्तुकला केंद्रित नहीं था।<sup>26</sup> हालांकि कनिंघम ने न केवल प्रभावशाली संरचनाओं के अध्ययन पर बल्कि सरकारी पहल के तहत कन्नौज और दिल्ली जैसे स्थानों के आसपास के खंडहरों की जांच करने की आवश्यकता पर भी जोर दिया।<sup>27</sup>

1871 में प्रकाशित अपनी यात्रा रिपोर्ट के पहले खंड में कनिंघम ने अपने शोध के आधार पर प्राच्य अध्ययन के क्षेत्र में अपने पूर्ववर्तियों और समकालीनों के योगदान के बारे में एक आकलन पेश किया और फर्ग्यूसन के विपरीत 'स्वदेशी' विद्वानों के प्रयासों को तुच्छ या कम बताने का प्रयास नहीं किया। कनिंघम ने सर विलियम जोन्स, जेम्स प्रिंसेप, फ्रांसिस बुचमैन, जेम्स फर्ग्यूसन और मार्खम किटो जैसे दिग्गजों के प्रयासों को स्वीकार किया और उनकी सराहना की। उल्लेखनीय बात यह है कि इस सूची में एक भारतीय भाऊदाजी का नाम भी शामिल है।

यूरोपीय विद्वान संस्कृत और फारसी स्रोतों में कुशल पारंपरिक भारतीय विद्वानों के ज्ञान पर भरोसा करते थे तथा प्राचीन ग्रंथों और अभिलेखों के अनुवाद के लिए उन पर निर्भर थे। परंपरागत रूप से 'पंडित' और 'मौलवी' के रूप में संबोधित इन भारतीय विशेषज्ञों को अपने यूरोपीय विशेषज्ञों के सहायक के तौर पर तैनात किया गया था। लेकिन यह लोग एक स्वतंत्र शोधकर्ताओं के तौर पर सम्मान प्राप्त नहीं कर सके। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की स्थापना के साथ ही औपनिवेशिक सरकार ने भारतीयों को विभिन्न विभागों में काम करने योग्य उपयोगी बनाने और साथ ही रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए उत्खनन, फोटोग्राफी और सर्वेक्षण की आधुनिक तकनीकों के ज्ञान से इन लोगों को परिचित करवाया। हालांकि इस पहल में भी 'मूल निवासी' का भाषाई कौशल सबसे अधिक मांग वाली योग्यता थी, जिससे अभिलेखों रिकॉर्ड को समझने के लिए सहयोग मिलता था।<sup>28</sup> 1883 तक, भारत सरकार में पुरालेखविद् का एक नया पद बनाया गया और प्रसिद्ध एपिग्राफिस्ट जे.एफ. फ्लीट ने इस तरह की परियोजनाओं में पारंपरिक शिक्षा के मूल विद्वानों को शामिल करने और प्रशिक्षित करने के निर्देश के साथ नए पद का कार्यभार संभाला।<sup>29</sup> कनिंघम का पुरालेख और मुद्राशास्त्रीय अनुसंधान के लिए उत्साह अभूतपूर्व था क्योंकि उन्होंने अपनी सर्वेक्षण रिपोर्टों में शिलालेख संबंधी निष्कर्षों का सावधानीपूर्वक दस्तावेजीकरण किया था और वास्तव में उन्होंने फ्लीट द्वारा संपादित शिलालेखों की बहु-खंड श्रृंखला के लिए 'कॉर्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकारम' नाम का सुझाव दिया था। इसके अलावा कनिंघम बौद्ध मठ स्थलों की खुदाई और पहचान के लिए चीनी भिक्षुओं जैसे फा

जियान (CE 404-14) और जुआन जांग (CE 630-44) पर बहुत अधिक निर्भर थे। चीनी भिक्षुओं के पाठ केंद्रित दृष्टिकोण के लिए अक्सर किनघम की आलोचना की जाती थी।<sup>30</sup> सर अलेक्जेंडर कनिंघम ने प्राचीन स्रोतों को पढ़ने के लिए कई संस्कृत विद्वानों की सेवाएं भी लीं और उनके मूल ड्राफ्ट्समैन जमना शंकर भट्ट को एएसआई की सर्वेक्षण रिपोर्टों में उनकी व्यक्तिगत खोजों के लिए श्रेय भी दिया।

### राजेंद्रलाल मित्रा और उन्नीसवीं सदी की औपनिवेशिक धारणाओं की आलोचना

राजेंद्रलाल मित्रा ने 1846 में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के लाइब्रेरियन और सहायक सचिव के रूप में अपना पेशेवर करियर शुरू किया। उन्होंने 1856 में वार्ड संस्थान के निदेशक का पदभार संभाला और दस वर्षों की सेवा के बाद इस पद से इस्तीफा दे दिया। मित्रा 1880 तक इस पद पर बने रहे और इसके बाद इस संगठन को भंग कर दिया गया।<sup>31</sup> इस बीच उन्होंने एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल में भी कई अहम पदों पर कार्य किया, इस क्रमिक यात्रा में वह पहले सचिव और फिर उपाध्यक्ष बने। अंततः मित्रा को 1885 में पहले भारतीय अध्यक्ष के रूप में चुना गया।<sup>32</sup> मित्रा की विभिन्न भाषाओं पर महारत और आधुनिक पश्चिमी प्रणालियों पर पकड़ के साथ ही एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन और इंडियन नेशनल कांग्रेस जैसे कई प्रतिष्ठित संस्थानों के साथ उनकी सक्रिय भागीदारी ने उनको 'देशी' बुद्धिजीवियों की लीग में सबसे आगे खड़ा कर दिया था।

उन्नीसवीं सदी के कलकत्ता के सांस्कृतिक जगत में उनका आदर एक बुद्धिजीवी के रूप होता था। वह यूरोप में शैक्षणिक संस्थानों द्वारा सम्मानित किए जाने वाले पहले भारतीयों में से एक थे। उन्हें ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के मानद सदस्य के रूप में शामिल किया गया था, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की बिब्लियोथेका इंडिका श्रृंखला के लिए संस्कृत परीक्षणों की एक श्रृंखला का अनुवाद और संपादन किया, सोसाइटी के पांडुलिपि संग्रह की सूची प्रकाशित की - एक संस्था जिसके वह पहले 'मूल' अध्यक्ष बने, और अक्सर बंगाल सरकार द्वारा उड़ीसा के स्मारकों और बोधगया के विवादित स्थल के सर्वेक्षण और प्रलेखन की बड़े पैमाने पर परियोजनाओं का संचालन करने का दायित्व उनको दिया गया। मित्रा अपने समय के कई अंग्रेजी समाचार पत्रों जैसे द इंग्लिशमैन, द स्टेट्समैन, द डेली न्यूज, द फीनिक्स, द फ्रेंड्स ऑफ इंडिया, द इंडियन फील्ड और द हिंदू पैट्रियट के एक प्रख्यात स्तंभकार थे। राजेंद्र लाल ने अंग्रेजी और अपनी मातृभाषा बंगाली दोनों में लेख लिखे। वे दो बंगाली मासिक पत्रिकाओं 'विविध संग्रह' (1852-59) और 'रहस्य संदर्भ' (1863-69) के संपादक थे, ब्रम्हा समाज के तत्वबोधिनी पत्रिका के संपादकीय बोर्ड के सदस्य थे और उन्नीसवीं सदी के कई साहित्यिक समाजों में शामिल थे।<sup>34</sup> उनका अंग्रेजी लेखन अकादमिक जनता के लिए था, जबकि उनका बंगाली लेखन आम जनता के लिए था, जिस क्रम में उन्होंने स्कूली पाठ्य पुस्तकें लिखीं, जिसमें भूगोल, बंगाली व्याकरण और विविध विनिर्माण एवं शिल्प आदि विषयों को शामिल किया गया। राजेंद्र लाल ने स्थानीय भाषा में इतिहास लेखन भी किया। शिवाजी और मेवाड़ के इतिहास पर उनके बंगाली लेखन ने बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में पेशेवर इतिहासकारों जैसे राखालदास बंधोपाध्याय द्वारा ऐतिहासिक कथाओं के लोकप्रिय लेखन को दिशा देने का काम किया।

एक स्व-शिक्षित भारतवर्षी, राजेंद्र लाल को ब्रिटिश सरकार और संबद्ध संस्थानों द्वारा असंख्य प्रशंसा मिली- कलकत्ता विश्वविद्यालय (1867) द्वारा एक मानद 'डॉक्टरेट ऑफ लॉ', 'राय बहादुर' (1877) की उपाधि प्राप्त हुई, 'कमांडर ऑफ इंडियन एम्पायर' (1870) से सम्मानित किया गया। 1888 में 'राजा' की उपाधि से सम्मानित किया गया। 1834 से 1885 के बीच औपनिवेशिक भारत में पुरातात्विक और प्राचीन वस्तुओं से संबंधित अध्ययनों में ज्ञान का इतना गहरा परिवर्तन और विशेषज्ञता देखी गई कि राम रज और राजेंद्र लाल मित्रा की दुनिया नाटकीय रूप से परिवर्तित हो गई। यदि रज एक ऐसी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं जो आधिकारिक संरक्षण से संतुष्ट रही तो मित्रा स्वदेशी विद्वानों के एक नए युग की महत्वाकांक्षा और आत्मविश्वास का प्रतीक हैं, जो परंपरागत दृष्टिकोणों को चुनौती देते हैं।<sup>35</sup> यह उल्लेखनीय है कि राजेंद्र लाल को ग्रंथों और शिलालेखों को पढ़ने के लिए पंडितों द्वारा सहायता प्रदान की गई थी, जो आमतौर पर अब तक यूरोपीय विद्वानों द्वारा प्राप्त एक विशेषाधिकार था।

विषयों की एक विस्तृत शृंखला पर उनके योगदान के बावजूद, मित्रा को 1875 और 1880 में प्रकाशित एंटीकक्विटिज ऑफ उड़ीसा के उनके दो खंडों के लिए सबसे ज्यादा याद किया जाता है। 1861 में कनिंघम के वायसराय लॉर्ड कैनिंग को दिये गये ज्ञापन के बाद, उन्हें पुरातत्व सर्वेक्षक के रूप में चुना गया। राजेंद्र लाल मित्रा ने 1868 में बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर को एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया और इसके बाद उनके निर्देशन में उड़ीसा के प्राचीन अवशेषों के सर्वेक्षण का कार्य आरंभ किया गया। इस परियोजना के लिए मित्रा की उत्सुकता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने स्मारकों की तस्वीरें लेने की जिम्मेदारी संभालने के अलावा शरद ऋतु की छुट्टियों में बिना पारिश्रमिक के काम करने की पेशकश की। उन्होंने परियोजना की लागत का भी अनुमान लगाया। मित्रा ने सर्वेक्षण की एक विस्तृत योजना की परिकल्पना की, जिसमें स्थलों, वस्तुओं और संरचनाओं का वर्णन, फोटोग्राफ और व्याख्या पर कार्य करने की एक सूक्ष्म योजना थी।<sup>36</sup> इस संबंध में राजेंद्र लाल कनिंघम की चिंताओं को लगभग प्रतिध्वनित करते हैं, हालांकि उनके दृष्टिकोण में भी काफी अंतर था। सर अलेक्जेंडर कनिंघम ने अपने विद्वतापूर्ण मतभेदों को दरकिनार करते हुए एंटीकक्विटिज ऑफ उड़ीसा के प्रकाशन के लिए सरकारी सब्सिडी देने की बात कही।

मित्रा ने एंटीकक्विटिज ऑफ उड़ीसा के पहले खंड की प्रस्तावना में अपने दृष्टिकोण को रेखांकित किया :

“अपने शोधों के दौरान मैंने दो विषयों पर अपना ध्यान केंद्रित किया; इस क्रम में सबसे पहले मैंने स्वर्गीय लॉर्ड कैनिंग के निर्देशों का ध्यान रखा, जैसा कि एंटीकक्विटिज आफ इंडिया में उनके यादगार संकल्प में निर्धारित किया गया है, अर्थात्, सटीक विवरण प्राप्त करने के लिए, -- योजनाओं, मापों, रेखाचित्र, या तस्वीरों, और शिलालेखों की प्रतियों द्वारा - ऐसे अवशेषों के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती हैं, उनके इतिहास का पता लगाया जा सकता है, और उन परंपराओं का एक रिकॉर्ड तैयार किया जा सकता है। इन तथ्यों के आधार पर सामाजिक इतिहास के आयामों को टटोलने का प्रयास किया जाना चाहिए।”<sup>37</sup>

उन्होंने स्थापत्यकला के अध्ययन की विश्वसनीयता के साथ इतिहास के पाठ्य स्रोतों के मूल्य का समर्थन किया।<sup>38</sup> राजेंद्रलाल मित्रा के दृष्टिकोण ने वास्तुकला के सामाजिक आयाम पर ध्यान केंद्रित किया और इसलिए राम रज द्वारा एक बार प्रयास की गई कार्यप्रणाली को फिर से जीवंत कर दिया। प्राचीन ग्रीस, रोम और मिस्र से भारतीय वास्तुकला और कलात्मक मुहावरों की व्युत्पन्न प्रकृति और प्रमुख पश्चिमी तर्क का विरोध करते हुए राजेंद्रलाल भारतीय सौंदर्यशास्त्र की मौलिकता और विशिष्टता पर जोर दिया है। मित्रा के मत में, पत्थर की वास्तुकला में भारतीय प्रयोग, पूरी तरह से आत्म विकसित, आत्म निहित और सभी बाहरी मिश्रण से रहित है। इसके नियम हैं, इसके अनुपात, इसकी विशेष विशेषताएं हैं—एक शैली के सभी असर वाले प्रभाव जो भीतर से विकसित हुए हैं, - - एक शैली जो अपने आप में व्यक्त करती है कि, किसके लिए, और किसके द्वारा, इसे निर्मित, सोचा और महसूस किया गया था, और इसका मतलब क्या था, न कि इन्हें बाहर से लाया गया।<sup>39</sup>

उनके अनुसार, निर्माण की सामग्री की खराब होने वाली प्रकृति के कारण वे समय का सामना नहीं कर सकी। मित्रा ने उत्तर भारत में पूर्व इस्लामी स्मारकों के अस्तित्व की कमी के लिए इस्लामी प्रतीकात्मक रवैये को जिम्मेदार ठहराया। फर्ग्यूसन के दृष्टिकोण से इतर राजेंद्र लाल ने पत्थर की वास्तुकला की स्वदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत दिया। राजेंद्रलाल के तर्क को फर्ग्यूसन ने आलोचनाओं के रूप में पाया और इसके विरोध में फर्ग्यूसन ने राजेंद्रलाल पर जवाबी आलोचना की। फर्ग्यूसन ने 1884 में राजेंद्रलाल को सार्वजनिक रूप से अपमानित करने और उनकी बौद्धिक विश्वसनीयता की निंदा करने के लिए एक किताब लिखी थी। फर्ग्यूसन द्वारा राजेंद्रलाल की आलोचना न केवल नस्लीय पूर्वाग्रहों को प्रदर्शित करती है, बल्कि इल्बर्ट बिल विवाद के मद्देनजर नस्लीय विरोध के वातावरण को भी प्रदर्शित करती है।<sup>40</sup> फर्ग्यूसन ने इस पुस्तक की प्रस्तावना में स्पष्ट रूप से अपने उद्देश्य को स्पष्टता से बताया है: “वास्तविक रुचि, हालांकि अंक की - यदि कोई हो - शायद बाबू राजेंद्रलाल मित्रा के पुरातात्विक कार्यों के विश्लेषण में नहीं है, बल्कि इल्बर्ट बिल्स (1883-84) पर चर्चा में है, जो इस प्रश्न में मिलती है कि क्या भारत के मूल निवासियों और यूरोपीय लोगों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए। वर्तमान

परिस्थितियों में राजेन्द्रलाल मित्र को भारतीय बुद्धिजीवी समाज के प्रतिनिधि के रूप में आका जाना चाहिए और इस संदर्भ में उनकी रचनाओं का विश्लेषण करते हुए, ये समझा जा सकता है कि क्यों भारतीय भारतीय बौद्धिक स्तर उनकी तार्किक क्षमता और न्यायिक अधिकारों पर यूरोपीयन का संशय होना स्वाभाविक है।<sup>41</sup>

यद्यपि इस पुस्तक के प्रकाशन के समय राजेन्द्रलाल को उनके योगदान के लिए औपनिवेशिक सरकार द्वारा विभिन्न आधिकारिक सम्मानों से नवाजा जा चुका था, लेकिन दिलचस्प बात यह है कि फर्ग्यूसन उन्हें केवल दुस्साहसी मूल निवासियों के एक नए वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में देखना पसंद करते हैं, जो प्राच्य अध्ययन पर पश्चिमी वर्चस्व को खतरे में डाल रहे हैं और अस्थिर कर रहे हैं। व्युत्पन्न प्रकृति की फर्ग्यूसन की थीसिस प्राचीन ग्रीस और रोम से प्रेरित भारतीय वास्तुकला को राजेन्द्रलाल मित्रा से एक मजबूत काउंटर तर्क मिला था, जिन्होंने भारत में स्वदेशी वास्तुशिल्प परंपराओं के विकास की क्रमिक प्रक्रिया का पता लगाया था। मित्रा मंदिर को उसके सामाजिक परिवेश में संदर्भित करने का प्रयास कर रहे थे और विशुद्ध रूप से इसकी सौंदर्य संबंधी साख पर ध्यान केंद्रित नहीं कर रहे थे।

जेम्स फर्ग्यूसन और अलेक्जेंडर कनिंघम जैसे दो प्रसिद्ध समकालीनों के भारतीय कला के प्रति उनके दृष्टिकोण में मूलभूत अंतर था। ऐसा कहने से पहले, यह ध्यान में रखना होगा कि उनके करियर प्राच्यवाद की व्यापक रुढ़ियों के साथ चला।

भारतीय वास्तुकला की अवधारणा रेखीय प्रगति में की गई थी जिसे बौद्ध से हिंदू और बाद में इस्लामी और इसके बाद के धर्मों द्वारा निर्दिष्ट किया गया था। फर्ग्यूसन के स्मारक केंद्रित दृष्टिकोण और कनिंघम के पुरातात्विक केंद्रित दृष्टिकोण दोनों ने वास्तव में कार्यात्मक या प्रतीकात्मक पहलू में जाये बिना भारतीय कला के शैलीगत पहलू पर प्रकाश डाला है।

#### वास्तुतात्विक अध्ययन : जेम्स बर्गस और भारतीय कला

1885 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण से सर अलेक्जेंडर कनिंघम की सेवानिवृत्ति के बाद, जेम्स बर्गस को एएसआई का नया महानिदेशक बनाया गया था।<sup>42</sup> बर्गस 1874 से पहले पश्चिमी भारत के पुरातत्व सर्वेक्षक के रूप में काम कर रहे थे और 'द इंडियन एंटीक्वेरी' नामक पत्रिका के संस्थापक के रूप में जाने जाते थे।<sup>43</sup> पश्चिमी भारत के सर्वेयर और रिपोर्टर के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान बर्गस ने तीन मोनोग्राफ प्रकाशित किए थे, --- बेलगाम और कलादगी जिले की प्राचीन वस्तुओं पर रिपोर्ट (1874), काठियावाड़ और कच्छ की प्राचीन वस्तुओं पर रिपोर्ट (1876) और बीदर की प्राचीन वस्तुएं और औरंगाबाद जिले (1878), जेम्स फर्ग्यूसन के साथ मिलकर उन्होंने द केव टेम्पल्स ऑफ इंडिया (1880) में भी सहयोग दिया।

जेम्स बर्गस (1886-1889) का संक्षिप्त कार्यकाल किसी भी तरह से कम घटनापूर्ण या महत्वपूर्ण नहीं था। बर्गस ने स्थापत्य प्रलेखन और प्राचीन स्मारकों के अध्ययन और स्थलों के सर्वेक्षण पर अधिक ध्यान दिया। यह आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि बर्गस जेम्स फर्ग्यूसन के एक स्वघोषित शिष्य थे, "... एक समर्पित अनुयायी, एक नवोन्मेषक के बजाय सिद्धांतों पर चलने वाला व्यक्ति, स्थिर और जमीनी व्यक्ति, अपने गुरु का समर्थन करने वाला।"<sup>44</sup>

बर्गस ने पुरातत्व सर्वेक्षण के कर्मचारियों द्वारा प्राचीन वस्तु के व्यक्तिगत संग्रह पर कानूनी प्रतिबंध लगाने के महत्व को महसूस किया और यूरोपीय बाजार में कला के खजाने की तस्करी को रोकने की कोशिश की।<sup>45</sup> बर्गस का यह प्रयास भारत में पुरालेख अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए उनकी रुचि से भी मेल खाता था, जिसने हाल ही में खोजे गए शिलालेखों के प्रकाशन में तेजी लाने के लिए एपिग्राफिया इंडिका (1892) नामक एक नई पत्रिका की शुरुआत की।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक कुछ रियासतों द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले स्थलों, स्मारकों और पुरावशेषों का व्यवस्थित अध्ययन, दस्तावेजीकरण और संरक्षण करने के लिए अलग-अलग पुरातात्विक विभाग और संग्रहालय स्थापित किए गए थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमी विद्वता पूर्व-औपनिवेशिक वास्तुकला के सौंदर्य और गुणवत्ता के बीच अंतर करना पसंद करती है। दूसरी ओर यह एक विवादास्पद विषय है कि क्या औपनिवेशिक धारणा को एक अखंड श्रेणी के रूप में देखा जा सकता है। उन्नीसवीं सदी में प्राच्यवादी शोध में प्रारंभिक भारतीय सौंदर्य संवेदनाओं से संबंधित अवधारणाएं और बहसों पश्चिमी और स्वदेशी विद्वता का विवादित क्षेत्र बन गईं। हालांकि ये दोनों श्रेणियां किसी भी तरह से अनन्य नहीं थीं, लेकिन औपनिवेशिक संदर्भ में पूर्व और पश्चिम के बीच एक जटिल संबंध के रूप में सामने आयी जिसमें कई मोड़ थे और जो कला इतिहास के उभरते विषयों पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

इतिहास विभाग

दयाल सिंह कॉलेज, (दिल्ली विश्वविद्यालय)

लोधी रोड, नई दिल्ली, पिन कोड 110003

#### संदर्भ -

1. सर विलियम जोन्स : द थर्ड एनिवर्सरी डिस्कोर्स ऑफ द हिंदुज, 2 फरवरी, 1786 को द वर्क्स ऑफ सर विलियम जोन्स में उद्धृत, वॉल्यूम -1, रॉबिन्सन एंड इवांस, लंदन, 1799. पीपी 19-34 विन्फ्रेड.पी. लेहमैन ए रीडर इन द नाइनटीन सेंचुरी हिस्टोरिकल इंडो-यूरोपियन लिंग्विस्टिक्स, इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस, पीपी 7-20, 20/02/2014 को <http://www.utexas.edu/cola/centers/lrc/books/read01> पर एक्सेस किया गया।
2. धर, पारुल पंड्या (2011)। 'इंडोडक्शन - ए हिस्ट्री आफ इंडियन आर्ट हिस्ट्री : द इंडियन कॉन्टेक्स्ट' धार में, पारुल पंड्या ईडी इंडियन आर्ट हिस्ट्री : चेंजिंग पर्सपेक्टिव्स, नई दिल्ली : डी.के. प्रिंटवर्ल्ड एंड नेशनल म्यूजियम इंस्टीट्यूट, पी 1।
3. ब्लेक, डेविड. एम (1991)। ब्रिटिश लाइब्रेरी जर्नल में 'कॉलिन मैकेंजी : कलेक्टर एक्सट्रा ओडिनरी', पीपी 128-150। हॉवेस, जेनिफर (2002) भी देखें। साउथ एशियाई स्टडीज में 'कॉलिन मैकेंजी एंड द स्तूप एट अमरावती', 18, पीपी 53-65।
4. मित्तल, पार्थ (1977)। मोच मालिगन्ड मॉन्स्टर्स : ए हिस्ट्री ऑफ यूरोपियन रिप्रेजेंटेशन्स टू इंडियन आर्ट, ऑक्सफोर्ड : क्लेरेंडन प्रेस, पीपी 123-127।
5. टिलोटसन, जी.एच.आर. (1993)। 'फरंगी एंड बाबू : टू अलर्ली थ्योरीज ऑफ इंडियन आर्किटेक्चर', इंडिया इंटरनेशनल सेंटर क्वार्टरली, 20, (1/2), पीपी 209-219।
6. गुहा-ठाकुरता, तापती (2004)। मोनुमेंट्स, ऑब्जेक्ट्स हिस्ट्रीस् : इंस्टीट्यूशन ऑफ आर्ट इन कोलोनियल एंड पोस्ट कोलोनियल इंडिया, नई दिल्ली : परमानेंट ब्लैक, पीपी 43-84।
7. माथुर, सलोनी (2011)। इंडिया बाई डिजाइन : कोलोनियल हिस्ट्री एंड कल्चरल डिस्प्ले, नई दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान, पीपी 6-7।
8. फर्ग्यूसन, जेम्स : आर्कियोलॉजि इन इंडिया विथ इस्पेशल रिफरेन्स टू द वर्क्स ऑफ बाबू राजेंद्रलाल मित्रा, लंदन 1884। (पुनर्मुद्रण 1974)। नई दिल्ली। पीपी 76-77।
9. शार्प एच. एड. (1920)। सेलेक्शंस फ्रॉम एजुकेशनल रिकार्ड्स, भाग I (1781-1839)। कलकत्ता : शिक्षा ब्यूरो, सरकारी मुद्रण। पुनर्मुद्रण (1965)। दिल्ली : भारत के राष्ट्रीय अभिलेखागार, पीपी 107-117।
10. इवांस, स्टीफन (2002)। 'मैकाले मिनट रिविजिटेड : कोलोनियल लैंग्वेज पालिसी इन निनटीथ सेंचुरी इंडिया', जर्नल ऑफ मल्टीलिंगुअल एंड मल्टिकल्चरल डेवलपमेंट, 23(4), पीपी 260-281।
11. हिंदुओं की वास्तुकला पर निबंध की प्रस्तावना में ब्रिटिश संरक्षक रिचर्ड क्लार्क द्वारा दिए गए संक्षिप्त जीवनी नोट को छोड़कर राम रज के जीवन और कार्यों के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं है। उनका नाम राम रज मूल राम राजा का अंग्रेजी संस्करण है।
12. गुहा ठाकुरता, तापती (2004)। ऑब्जेक्ट्स हिस्ट्रीस् : इंस्टीट्यूशन ऑफ आर्ट इन कोलोनियल एंड पोस्ट कोलोनियल इंडिया, नई दिल्ली : परमानेंट ब्लैक, पृष्ठ 91।

13. रज, राम (1834)। एसे ऑन द आर्किटेक्चर ऑफ द हिंदू, लंदन : रॉयल एशियाटिक सोसायटी, ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड, पीपी अपप-अपपप।
14. पार्कर, सैमुअल.के. (2003)। टेक्स्ट एंड प्रैक्टिस इन साउथ एशियन आर्ट : एन एथ्नोग्राफिक प्रेस्पेक्टिव, आरतिबस एशियाइ, 64(1), p7
15. देसाई, माधुरी (2012)। 'इंटरप्रेटिंग एन आर्किटेक्चरल पास्ट : राम रज एंड द ट्रीटीज़ इन साउथ एशिया' जर्नल ऑफ़ द सोसाइटी ऑफ़ आर्किटेक्चरल हिस्टोरियंस, वॉल्यूम 71, नंबर 4, पीपी 462-487।
16. रज, राम (1834)। एसे ऑन द आर्किटेक्चर ऑफ़ द हिंदू, लंदन : रॉयल एशियाटिक सोसायटी, ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड, पृष्ठ क्र. iii।
17. सिंह, उपेंद्र (2004)। द डिस्कवरी ऑफ़ अन्सिएंट इंडिया : अर्ली अर्च्योलॉजिस्ट्स एंड द बिगनिंग ऑफ़ अर्च्योलॉजी, नई दिल्ली : परमानेंट ब्लैक, पृष्ठ 312।
18. फर्ग्यूसन, जेम्स (1849)। एन हिस्टोरिकल इन्क्वायरी इंटो द टू प्रिंसिपल्स ऑफ़ ब्यूटी इन आर्ट। लंदन : लॉन्गमैन, ब्राउन, ग्रीन और लॉन्गमैन, पी क्र iii।
19. कोहन, बर्नार्ड, एस (1992)। द ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ़ ऑब्जेक्ट्स इंटो आर्टिफैक्ट्स, एंटीक्विटिस एंड आर्ट इन निनटीथ सेंचुरी इंडिया, मिलर, बारबरा एस. एड। द पावर ऑफ़ आर्ट, पट्रोनेज इन इंडियन कल्चर, नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ 303।
20. फर्ग्यूसन, जेम्स (1910, पुनर्मुद्रण 1997)। हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन ईस्टर्न आर्किटेक्चर, 1, दिल्ली : लो प्राइस पब्लिकेशन, पी X।
21. फर्ग्यूसन, जेम्स (1849)। एन हिस्टोरिकल इन्क्वायरी इंटो द प्रिंसिपल्स ऑफ़ ब्यूटी इन आर्ट। लंदन : लॉन्गमैन, ब्राउन, ग्रीन और लॉन्गमैन, पी क्र.iv।
22. फर्ग्यूसन, जेम्स (1910, पुनर्मुद्रण 1997)। हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन ईस्टर्न आर्किटेक्चर, 1, दिल्ली : लो प्राइस पब्लिकेशन, पृष्ठ 4-5।
23. कोहन, बर्नार्ड, एस (1992)। द ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ़ ऑब्जेक्ट्स इंटो आर्टिफैक्ट्स, एंटीक्विटिस एंड आर्ट इन निनटीथ सेंचुरी इंडिया, मिलर, बारबरा एस. एड। द पावर ऑफ़ आर्ट, पट्रोनेज इन इंडियन कल्चर, नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पी 317।
24. फर्ग्यूसन, जेम्स (1910, पुनर्मुद्रण 1997)। हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन ईस्टर्न आर्किटेक्चर, 1, दिल्ली : लो प्राइस पब्लिकेशन, पृष्ठ 307।
25. फर्ग्यूसन, जेम्स (1884, पुनर्मुद्रण 1999)। आर्कियोलॉजी इन इंडिया विथ एस्पेशल रेफरेंस टू द वर्क्स ऑफ़ बाबू राजेंद्रलाल मित्र, नई दिल्ली : एशियाई शैक्षिक सेवाएं, पीपी 76-77।
26. कनिंघम, अलेक्जेंडर (खंड 1.1871, पुनर्मुद्रण 2000) फोर रिपोर्ट्स मेड दूरिंग द ईयर 1862-63-64-65। नई दिल्ली : भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण। प्रस्तावना
27. चंद्र, प्रमोद (1975)। स्टडीज इन इंडियन टेंपल आर्किटेक्चर, नई दिल्ली : अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ़ इंडियन स्टडीज, पी 8.
28. कनिंघम, अलेक्जेंडर (खंड 1.1871, पुनर्मुद्रण 2000) फोर रिपोर्ट्स मेड दूरिंग द ईयर 1862-63-64-65। नई दिल्ली : भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, पृष्ठ 99 और खंड I की प्रस्तावना।
29. रॉय, सौरिंद्रनाथ (1953) "इंडियन आर्कियोलॉजी फ्रॉम जोन्स टू मार्शल, 1784-1902" इन्सिएंट इंडिया, नंबर 9, पीपी 14-15।
30. गुहा ठाकुरता, तापती (2004)। मोनुमेंट्स, ऑब्जेक्ट्स हिस्ट्रीस् : इंस्टीट्यूशन ऑफ़ आर्ट इन कोलोनियल एंड पोस्ट कोलोनियल इंडिया, नई दिल्ली : परमानेंट ब्लैक, पृष्ठ 89।
31. इमाम, अबू (1963) 'सर अलेक्जेंडर कनिंघम (1814-1893) : द फर्स्ट फेज ऑफ़ इंडियन आर्कियोलॉजी' जर्नल ऑफ़ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड, संख्या 3/4, पीपी 194-207।

32. जमींदारों (ज़मींदारों) के बेटों को पश्चिमी शिक्षा को बढ़ावा देने और सुविधा प्रदान करने के लिए कलकत्ता वार्ड इंस्टीट्यूशन एक सरकारी शैक्षणिक संस्थान था।
33. सरस्वती, एस.के. (1978) राजेंद्रलाल मित्रा 150वीं वर्षगांठ व्याख्यान में 'शराजा राजेंद्रलाल मित्रा', कलकत्ता : एशियाटिक सोसाइटी, पीपी 34-47। द्वारा संकलित, अनुवादित और संकलित संस्कृत ग्रंथों की सूची के लिए चक्रवर्ती, श्यामलकांति एंड (1991) देखें। राजेंद्रलाल मित्रा : एक सेंचुरी ओबिट, भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता, पीपी 35-40।
34. श्यामलकांति चक्रवर्ती, एंड (1991) राजेंद्रलाल मित्रा : ए सेंटेनरी ओबिट, कलकत्ता : भारतीय संग्रहालय, पीपी 35-40।
35. राजेंद्रलाल मित्रा- कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी, वर्नाक्युलर लिटरेचर सोसाइटी और बेथून सोसाइटी जैसे विभिन्न संगठनों और समाजों से जुड़े थे।
36. मोनुमेंट्स, ऑब्जेक्ट्स हिस्ट्रीस् : इंस्टीट्यूशन ऑफ आर्ट इन कोलोनियल एंड पोस्ट कोलोनियल इंडिया, नई दिल्ली : परमानेंट ब्लैक, पीपी 85-111।
37. सिंह, उपेंद्र (2004)। द डिस्कवरी ऑफ अन्सिएंट इंडिया : अर्ली अर्चियोलॉजिस्ट्स एंड द बिगनिंग ऑफ अर्चियोलॉजी। नई दिल्ली : परमानेंट ब्लैक पीपी 329- 331।
38. मित्रा, राजेंद्रलाल (1875)। ऐंटीक आफ उड़ीसा, खंड -I, कलकत्ता : वायमन एंड कंपनी, पीआई।
39. मित्रा, राजेंद्रलाल (1875)। ऐंटीक आफ उड़ीसा, खंड -I, कलकत्ता : वायमन एंड कंपनी, पी वी।
40. मित्रा, राजेंद्रलाल (1875)। ऐंटीक आफ उड़ीसा, खंड -I, कलकत्ता : वायमन एंड कंपनी, पृष्ठ 22।
41. इल्बर्ट बिल (1883) का नाम सर कर्टने पेरेग्रीन इल्बर्ट के नाम पर रखा गया था, जिन्होंने भारतीय परिषद (1882-86) के कानूनी सलाहकार के रूप में भारतीय न्यायाधीशों और मजिस्ट्रेटों को आपराधिक मामलों के संदर्भ में भारत के मौजूदा कानूनों में कुछ संशोधनों का मसौदा तैयार किया था। जिला स्तर की अदालतों में अंग्रेजी अभियुक्तों को शामिल करना। वायसराय लॉर्ड रिपन की पहल के तहत 1883 में पेश किए गए बिल को महानगर और कॉलोनी में भारी विरोध मिला, जिसे अंततः 1884 में प्रतिवादी के अधिकार के खंड के साथ जूरी द्वारा परीक्षण के लिए आवेदन करने के अधिकार के खंड के साथ कम से कम पचास यूरोपीय सदस्यों के साथ मिला था।
42. फर्ग्युसन, जेम्स (1884, पुनर्मुद्रण 1999) आर्कियोलॉजी इन इंडिया विथ एस्पेशल रेफरेंस टू द वर्क्स ऑफ बाबू राजेंद्रलाल मित्रा, नई दिल्ली : लो प्राइस पब्लिकेशन। पी अप.
43. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण से अपनी सेवानिवृत्ति से पहले सर अलेक्जेंडर कनिंघम ने संस्था की संरचना में कुछ बदलावों का सुझाव दिया। उन्होंने महानिदेशक के पद को समाप्त करने के साथ-साथ सत्ता के अधिक विकेंद्रीकरण और क्षेत्रीय हलकों की आभासी स्वायत्तता के लिए अनुरोध किया।
44. पत्रिका का पूरा नाम द इंडियन एंटीक्वेरी : ए जर्नल ऑफ ओरिएंटल रिसर्च इन आर्कियोलॉजी, हिस्ट्री, लिटरेचर, लैंग्वेजेज एंड फोकलोर आदि था। यह पत्रिका 1872 से 1933 तक प्रकाशन में थी।
45. चंद्र, प्रमोद (1975)। स्टडीज इन इंडियन टेंपल आर्किटेक्चर, नई दिल्ली : अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज, पी 15.

## धर्मपाल की इतिहास दृष्टि

राकेश मिश्रा

इतिहास से धर्मपाल जी का जुड़ाव इस तथ्य से चिन्हित किया जा सकता है कि 1942 के आंदोलन में उन्होंने प्रत्यक्षतः हिस्सेदारी की थी। 1942 के 8 अगस्त को मुंबई के 'गोवालिया टैंक मैदान' में गांधीजी का वह भाषण सुनने का उनको अवसर प्राप्त हुआ था जिसमें 'भारत छोड़ो आंदोलन' की घोषणा हुई थी। गांधीजी को प्रत्यक्षतः सुनने का ये अवसर धर्मपाल के जीवन में आजीवन मधुर स्मृति की तरह रहा और वह अपने जीवन, अपनी सोच, अपने कार्यों में इस स्मृति से प्रेरणा लेते रहे। वह अपने आपको 'गांधी युग का बालक' कहते थे और इस बात का भी सगर्व उल्लेख करते थे कि 'उन्होंने अपने जीवन के प्रारंभिक 25 साल गांधीजी के शासनकाल में बिताए हैं।'। जाहिर सी बात है शासनकाल से उनका तात्पर्य किसी राज्य संचालित व्यवस्था सेना न होकर एक ऐसी नैतिक और आत्मिक सत्ता से था, शायद जिसे उस समय के अधिकांश गांधीवादी महसूस करते रहे होंगे। इस तरह के सत्ता की स्वीकार्यता की परंपरा भारतीय मानस में पहले भी रही है। यदि हम भारतीय मध्य-युग के भक्तिकाल को देखें तो इस तरह की ज्यादा बड़ी सत्ताओं के प्रति भक्त कवियों का समर्पण सुविख्यात है। तुलसीदास के यहां 'तुलसी अबका हुई हैं नर के मनसबदार' जैसे पद मिलते हैं जो प्रचलित राज्यसत्ताओं की निरर्थकता और उसकी निस्सारता की तरफ संकेत करते हैं। अंग्रेजी शासन व्यवस्था में रहने के बावजूद अपने आपको गांधी द्वारा शासित मानना धर्मपाल के निर्मिति का एक प्रमुख प्रस्थान बिंदु है। 1942 के उस आंदोलन में छिटपुट भागीदारी करने से प्रारंभ हुई धर्मपाल की यात्रा गांधीजी के प्रभाव में काफी दूर तक गई। उन्होंने गांधीजी की चिंताओं का, उनके लेखन का, उनकी समझ का अनुशीलन किया और उनके मर्म के समझने की बेचौनी उन्हें इतिहास तक खींच ले आयी। दरअसल जब हम धर्मपाल के इतिहास लेखन और उनकी इतिहास-दृष्टि की बात करते हैं तो इसे हमें गांधीवाद या गांधीजी के साथ उनके अदम्य आकर्षण और उसको इतिहास की जरूरत के जटिल संबंधों में समझना होगा।

हम सब जानते हैं कि गांधीजी ने 1909 में जो किताब लिखी 'हिंदस्वराज' उसे गांधीजी की मान्यताओं का घोषणा पत्र भी समझा जाता है। वह एक ऐसे नए भारत के निर्माण का आह्वान था जिसमें भारतीयता की सही समझ अनुगूजित हो रही थी। यह वह समय था जब भारत का अधिकांश मानस यूरोपीय सभ्यता की श्रेष्ठता को निशंक तौर पर स्वीकार कर चुका था। भारतीय पुनर्जागरण की घटना घट चुकी थी और उसके तमाम गुण-दोषों से परे एक तथ्य तो निर्विवाद रूप से स्थापित था कि यूरोपीय हमसे हर मामले में श्रेष्ठ हैं। उनका प्रतिकार जरूरी तो है परंतु उनसे लड़ने के लिए उनकी ही तरह बनना होगा या उनसे आगे जाना होगा। आश्चर्यजनक रूप से यह किताब इस मानसिकता को चुनौती देती हुई किताब लगती है। भारतीयता का जो आशय गांधीजी ले रहे थे और जिसके बारे में बहुत आश्वस्त और गर्वितभाव से निश्चित थे, उस समय के समाज में अधिकांश लोगों के लिए यह बहुत खटकने वाली बात थी। अधिकांश के लिए यह एक विक्षेपकारी घटना थी और गांधीजी की सोच एक इतिहास

विरुद्ध सोच का नमूना थी। हम सब अवगत हैं कि खुद 'गोपाल कृष्ण गोखले' जैसे नेता ने इस किताब को 'सनक का पुलिंदा' बताया था और यह आशा व्यक्त की थी कि भारत लौटने पर गांधीजी स्वयं इस किताब को निरस्त कर देंगे।<sup>1</sup> लेकिन ऐसा हुआ नहीं, भारत आने पर भी गांधीजी की आस्था इस किताब में निरंतर और उत्तरोत्तर बलवती ही रही और बाद में उन्होंने कहा भी कि इस किताब में यदि कोई बदलाव करना ही हो तो वे सिर्फ एक शब्द बदलना चाहेंगे। अपने विचारों के प्रति गांधीजी के इस तरह के आग्रह को कई लोगों ने उनका हठ और दुराग्रह भी माना लेकिन धर्मपाल जैसे लोगों के लिए यह आकर्षण का विषय था कि जो गांधी निरंतर सत्य के साथ प्रयोगों में यकीन रखते हैं, जो इस बात पर एकदम आश्वस्त हैं कि दो परस्पर विरोधी कही गई बातों में से अभी कही गई बात को ही प्रमाण माना जाए, वह व्यक्ति 1909 में लिखी गई अपनी किताब की मान्यताओं के बारे में आजीवन कैसे इतना दृढ़ रहा? यदि यह सिर्फ आग्रह या दुराग्रह हुआ होता तो इसे उनके व्यक्तित्व के अन्य पक्षों में भी लक्षित किया जाना चाहिए था। जाहिर सी बात थी इस किताब को पढ़ने की प्रविधि में कुछ चूक हो रही थी। आखिर गांधीजी हिंद स्वराज में जो कि बहुत पतली सी किताब है, किन मान्यताओं को लेकर इतने आश्वस्त थे कि वह उसमें एक शब्द का भी परिवर्तन नहीं करना चाह रहे थे। पहली बात तो भारत की परंपरा में व्याप्त अन्याय के विरोध के स्वर को पहचानने का था। हिंद स्वराज में गांधीजी संपादक-पाठक संवाद में एक जगह लिखते हैं कि 'एक छोटे से राज्य में राजा के किसी आदेश से ग्रामवासी अन्याय की भावना का अनुभव करते थे। उस कारण से ग्रामवासी गांव खाली करके जाने लगे। राजा हताश हो गया उसने प्रजा से माफी मांगी और आदेश वापस ले लिया। भारत में ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलेंगे।'<sup>2</sup> गांधीजी के इस कथन को कैसे समझा जाए, ऐसे कौन से प्रमाण हैं जिससे गांधीजी के इस कथन की पुष्टि होती हो क्योंकि गांधीजी कह रहे थे कि 'वास्तविकता यह है कि भारत में जीवन के तमाम क्षेत्रों में शांति पूर्ण प्रतिकार होता रहा है। जब अपने शासक हमें नाखुश करते हैं तब हम उन्हें सहयोग देना बंद कर देते हैं। यह शांतिपूर्ण अथवा परोक्ष प्रतिकार है।'<sup>3</sup> अधिकांश गांधीवादी अध्ययता महात्मा गांधी के असहयोग और सविनय-अवज्ञा संबंधी उनके आंदोलनों को 'हेनरी डेविड थोरो' और 'रस्किन' का गांधीजी पर पड़े प्रभाव से उद्भूत मानते हैं। स्वयं गांधीजी ने भी एक से अधिक स्थानों पर इन दोनों विचारकों की प्रशंसा की है परंतु थोरो का प्रयोग एक व्यक्तिगत प्रयास भर था। एक सामूहिक रूप से इस सिद्धांत पर इतने बड़े आंदोलन की कल्पना करना और उसे सफलतापूर्वक संचालित करना सिर्फ किसी सिद्धांत के बूते की बात नहीं थी। जब तक की उस आंदोलन में शामिल जनता उन तरीकों को अपनी परंपरा में समझने की आदी ना रही हो। और यदि यह परंपरा थी तो भारतीय इतिहासकार अपने विश्लेषण में इसका उपयोग क्यों नहीं करते थे? इस सवाल से जूझते हुए धर्मपाल ने 'सत्याग्रह की भारतीय परंपरा' शीर्षक से एक दीर्घ निबंध लिखा। इस निबंध में सायास तरीके से उन्होंने भारतीय पौराणिक आख्यानों में व्याप्त सत्याग्रह के प्रमाणों की उपेक्षा की और बिल्कुल वस्तुपरक तरीके से 17वीं और 18वीं शताब्दी में भारत के विभिन्न शहरों, गांवों में इस तरह के आंदोलनों की पड़ताल की। अपने इस पड़ताल में धर्मपाल बहुत निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भारत के इतिहास में बहुत पीछे गए बिना, 18वीं और 19वीं शताब्दी से संबंधित भारत और ब्रिटेन के स्रोतों एवं सामग्री की सुव्यवस्थित खोज से महात्मा गांधी और जेम्स मिल के मंतव्य की सच्चाई के पर्याप्त प्रमाण मिल सकते हैं। उन्हें यह भी संकेत मिलते हैं कि सरकार के दमनकारी और अत्याचारी कदम के सामने भारत के द्वारा उपयोग में ली जाने वाली सविनय कानून भंग और असहयोग की पद्धतियां प्रमुख थीं। अपने इस निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए धर्मपाल ने ब्रिटेन के शासन में हुए पत्र-व्यवहार में खास रुचि ली। उन्होंने नवंबर 1880 के ब्रिटिश गवर्नर और मद्रास काउंसिल के बीच हुई कार्यवाही में अंग्रेजी सरकार की रिपोर्ट को रेखांकित किया 'शहर में जनता की एक जाति ने अनेक पत्र लिखे, फिर कई लोग 'सेंटथॉमस' के पास एकत्रित हुए। जिन्हें पत्र लिखे गए थे उनमें कंपनी में नौकरी करने वाले दो अधिकारियों को और जो उनके समर्थन में बाहर नहीं आए, उनको हत्या की धमकी दी गई। फिर उन्होंने बैलों पर से कपड़ा फेंक कर दरी बिछाकर उन पर शहर में आने वाला सामान धूल में मिलाकर शहर में उन सभी चीजों का आना बंद कर दिया। फिर समग्र शहर को ढोल, नगाड़े बजा बजा कर सूचना दी गई जिसमें मद्रास पटनम में अनाज अथवा लकड़ी लाने पर मनाही की गई थी। जो लोग हमारे

लिए (अंग्रेजों के लिए) चूल्हा जलाते थे उनके घर का बहिष्कार किया जाता और उन्हें चूल्हा जलाने के लिए अथवा उसके लिए चंदा एकत्र करने पर मनाही की गई थी।<sup>5</sup> इसी तरह धर्मपाल 1830-31 में कर्नाटक में एक आंदोलन का जिक्र करते हैं और उसमें भी एक ब्रिटिश अधिकारी द्वारा लिखे गए रिपोर्ट को ही आधार बनाते हैं जिसमें लिखा था 'यहाँ परिस्थितियाँ बिगड़ी जा रही हैं। पिछले कुछ दिनों तक लोग शांत थे। दिन-प्रतिदिन उनके एकत्र होने का क्रम बढ़ता जा रहा है। कलपेन्नूर में लगभग 11000 लोग एकत्रित हो गए थे। लगभग 1 घंटापूर्व 300 लोग यहाँ आए थे। वह तहसीलदार के कचहरी में प्रविष्ट हुए और एक भी पैसा ना देने की प्रतिबद्धता उन्होंने व्यक्त की और कहा कि उन्हें दंड से पूर्णमाफी चाहिए। तहसीलदार ने उन्हें कहा कि जमाबंदी हल्की है और उनकी फसल अच्छी हुई है। उन्होंने कहा कि उन्हें उसके बारे में कोई शिकायत नहीं है। उन्हें सरकार से शिकायत है कि उनपर कार्यस्टैप, नियंत्रण, नमक और तंबाकू का एकाधिकार लगाया गया है। उसे वापस लेना चाहिए।' <sup>6</sup> धर्मपाल ने इस निबंध में ब्रिटिश सरकारी अधिकारियों के बीच हुये पत्र व्यवहारों से संबंधित तमाम अभिलेखों को शामिल किया है। इसमें बनारस, पटना, सारण, मुर्शिदाबाद और भागलपुर में 1810 और 1811 में लोगों द्वारा ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध चला नागरिक अवज्ञा आंदोलनों का विस्तार से वर्णन है। ये सभी आंदोलन गांधीजी के पहले के असहयोग और नागरिक अवज्ञा के आंदोलन के श्रेष्ठ उदाहरण थे जिन्हें लगभग भुला दिया गया था।

धर्मपाल का एक और महत्वपूर्ण लेखन कार्य जो 18वीं शताब्दी में भारत की शिक्षा से संबंधित है। 20 अक्टूबर 1931 को लंदन के 'रॉयल इंस्टीट्यूट ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स' में महात्मागांधी ने एक ऐतिहासिक भाषण दिया था। जिसमें उन्होंने स्पष्ट कहा था कि 'विगत 50 से 100 वर्षों में भारत में साक्षरता का अत्यंत हास हुआ है और इसके लिए अंग्रेज जिम्मेवार हैं।' <sup>7</sup> आगे गांधीजी ने कहा था कि अंग्रेज जब भारत में आए तब उन्होंने यहां की स्थिति को यथावत स्वीकार करने के स्थान पर उसका उन्मूलन करना शुरू किया। उन्होंने मिट्टी कुरेदी, जड़ों को कुरेदकर बाहर निकाला और फिर उन्हें खुला ही छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि शिक्षा का वह रमणीय वृक्ष नष्ट हो गया। <sup>8</sup> गांधीजी के इस भाषण की व्यापक प्रतिक्रिया हुई और कई लोगों ने गांधीजी को अपनी बात साबित करने की चुनौती दी। इसमें 'सर फिलिप हार्टोग' का नाम प्रमुख है। जिसने व्यक्तिगत रूप से और अंग्रेज सरकार के प्रतिनिधि के तौर पर भी गांधीजी से अपने कथन के समर्थन में अभिलेखीय प्रमाण मांगे। यद्यपि उस समय गांधीजी जेल में थे फिर भी उनके साथियों ने हार्टोग को प्रमाण पहुंचाए थे। लेकिन उससे वह संतुष्ट नहीं था और 4 वर्ष बाद गांधीजी के कथनों को गलत सिद्ध करने के लिए उसने लंदन विश्वविद्यालय के 'इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन' में एक व्याख्यान माला आयोजित की जिसके व्याख्यान को 'सम आस्पेक्ट्स ऑफ इंडियन एजुकेशन पास्ट एन्ड प्रेजेंट' नामक शीर्षक से पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया। धर्मपाल यह मानते हैं कि गांधीजी को गलत सिद्ध करने में हार्टोग ने अपने विवेक बुद्धि का थोड़ा भी उपयोग नहीं किया था। वह हार्टोग को एक प्रमाणिक अंग्रेज की तरह, पढ़ाये गए तोते की तरह केवल भारत में स्थित अंग्रेजों की नीतियों का समर्थन करने वाला व्यक्तित्व ही सिद्ध करते हैं। हार्टोग की विवेक, बुद्धि पर सवाल उठाते हुए धर्मपाल 18वीं शताब्दी में भारत में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति का ब्रिटिश नजरिए और उनके अभिलेखों की सहायता से ही आकलन करने का प्रयास करते हैं। चेन्नई में भारत की बुनियादी शिक्षा पद्धति के बारे में अंग्रेजों के किए गए सर्वेक्षणों पर आधारित उनकी यह किताब भारत में अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत की प्राथमिक शिक्षा की पहुंच को रेखांकित करती है। धर्मपाल इस पर आश्चर्यचकित हैं यह रिपोर्ट खुद अंग्रेजों ने 1831-32 में ब्रिटेन की संसद में प्रस्तुत की थी। परंतु भारत विषयक शिक्षा संबंधी शोधों में इन अभिलेखों का कोई जिक्र नहीं मिलता। धर्मपाल अपने इतिहास लेखन की पद्धति में किसी निर्णय पर पहुंचने की हड़बड़ी नहीं करते। वह एक पेशेवर इतिहासकार की तरह प्राप्त अभिलेखों से कुछ निष्कर्ष निकालने की शैली के भी मुरीद नहीं हैं। वह सिर्फ उपलब्ध दस्तावेजों को हमारे सामने रखते हैं और इस विडंबना की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं कि ये दस्तावेज उनके द्वारा ही उपलब्ध कराए गए हैं जिनके दावे इन दस्तावेजों से उलट हैं। वस्तुतः धर्मपाल के इतिहास लेखन की पद्धति एक आईना दिखाने की सी पद्धति है जिसमें वह तथ्यों को हुबहू रखने पर बल देते हैं। 'वह कहते भी हैं कि उनके लेखन का प्रयोजन अंग्रेजों के शासन की

कड़ी आलोचना करना बिल्कुल नहीं है। वह केवल 18वीं शताब्दी के अंतिम चरण से 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक समय के भारत के यथार्थ चित्र को, भारत के समाज को, उसके रीति-रिवाजों को और संस्थाओं को, उनकी सिद्धियों को और मर्यादाओं को यथासंभव दस्तावेजों के माध्यम से समझने का एक प्रमाणिक प्रयास मात्र है।<sup>9</sup>

अपनी इसी पद्धति का प्रयोग वह अपनी एक और महत्वपूर्ण किताब 'इंडियन साइंस एंड टेक्नोलॉजी इन द एटीथ सेंचरी' में भी करते हैं। नवजागरण के प्रमुख निष्कर्षों में से यह भी एक प्रमुख निष्कर्ष था कि अंग्रेज हमसे ज्ञान और विज्ञान में काफी आगे हैं। दुनिया का एक ऐसा चित्र खींचा गया जिसमें यूरोप में हुए पुनर्जागरण और उसके बाद की वैज्ञानिक क्रांति से ही दुनिया भर में विज्ञान और तकनीक का सूत्रपात हुआ और सभी देशों को इस मामले में अंग्रेजों का ऋणी होना चाहिए। गांधीजी जब हिंद स्वराज्य में यंत्र की मर्यादा का सवाल उठाते हुए यांत्रिक सभ्यता का विरोध करते हैं और भारत की कारीगरी और उसकी हस्त शिल्प की प्रशंसा करते हैं तो न सिर्फ उस समय के विज्ञानवादी बल्कि आज के भी कई लोग उक्त सभ्यता के बारे में गांधीजी के प्रतिपादन को नैराश्यपूर्ण और विचित्र मानते हैं। गांधीजी से पूर्व के हुए कुछ अध्ययन हमें इस बात की तरफ इशारा जरूर करते दिखते हैं कि अंग्रेजों के आने से भारत की परंपरागत, उद्योग प्रणालियां और उसकी लाजवाब कारी उदाहरण के तौर पर 1905 में 'सखाराम देउसकर' की किताब 'देशेरकथा' का उल्लेख किया जाता है। फिर भी अधिकांश जनमानस का यह मानना है भारी यंत्रों पर आधारित उद्योगों के फैलाव की इस दुनिया में छोटे कारीगरों और यंत्रों का लुप्त हो जाना कोई बड़ी बात नहीं। भारी यंत्रों पर आधारित यह सभ्यता अपनी निष्पत्ति में चाहे जितनी विचित्र हो गई हो लेकिन एक बड़े समुदाय को रोजगार देने, उसका आर्थिक वहन करने में, अभी भी इसका कोई विकल्प नहीं है। यहां इस बात को बल मिलता है कि भारत में विज्ञान और तंत्र की स्थिति कारीगरी और कुशलता के स्तर पर चाहे जितनी समृद्ध रही हो विज्ञान की दृष्टि से उन्नत नहीं थी। धर्मपाल यहाँ फिर से आईना दिखाने वाली प्रविधि का इस्तेमाल करते हुए इतिहास लेखन का एक अलग नमूना प्रस्तुत करते हैं। वह अंग्रेजों द्वारा उपलब्ध दस्तावेजों के आधार पर ही 18वीं शताब्दी में भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की वास्तविक स्थिति प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। यहां भी वह सायास तरीके से कपडेभ की बुनाई, युद्ध की सामग्री, बागवानी की पद्धतियां या पशुपालन जैसे विषय छोड़ देते हैं, जिसमें कारीगरी और कुशलता की ज्यादा आवश्यकता होती है। वे विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उन्हीं विवरणों का उपयोग करते हैं जो अंग्रेजों की श्रेष्ठता के आधार माने जाते थे। वह भारत में इस्पात बनाने की कला और उसका उत्पादन, खगोलशास्त्र के बारे में भारत की जानकारी, भारत में वेधशालाओं की प्रमाणिक उपस्थिति, भारत में टीकाकरण की परंपरा, बर्फ बनाने की भारतीय पद्धति, कागज बनाने का उद्योग, जीवाणुओं से फैलने वाले रोगों की जानकारी और उनका बचाव जैसे आधार प्रश्नों को उठाते हैं। ये वही आधार हैं जिन पर यूरोप की वैज्ञानिक क्रांति का निष्कर्ष टिका हुआ है। धर्मपाल इन विवरणों को हमारे सामने लाने में एक भी भारतीय संदर्भ का उदाहरण नहीं लेते। वह भारत में अलग-अलग हैसियत से आए यूरोपीय सरकार के कर्मचारियों के पत्रों, उनके रिपोर्ट्स, उनका यात्रा विवरण और उनकी डायरियों को ही अपने विश्लेषण का आधार बनाते हैं। उनके ही विवरण इस बात को सिद्ध करते हैं कि भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की ऐसी मजबूत उपस्थिति थी जिसे सिर्फ परंपरागत ज्ञान नहीं कहा जा सकता। वे उन्हीं वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित थे जिसका डंका यूरोप ने अपने वैज्ञानिक क्रांति के नाम पर पीटा था। वह इन दस्तावेजों के माध्यम से ऐसी कई विडंबनाओं की तरफ संकेत करते हैं जो अंग्रेजों के सिर्फ जातीय दंभ से निःसृत थी। जैसे "भारतीय लोहे और फौलाद का उत्पादन तो करते थे लेकिन उन्हें अपने कारीगरी विषयक जानकारी नहीं थी। कुल मिलाकर उनका मानना था कि उत्पादन के सिद्धांत की जानकारी का भारतीयों में अभाव था।"<sup>10</sup> धर्मपाल मानते हैं कि 'ज्ञान रखने और उसका विकास और परिष्कार करने का काम एक दूसरे के साथ जुड़ा हुआ होते हुए भी एक अलग ही वर्ग का होता है।'<sup>11</sup> व्यवसायिक और सिद्धांत निर्धारकों के बीच का भेद इसके पहले कभी भी इतना नहीं था जितना अंग्रेजों ने बढ़ाया। धर्मपाल ने अंग्रेजों के ही विवरणों से 18 वीं शताब्दी में भारत में प्लास्टिक-सर्जरी के प्रचलन का विवरण भी उपलब्ध कराया है। अंग्रेजों के आने से बहुत पहले भारत में चेचक प्रतिरोध के टीके प्रयोग में लाए जाते रहे। यदि समग्र भारत को छोड़ भी दिया जाए तो कम से कम

उत्तर और दक्षिण भारत के बहुत बड़े क्षेत्र में ये व्यापक रूप से प्रचलित थे। इसी तरह भारतीय कृषि विषयक टेक्नोलॉजी भी अंग्रेजी दस्तावेजों में विडंबनात्मक रूप से प्रस्तुत हुआ है। 18 वीं शताब्दी के भारत में कृत्रिम सिंचाई का अभाव था यह बताने वाली पाठ्य पुस्तकों के विवरण के साथ स्वयं अंग्रेजों के निरीक्षण विरोधाभास उत्पन्न करते हैं। 'अलेक्जेंडर वाकर' जो ब्रिटिश सरकार में अधिकारी थे उनका निरीक्षण यह बताता है 'भारतीय खेती में छिटकावया सिंचाई कोई आश्चर्य की बात नहीं है बल्कि काफी मात्रा में इसका उपयोग अधिक निष्ठा तथा कुशलता से होता है।'<sup>12</sup>

धर्मपाल अंग्रेजी विवरणों से ही स्पष्ट करते हैं कि भारत में कृत्रिम सिंचाई के अलावा बारी-बारी से बदलते हुए फसल लेने, खाद का उपयोग करने, फाल से जोतने और वैविध्यपूर्ण औजारों का उपयोग करने की पद्धति बहुत व्यापक थी। उनके विवरण यह बताते हैं कि भारतीयों की मिट्टी की पहचान और गुणवत्ता विषयक अच्छी समझ थी और मालाबार जैसे प्रदेश में धान की कुछ फसलें कटाई के द्वारा उगाई जाती थी।

अब सवाल उठता है कि धर्मपाल की चिंताओं में 18वीं शताब्दी का भारत क्यों है? कई बार धर्मपाल के सहयोगियों ने भी उन्हें उनके इस काम के लिए टोका। खुद धर्मपाल जिक्र करते हैं कि उनके दोस्त कहते थे गड़े मुर्दे उखाड़ने से क्या फायदा? यह मान लो कि 18वीं शताब्दी में भारत में यह सब कुछ है भी और उससे थोड़े गर्व की अनुभूति भी होती हो तो भी इसका फायदा क्या है? जाहिर सी बात है कि धर्मपाल की सामाजिक उपस्थिति एक इतिहासकार की नहीं रही है। इसकी अपेक्षा उन्हें एक सामाजिक कार्यकर्ता और एक परिवर्तनकारी विचारक के तौर पर ज्यादा महत्व दिया गया है। वरना एक इतिहासकार से इस तरह के सवाल पूछना बेमानी होगा कि वह अतीत में क्यों जा रहा है? दरअसल 18वीं शताब्दी का समय एक नई विश्व व्यवस्था के बनने का भी समय है। यह विश्व व्यवस्था जो यूरोप केंद्रित विश्व व्यवस्था होगी और एक मात्र विश्व व्यवस्था होगी। 18वीं शताब्दी के बाद से जिस ज्ञान मीमांसीय अवधारणा में हम रह रहे हैं उससे यही प्रतीत होता है कि यह विश्व व्यवस्था स्वभाविक थी। चिरंतन थी। और इसका दूसरा कोई विकल्प नहीं था। धर्मपाल की चिंता और चिंता से उद्भूत लेखन दरअसल एक गुम हुए विश्व व्यवस्था की तलाश करने की भी रही है। यह विश्व व्यवस्था जो यूरोप की केंद्रीयता से पहले दुनिया में अस्तित्वमय थी। 'पूर्व' उसका आधार था। संभवतः चीन या भारत उसकी बड़ी शक्तियां थी। उदयन बाजपेई से एक लंबे साक्षात्कार में धर्मपाल एक चीनी एडमिरल 'चांग' का जिक्र करते हैं, जो लगभग अपने 18000 सैनिकों के साथ चीन से मोजाबिक तक की यात्राएं करता था। वह अपनी 18 नौकाओं और हजारों सैनिकों के साथ भारत के मालाबार तट पर लगभग 3 महीने तक बिना युद्ध की आकांक्षा के खड़ा रहा।<sup>13</sup> दिलचस्प है कि चांग का वर्णन अभी 'युवाल नोवा हरारी' की किताब 'सेपियंस' में भी बहुत प्रमुखता से हुआ है। हरारी खुद आश्चर्य करते हैं कितनी उन्नत जहाजरानी का स्वामीचीन, जिसके पास चांग जैसा इतना कुशल एडमिरल हो, जो मोजाबिक तक की निर्बाध यात्राएं कर सकता हो, उसने दुनिया के दूसरे देशों पर कब्जा करने की कोशिश क्यों नहीं की? जैसे कि यूरोप में समुद्री मार्गों का पता लगते ही उपनिवेश बनाने की होड़ सी लग गई और वैज्ञानिक क्रांति और साम्राज्यवाद एक दूसरे से इस तरह अंतरसंबंधित मान लिए गए कि जैसे दोनों एक-दूसरे के पूरक हों। वैसे में भारत की इतनी उन्नत अर्थव्यवस्था, भारत में ज्ञानविज्ञान, प्रौद्योगिकी की उन्नत व्यवस्था, चीन का इतना बड़ा साम्राज्य, चीन की उन्नत टेक्नोलॉजी आखिर किस बात की तरफ इशारा करती हैं।

धर्मपाल जिन सवाल से जूझ रहे थे वे सवाल अब धीरे-धीरे एक व्यापक अकादमिक सवाल बनते जा रहे हैं। हरारी की किताब दुनिया में खूब पढ़ी गई है और लोग उनकी चिंता से बावस्ता हैं या उसके सवाल से मुतमईन हैं कि आखिर पूर्व के देश अपने ज्ञान विज्ञान से क्यों नहीं दूसरे देशों पर शासन करने की इच्छा रखते थे? जाहिर सी बात है इसका उत्तर सिर्फ ऊपरी सतह के बहसों से नहीं दिया जा सकता। इसका उत्तर, संभवतः 'पूर्व' की उन दार्शनिक परंपराओं में छुपा हुआ है जो परंपरा लोगों के कल्याण पर केंद्रित है। दुनिया में सिर्फ शासक और शासित का ही संबंध नहीं होता है। वह संबंध मैत्री का भी होता है, वह संबंध सहयोग का होता है जिसकी बात गांधीजी हिंद स्वराज में करते थे। 'यदि दुनिया युद्धों के कारण ही बनी होती तो यह दुनिया कई बार नष्ट हो चुकी होती। दुनिया यदि युद्धों के बावजूद बची रहती है तो उसके पीछे मनुष्यता की वह सहकारिता की ताकत, एक दूसरे से प्रेम करने की कला और एक दूसरे से सहयोग करने की ताकत के बल पर खड़ी होती है।'<sup>14</sup>

वह विश्व व्यवस्था जो 'पूर्व' की विश्व व्यवस्था थी, जिसके गुम हो जाने का अफसोस, और उसको ढूँढ निकालने का दावा धर्मपाल की चिन्ताओं में दिखता है, वह इसी सहयोग और सहकार पर आधारित विश्व व्यवस्था के पहचान की बात है। जिसमें ज्ञान विज्ञान की शक्ति दूसरों पर नियंत्रण करने के लिए नहीं बल्कि दूसरों को इनलाइटेन करने के लिए, दूसरों को भी उस यात्रा में शामिल करने के लिए थी। अपने ज्ञान में दूसरों का कल्याण खोजने की प्रवृत्ति थी और संभवतः यही वास्तविक तत्वबोध है जिसकी तलाश भारत को या समूचे 'पूर्व' को करनी है। 17वीं-18वीं शताब्दी का वैभव तो हूबहू नहीं लौटाया जा सकता है लेकिन उस वैभव के भान होने के बाद से जो एक स्वबोध जागृत होगा तो हम उस गुम हो चुकी विश्व व्यवस्था का भी अनुभव कर पाएंगे तब उनके मूल्यों को भी हम आत्मसात कर सकेंगे। और तभी शायद एक नए संसार की सृष्टि कर पाएंगे। एक नई समाज रचना संभव हो पाएगी जो हमारे अपने तत्वबोध से संचालित होगी। धर्मपाल मानव जाति जैसी किसी अवधारणा में यकीन नहीं करते। वह कहते हैं कि इसके कहने से एक ऐसा बोध होता है जैसे हम तमाम संस्कृतियों को एक ही तरीके से देखने के पक्षधर हों। यह धरती जैसे प्राणियों का एक समुच्चय है वैसे ही तमाम मनुष्यों का भी समुच्चय है। वह अपनी संस्कृतियों के साथ, अपनी सभ्यताओं के साथ है। सिर्फ मनुष्य हो जाने मात्र से वह सिर्फ एक इकाई नहीं हो जाते हैं। वह मनुष्यों की बहुलता के समर्थक हैं। वे उसको उनके अपने संस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखने के हिमायती हैं और यह मानते हैं कि बहुत ज्यादा दूरी वाले देशों के साथ बहुत ज्यादा निकटता पैदा करने की कोशिश करना एक इतिहास विरुद्ध संकेत है। जैसे गांधीजी स्वावलंबन का अर्थ एकाकीपन से नहीं लेते थे। स्वावलंबन का आदर्श उनका परस्पर निर्भरता का आदर्श था और वह परस्पर निर्भरता स्थानिकता से तय होती थी। धर्मपाल इस अवधारणा को अंतरराष्ट्रीय संबंधों में बढ़ाते हुए पड़ोसी राष्ट्रों से मित्रता को ही अंतरराष्ट्रीय संबंधों की सफलता का मूल आधार मानते हैं। वह अपने निष्कर्ष और चिंतन में यहां तक पहुंचते हैं कि भारत को यदि वास्तविक तौर पर भारत होना है तो उसे अमेरिका और रूस की मुखापेक्षी रहने का रास्ता छोड़ना होगा। उसे बर्मा, श्रीलंका, पाकिस्तान, बांग्लादेश, चीन के साथ अपने संबंधों को सुधारना होगा। उनके साथ सहयोग की एक भावना अपनानी होगी तभी उस गुम हो चुकी विश्व व्यवस्था का आभास हमें हो पाएगा।

अहिंसा एवं शांति अध्ययन विभाग  
महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय  
वर्धा (महाराष्ट्र) - 442001

#### संदर्भ -

1. धर्मपाल, गाँधी को समझे, पृष्ठ -1
2. गांधीजी, हिंदस्वराज, भूमिका महादेव देसाई, पृष्ठ -24
3. गांधीजी, हिंदस्वराज, पृष्ठ -68
4. वहीं, पृष्ठ -67
5. धर्मपाल. भारतीय परंपरा में असहयोग, पृष्ठ -7
6. वहीं, पृष्ठ -8
7. धर्मपाल, रमणीय वृक्ष : 18वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा, पृष्ठ -5
8. वहीं, पृष्ठ -7
9. वहीं, पृष्ठ -6
10. धर्मपाल, 18वीं शताब्दी में भारत में विज्ञान एवं तंत्र ज्ञान, वहीं, पृष्ठ -21
11. वहीं, वहीं, पृष्ठ -22
12. वहीं, वहीं, पृष्ठ -16
13. उदयन वाजपेयी, स्मृति मति प्रज्ञा, वहीं, पृष्ठ -96
14. गांधीजी, हिंद स्वराज, वहीं, पृष्ठ -62

## कुबेरनाथ राय और उनका भारत बोध

मनोज कुमार राय

आज भारत और भारतीयता की चतुर्दिक चर्चा है। विश्वविद्यालयों के अध्यापक हों या उच्च अध्ययन संस्थानों के शोधरत फेलो हों, इतिहासविद् हों या राजनीतिक कार्यकर्ता आज सभी इसकी युयुत्सु-व्याख्याता बने हुए हैं। इनकी सक्रियता को जो 'म्यूजियम इण्टरेस्ट' जैसा ही है, श्री केशवचन्द्र वर्मा आज से लगभग तीन दशक पहले ही भाँप गए थे। वे लिखते हैं, "इस समय सभी को 'देश' की चिंता व्यापी हुई है। कोई इस देश में 'एकता' के लिए परेशान है तो दूसरा देश की 'अखण्डता' के लिए। कोई तीसरा देश को 'स्थिर-सरकार' देने के लिए बेकरार है तो चौथा विदेशों में अपने देश की छवि बनाने के लिए बेताब है। कोई देश के विकास के लिए रो रहा है तो कोई 'देश में बड़ी अशान्ति है' का नारा लगा रहा है। कोई सरकार के हाथ मजबूत करने में ही देश की मजबूती देख रहा है तो कोई देश की भाषा को लेकर आन्दोलित है। किसी को देश में आतंकवाद से घबराहट है तो किसी को देश में आरक्षण मिलने या न मिलने से उन्माद है। कोई देश में भ्रष्टाचार से पीड़ित है तो कोई अलगाववाद की धमकियों से देश को टूटना देख रहा है। आखिर यह "देश" क्या चीज है जिसके लिए सभी अपने-अपने ढंग से परेशान होने के लिए मजबूर हैं?" प्रश्न सार्थक और समीचीन है। क्या हम जिसके लिए हाहाकार मचाये हुए हैं वही 'भारत धर्म' या 'भारतीयता' है? क्या किसी संस्थान के नाम में 'भारत या भारतीय' शब्द उपसर्ग-प्रत्यय के रूप में जोड़ देने मात्र से इसकी पूर्ति हो जाती है। यदि नहीं, तो फिर वह क्या है जिसके लिए हम परेशान हैं?

अध्ययन का यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें गंभीर अनुसंधान और चिंतन होना बाकी है। पिछले 75 वर्षों में देश के अकादमिक संस्थानों में 'भारत और भारतीयता' के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई है। मेरी दृष्टि में आनंद कुमारस्वामी, वासुदेव शरण अग्रवाल और कुबेरनाथ राय की शानदार त्रयी ने इस विषय को एक खास भंगिमा के साथ हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इस त्रयी की एक कड़ी श्री कुबेरनाथ राय के चिंतन जिसका आधार ही 'अहं भारतोऽस्मि' है, को यहाँ प्रस्तुत किया गया है। श्री कुबेरनाथ राय लेखन से साहित्यिक-सत्ता उनके लेखन जगत में उतरने के समय से ही अज्ञात भय से ग्रस्त रही है। यह सकारण है। श्री राय की पसंद ही अद्भुत है। वे लिखते हैं, "नेताओं में गांधीजी, किताबों में रामचरितमानस, वनस्पतियों में हरी-हरी दूब, पशुओं में गाय, रसों में करुण रस, ये सब मुझे एक ही किस्म के भाव-संकुल या बोध प्रदान करते हैं। इन सबमें शांति है, निष्कपटता है, विनय है और सेवा-धर्म है, साथ-ही-साथ महिमा और त्याग भी है।" भारतीयता के मूल स्वर के इस एकादश सगुण-भाव के प्रतिपादक श्री राय आजादी के बाद के एक श्रेष्ठ साहित्यकार हैं।

भारतीयता पर विचार करते हुए श्री कुबेरनाथ राय एक साथ अनेक प्रश्न उठाते हैं : 'भारतीयता क्या है? इसका ढांचा कैसा है? इसकी परिभाषा क्या है? इसकी आवश्यकता क्या है? इसकी पहचान कैसे की जाय? भारत से हम कैसे जुड़ सकते हैं? सत्तर के दशक में इस संस्थान के अध्यक्ष रह चुके डॉ. श्यामाचरण दुबे भी मानते हैं कि 'ये

प्रश्न नए नहीं हैं। पर ये प्रश्न इसलिए जरूरी हैं कि इन्होंने हमारी कई पीढ़ियों को उद्वेलित किया है और आज भी इस पर बहस जारी है।<sup>1</sup> किन्तु किसी निश्चयात्मक उत्तर तक हम नहीं पहुँच पाये हैं। शायद पहुँचा भी नहीं जा सकता है। कुबेरनाथ राय लिखते हैं, “भारतीय संस्कृति या भारतीयता क्या है? यह एक ‘अति प्रश्न’ (चरम प्रश्न) है। ‘अति प्रश्न’ का उत्तर परिभाषित करना संभव नहीं। जहाँ परिभाषा संभव नहीं वहाँ एक मात्र समाधान है ‘पहचान’ बनाना।”<sup>3</sup> इस पहचान-उद्घोष के साथ ही श्रीराय लेखन क्षेत्र में उतरते हैं और न केवल उतरते हैं अपितु इसकी पहचान की तलाश में गंगातीरी/भोजपुरी इलाके से लगायत ईशान कोण में प्रवहमान ब्रह्मपुत्र और काजीरङ्गातक की यात्रा करते/कराते हैं।

श्री कुबेरनाथ राय हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ निबंधकार हैं। पाठकों से संवाद करने के लिए उन्होंने अपने समय सबसे कम लोकप्रिय विधा ‘निबंध’ को माध्यम बनाया था और जीवन-पर्यंत एकनिष्ठ भाव से इसके प्रति समर्पित रहे। उनकी दृष्टि में ‘किसी भी जाति की मूल प्रकृति का सच्चा थर्मामीटर है उस जाति का काव्य-साहित्य और उसकी बौद्धिक गंभीरता तथा उदात्तता का परिचायक है निबंध-साहित्य।’<sup>4</sup> अतः ‘निबंध ही किसी जाति के ब्रह्मतेज को व्यक्त करता है।’<sup>5</sup> इसलिए वे अनुभव-समुद्र से याचना करते हुए कहते हैं कि “यदि देना ही है तो एक पवित्र शंख फेंक दो...मात्र एक शंख। ...मुझे तो चाहिए शुचिस्वेत आवाहनमय एक गद्य शंख .....। दोगे तो दे दो।”<sup>6</sup> श्री राय के इसी लब्ध-गद्य शंख से उनके लेखन में ‘अहं भारतोऽस्मि’ का क्रुद्ध-लालित्य स्वर निरंतर गूँजता रहता है। फलस्वरूप उनके लेखन का परास (रेंज) अपनी अंतर्वस्तु और चेतना में अखिल भारतीय रूप ग्रहण कर लेता है। हताशा, भय और क्रोध के त्रिकोण से आक्रांत अपने समयको उन्होंने न केवल ‘प्रजागरपर्व’ की संज्ञा दी अपितु नशे में प्रमत्त भारतीय महाजाति को गद्य-शंख से निरंतर जागृत करने की चेष्टा करते रहे और कहा ‘कि मेरा सम्पूर्ण साहित्य या तो क्रोध है, नहीं तो अंतर का हाहाकार।’<sup>7</sup>

श्री राय से जब एक शोधार्थी ने पत्र के द्वारा उनके जीवन के बारे में जानना चाहा तो उन्होंने उसका जबाब देते हुए लिखा, “जीवन घटना विहीन रहा है। जैसा कि मध्यम-वर्गीय भोजपुरी युवा का जीवन प्रायः होता है।...वैसे कहने को भी अपने पास है ही क्या? जो है सो किताबों में ही है।”<sup>8</sup> प्रख्यात कलाविद् आनंद कुमारस्वामी का भी जीवन-लेखन या आत्म परिचय के बारे में यही विचार है। वे अपने शिष्य दुरई सिंगम को लिखते हैं, “जीवन-चरित्र लिखे जाने में मेरे दिलचस्पी नहीं है। ...95% लेखन मेरे काम की उपयोगिता और उसके महत्व के विषय में होना चाहिए। ...मुझे आप पीछे छोड़ें, केवल मेरे कार्य पर प्रकाश डालें।”<sup>9</sup> पारिवारिक वातावरण का प्रभाव उन पर कुछ ऐसा पड़ा था कि बचपन में पिताजी के यह पूछने पर कि ‘बड़े होकर क्या बनोगे’ के जवाब में श्री राय ने ‘संन्यासी बनने’ का इरादा व्यक्त कर दिया था। हालांकि उसी समय पिताजी के ‘क्रुद्ध-लालित्य’ को देखते हुए थोड़ा सुधार करते हुए ‘प्रोफेसर’ बनने की बात भी कही। लेकिन पिता तो आखिर पिता ही होता है। अतः उन्होंने मिडिल में प्रवेश करने के साथ ही उनके पैरों को बंगाली राग-चक्की (विवाह-बंधन) से बांध दिया, लेकिन जिसकी जन्मकुंडली के चतुर्थ भाव में ही ‘नभ मंडल की खल-मण्डली दरबार लगा कर’ (मंगल,केतु और राहु की दृष्टि) बैठी हो उसे कौन बांध सकता है-“मैं अपनी जन्मभूमि गंगा तट से प्रायः दूर रहने को बाध्य हूँ और जीविकोपार्जन के लिए इस किरातारण्य से घिरे आर्यों के बीच, लौहिल्य तट पर, निवास कर रहा हूँ।”<sup>10</sup>

कुबेरनाथ राय के मन में निबंध के प्रति बचपन से आकर्षण देखने को मिलता है। घर पर उपलब्ध ‘विशाल भारत’ और ‘माधुरी’ के निबंधों को वे बड़े चाव से पढ़ते थे। परिणाम यह हुआ कि उनके मन में भी ‘लेखक बनने का शौक’ पैदा हो गया। फलस्वरूप मिडिल स्कूल से ही उन्होंने न केवल लिखना शुरू कर दिया अपितु विशाल भारत, माधुरी जैसी उस समय प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में उनके निबंध बड़े लेखकों (राहुल सांकृत्यायन, परिपूर्णानन्द वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि) के बीच अपनी जगह बनाने में कामयाब रहे। हालांकि निजी परिचय (लेखक-परिचय), में वे अपने को विद्यार्थी नहीं बताते थे। उनके प्रारंभिक लेख ‘साहित्य में मेरा वादा’ और ‘साहित्य में भोगवाद’ माधुरी में तब प्रकाशित हुए थे जब वे आठवीं कक्षा में थे। 1951 के आसपास जब कुछ लोग ‘रसगुल्ला-गप्प’ की कहानी बनाकर परिचय साध रहे थे, तब मैट्रिक का यह छात्र ‘विशाल भारत’ में ‘विज्ञान में भोगवाद’ तथा

‘तर्क और वस्तु की परिधि में अलीकता’ जैसे गंभीर लेख लिख रहा था। क्योंकि उसे अपने देश से लगाव था। उसने सपने में भी ‘माता जिसका नाम भारत है’ जैसी दोयम दर्जे की पदावली का प्रयोग नहीं किया था। एक बार यह पता चलने पर कि बाबा से गणेश शंकर विद्यार्थी-स्मृतिग्रंथ के लिए लेख मांगा गया है, उन्होंने “(मैंने), चुपके से एक लेख भेज दिया। ‘पं. माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय कविता’ या ऐसा ही कुछ, स्वीकृत हो गया। परंतु बाद में जानने पर कि ‘मैं अभी लड़का ही हूँ’, लेख लौट आया कि ‘अधूरा’ है। ‘अधूरा’ तो रहा होगा। परंतु यदि ‘लड़का’ नहीं रहता तो नहीं लौटता।”<sup>11</sup> श्री बनारसी दास चतुर्वेदीजी ने उन्हें लेखक बनने का मुक्त कंठ से आशीर्वाद दिया। श्री राय के शब्दों में ‘आशीर्वाद फलीभूत तो जरूर रहा, लेकिन 1952 से 1962 लगभग एक दशक तक भारतीयता के इस शानदार गायक की ‘लेखकीय अरुचि’ के कारण कलम लगभग बंद रही। पुनः कलम तभी उठी ‘जब रहा नहीं गया। इसकी भी एक रोचक कथा है।

स्नातक होने के बाद ‘पिता ने कह दिया (और ठीक ही कहा) कि स्नातक हो गए, मतलब बालिग हो गए। अब आगे पढ़ना हो तो कमाओ और पढ़ो।’<sup>12</sup> उन दिनों कोलकाता में सृजन-व्यसन-व्यवसाय की त्रिवेणी बहती थी। कमाई-पढ़ाई (अर्निंग व्हाइल लर्निंग) को ध्यान में रखते हुए श्री राय कोलकाता चले गए। स्नातकोत्तर (अंग्रेजी) की पढ़ाई के लिए कोलकाता विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। वहाँ उनको सृजन-अध्यात्म का रास्ता प्रीतिकर लगा। यह एक संयोग ही था कि भारतीय राजनीति के तत्कालीन कद्दावर राजनीतिज्ञ और भारत सरकार के मंत्री हुमायूँ कबीर ने तीन दशक पूर्व इसी विभाग (अंग्रेजी) से स्नातकोत्तर की डिग्री ‘स्वर्ण-पदक’ के साथ प्राप्त की थी। श्री राय उनकी लेखनी से पहली बार यहीं परिचित हुए। तीन-चार वर्षों बाद ‘आसाम ट्रिब्यून’ के 1961 के ‘दुर्गापूजा अंक’ में उन्हें पुनः हुमायूँ कबीर का एक आलेख पढ़ने को मिला। श्री राय हुमायूँ कबीर की पुस्तक ‘इंडियन हेरिटेज’ और इस आलेख की अनेक स्थापनाओं से सहमत नहीं थे। उनके भीतर का ‘विश्वेश्वर का साढ़’ शेक्सपियर रोड पर हँकड़ते हुए हाथ में ‘हिस्ट्री ऑर कॉक एंड बुल स्टोरी’ का पन्ना लिए ‘कलकत्ता रिव्यू’ के दरवाजे पर पहुँच गया। वहाँ के श्वापदों ने दरवाजा बंद करने में ही भलाई समझी और लेख को सखेद इस टिप्पणी के साथ वापस किया कि इस पुस्तक की विधिवत समीक्षा छप रही है, अतः इसे छापना संभव नहीं। याद कीजिये। एक दशक पूर्व ‘लड़का’ (विद्यार्थी) होने के कारण लेख ‘अधूरा’ था तो अब ‘विधिवत समीक्षा’ के नाम पर उन्हें रोकने की कोशिश की गई। सत्ता का लेखन के विरुद्ध यह अदृश्य दबाव था। श्री राय की अंग्रेजी सत्ता (काले-अंग्रेजों) और उसके ‘नाई-बारियों’ से यह पहली भेंट थी। लेकिन वे भी हार कहाँ मानने वाले थे! श्री राय ने गांधी मार्ग (राजभाषा/राष्ट्रभाषा) का रुख किया और इसी लेख को उन्होंने हिंदी में ‘इतिहास अथवा शुकसारिका कथा’ शीर्षक से ‘सरस्वती’ पत्रिका को भेज दिया। श्री राय लिखते हैं, “सन 1962 में प्रो हुमायूँ कबीर की इतिहास-संबंधी ऊलजलूल मान्यताओं पर मेरे एक तर्कपूर्ण और क्रोधपूर्ण निबंध को पढ़कर पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी ने मुझे घसीट कर मैदान में खड़ा कर दिया और हाथ में धनुष-बाण पकड़ा दिया। अब मैं अपने राष्ट्रीय और साहित्यिक उत्तरदायित्व के प्रति सजग था।”<sup>13</sup>

कुबेरनाथ राय ने अपने प्रथम निबंध-संग्रह ‘प्रिया नीलकंठी’ (1967 में प्रकाशित) के ‘अंत में’ तुलसी की याद करते ‘बहुरि बंदि खल गन सति भाएँ’ की चर्चा की थी। दशक बीतते-बीतते वह चर्चा सार्वजनिक पटल पर आ ही गई जब एक नामवर आलोचक को सन 1980 में भोपाल में आयोजित ‘हमारा समय’ संवाद में चिंघाड़ कर कहना पड़ा ‘कुछ लोग ऐसे हैं जो अतीत में जी रहे हैं। मसलन कुबेरनाथ राय नाम के एक ललित निबंधकार हैं वो पं. मिश्र जैसे ललित निबंधकारों से, जो जीवंत हैं, लोक जीवन के साथ भी जोड़ते हैं, लेकिन लेकर के पता नहीं कौन किस ‘प्रिया नीलकंठी’ में जी रहे हैं और ज्ञानपीठ उसे छाप रहा है, धर्मयुग प्रसारित कर रहा है और सबसे बड़े निबंधकार कुबेरनाथ राय हो गये हैं।’<sup>14</sup> लेकिन गंगा-पुत्र कुबेर भारत की जड़ों की तलाश में मरुदवेग से उच्चैःश्रवा की तरह निबंधों का अयाल बिखराए, मणिशिलाओं और कांतारों को टापों से कुचलते हुए निरंतर धावमान रहे हैं। 1980 में गांधी शांति प्रतिष्ठान से उनका पत्र-विधा में लिखे गए निबंध संग्रह ‘पत्र मणिपुतल के नाम’ में उनकी काल्पनिक बहू उनसे शिकायत करते हुए कहती है, “भईया तुम्हारी तो पांचों उंगली घी में है न! जब सारा हिंदुस्तान तुमसे भयभीत है कि कहीं और ललित निबंध न लिख मारो, तो पत्रावली-विधा की आड़ में ललित निबंधों की मार अकेले मुझ पर ही पड़ रही है।”<sup>15</sup>

कुबेरनाथ राय अपने लेखन-उद्देश्य के प्रति सतत जागरूक रहे हैं-“सच तो यह है कि मेरा सम्पूर्ण साहित्य या तो क्रोध है, नहीं तो अंतर का हाहाकार। पर इस क्रोध और आर्तनाद को मैंने सारे हिंदुस्तान के क्रोध और आर्तनाद के रूप में देखा है। इन निबंधों को लिखते समय मुझे सदैव अनुभव होता रहा : ‘अहं भारतोऽस्मि’।”<sup>16</sup> एक निबंध संग्रह के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं- ‘निषाद-बांसुरी’ संग्रह का एक गौण उद्देश्य यह भी है : भारतीयता का प्रत्यभिज्ञान, अर्थात् भारत की सही ‘आइडेंटिटी’ का पुनराविष्कार, जिससे वे जो कई हजार वर्षों से आत्महीनता की तमसा में आबद्ध रहें हैं.....।”<sup>17</sup> इसलिए उनकी अनिमेष लोचन-दृष्टि भारतीयता के गुण सूत्रों की चतुर्विध तलाश करती है- “जिस ‘भारत’ की बात मेरे सम्पूर्ण साहित्य में आती गई है वह है इस देश का ‘चिन्मय’ और ‘मनोमय’ संस्करण। वह चिन्मय और मनोमय रूप किसी प्रकार की क्षुद्रता और संकीर्णता से ऊपर है। शिवत्व, बुद्धत्व, रामत्व ही इसके प्रतीक हैं।”<sup>18</sup>

निर्मल वर्मा अपने एक निबंध में लिखते हैं- “दुनिया की शायद ही कोई ऐसी संस्कृति हो, जीवित या मृत जो कोई कहानी न कहती हो। इतिहास की धूल में उसकी कुछ कड़ियाँ छिप जाती हैं, कुछ अंश हमेशा के लिए दब जाते हैं। कोई नहीं जानता, पूरी कहानी क्या है, वह कहाँ से शुरू होती है, किस दिशा में बहती है?”<sup>19</sup> श्री राय इस चिंता से बखूबी वाकिफ हैं। वे अपने निबंधों में संस्कृति के उन विस्मृत अंतरालों को युगनद्ध करते हुए अपनी अद्भुत कहन-शैली में हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं, “प्रजागर पर्व तुम्हारी नियति है। तुम्हारे जागरण के लिए ही मैं कहानी सुना रही हूँ.....तू सुनता जा और हुंकारी भरता हुआ रात भर जागता रह।”<sup>20</sup> और कहानी आगे बढ़ चलती है कभी नदी के माध्यम से तो कभी पशु-पक्षी के सहारे। लेकिन कहानी में ‘हाँ, कहारी हाँ’ का ठेका बनना उन्हें पसंद नहीं। वे लिखते हैं-“मैंने भी निश्चय किया है कि एक दिन पूज्य पिताजी जब सोये रहेंगे, उनके सिरहाने से ..... फटी दीमक लगी किताब निकाल लाऊंगा और आग लगाकर फूँक दूंगा। ..... तब हिन्दू धर्म के लिए एक नई पोथी लिखनी पड़ेगी ..... उस नई किताब को मैं लिखूंगा, और जो-जो मन में आयेगा, सो लिखूंगा। आखिर मेरी बात भी तो कभी आनी चाहिए, कि आजीवन मैं ‘हाँ, कहारी हाँ’ का ठेका ही पीछे से भरता रहूँगा।”<sup>21</sup> ऐसा वे इसलिए कह पाते हैं कि उनके हर निबंध में इतिहास-भूगोल-दर्शन-भाषा की चतुरंगिणी भी साथ-साथ चलती रहती है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है- ‘बौद्धों के दिग्विजय का अश्व काशी-वृंदावन में प्रवेश नहीं पा सका।”<sup>22</sup> .... ‘इतिहास और भूगोल दोनों आकर मिलते हैं गंगा की घाटी में और वहीं धरती का सबसे उदार एवं पावन सत्य रचते हैं जिसे भारतीयता या ‘चिन्मय भारत’ कहा जाता है’<sup>23</sup> ..... ‘भारतीयता की सर्वोच्च गाथा ‘रामकथा’ की भूमि यही है और यह नदी ही राम के पूर्वजों की दृष्टि में ‘रघुकुल देवि देवता’ रही है। वस्तुतः अयोध्या-नैमिषारण्य-वाराणसी’ की भूमि ही भारतवर्ष की सांस्कृतिक कुक्षि है।”<sup>24</sup> लेकिन वे इस भारतीयता की निर्मित को केवल ‘वाक-विलास’ अथवा ‘लिखने के लिए लिखना’ तक सीमित नहीं रखते हैं। वे अपने दायित्व को समझते हैं। इसलिए वे बेलौस होकर कहते हैं -“यह ‘भारतीयता’ किसी एक की बपौती नहीं अपितु संयुक्त उत्तराधिकार है।”<sup>25</sup> भारतीय ब्रह्म चतुरानन है। ‘इसकी रचना में चार नस्लों के धागे हैं- आर्य, निषाद, किरात और द्राविड़। .... चारों धागों के सांस्कृतिक प्रवाहों की प्रतीक चार नदियाँ हैं : सरस्वती (आर्य), गंगा (निषाद), ब्रह्मपुत्र (किरात) और कावेरी (द्राविड़)। जैसे सरस्वती अन्तःसलिला है वैसे ही आर्यत्व भी हमारी जाति के उस चिन्मय व्यक्तित्व की रचना करता है जो भीतर व्याप्त रहता है, परन्तु हमारा सब कुछ बाहरी रूपकलाप और क्रियाकलाप निषाद-किरात-द्राविड़ है। यदि रस-सिद्धान्त की भाषा में बोलें तो हमारी संस्कृति का ‘रस’ है भारतीयता, जिसमें आर्यत्व है स्थायी भाव। पर इस स्थायी भाव की रचना के लिए अनुभाव, विभाव और संचारी भाव चाहिए और ये अनुभाव, विभाव तथा संचारी भाव हैं क्रमशः किरात, निषाद और द्राविड़। इनकी ही निष्पत्ति से जिस ‘रस’ का अनुभव होता है वह है ‘भारतीयता’ या ‘भारत’। ‘भारत’ का अनुभव ‘रसो वै सः’ का अनुभव है।”<sup>26</sup>

श्री राय के लिए ‘भारतीयता’ कोई अमूर्त अथवा यूटोपिया नहीं है अपितु प्रत्यक्ष सगुण रूप है- “मुझसे जब कोई पूछता है कि ‘भारतीयता क्या है’ तो मैं इसका एक शब्द में उत्तर देता हूँ, वह शब्द है ‘रामत्व’-राम जैसा होना ही सही ढंग की भारतीयता है। हमारे युग में भी एक पुरुष ऐसा हो गया था जिसने राम जैसा होने की चेष्टा की

और बहुत कुछ सफल भी रहा। वह पुरुष था महात्मा गांधी।”<sup>27</sup> श्री राय के लिए ‘भारत’ कोई ‘मानसिक भोग’ या ‘भौगोलिक सत्ता’ नहीं है। यह उससे बढ़कर ‘एक प्रकाशमय, संगीतमय भाव-प्रत्यय या चैतन्य-प्रतिमा का रूप’ तो है ही ‘अधिक सत्य एवं शाश्वत’ भी है।<sup>28</sup> उनका आग्रह है कि ‘भारत’ को मात्र एक राजनीतिक और भौगोलिक इकाई के रूप में न देखकर उसे भारतीय मनुष्य, भारतीय धरती और भारतीय संस्कार के त्रिक के रूप में देखना चाहिए। एक राजनीतिक इकाई मात्र मान लेने से ‘भारत’ का अस्तित्व एक मतदाता सूची में बदल जाता है। एक भौगोलिक इकाई मात्र स्वीकार कर लेने पर उसका बंटवारा हो सकता है। पर एक संस्कार समूह और बोध सत्ता के रूप में उसका विशिष्ट निराकार रूप कालजयी है- “भारत की यह निराकार मूर्ति (अर्थात् ‘संस्कार समूह’ के रूप में) सूक्ष्मतर होने की वजह से अधिक कालजयी है। कोई जवाहरलाल या कोई जिन्ना इसका’ पार्टीशन’ या बंदर-बाँट नहीं कर सकता।”<sup>29</sup> गांधी ने भी ‘हिन्द-स्वराज’ में इसी बात को थोड़ा और गर्वीले भाव में कहा है -‘हिंदुस्तान को बहुत से अक्ल देने वाले आए और गए पर हिंदुस्तान जस का तस रहा’।<sup>30</sup> अपने एक अन्य निबंध संग्रह ‘मराल’ में श्री राय ‘भारतीयता’ को और भी स्पष्ट करते हैं- “अतः ‘राम’ शब्द के मर्म को पहचानने का अर्थ है भारतीयता के सारे स्तरों के आदर्श रूप को पहचानना..... सही भारतीयता क्षुद्र, संकीर्ण राष्ट्रीयता के दम्भ से बिल्कुल अलग तथ्य है। यह ‘सर्वोत्तम मनुष्यत्व’ है। पूर्ण ‘भारतीय’ बनने का अर्थ है ‘राम’ जैसा बनना।”<sup>31</sup>

कुबेरनाथ राय की दृष्टि में ‘भारत भूगोल से ज्यादा एक जीवन दर्शन और एक मूल्य परंपरा है’, जिसे वे ‘मनुष्यत्व का महायात्रा’ कहते हैं।<sup>32</sup> इसके पीछे के कारणों को भी वे स्पष्ट करते हैं- “इसी जम्बूद्वीप में देवता मनुष्य के लोक में नीचे उतरकर मनुष्यों के साथ ‘मिश्र’ होकर रहते आये हैं।”<sup>33</sup> देवता से उनका तात्पर्य किसी पारलौकिक सत्ता से न होकर देवोपम जीवन दृष्टि से है। वे लिखते हैं -“वह सारी मानसिक ऋद्धि, मानसिक दिव्यता जिसकी कल्पना देवता में की जाय यदि किसी मनुष्य में उतर जाये तो वह देवोपम हो जाता है।”<sup>34</sup> इसी देवोपम की पहचान ही असल में ‘भारतीयता’ की पहचान है। इस पहचान-स्वरूप की निर्मिति के लिए वे इतिहास में पसरे कला-शिल्प-शास्त्र के खोह में प्रवेश करते चले जाते हैं और वहाँ से ‘भारतीयता की मणि’ लेकर ही निकलते हैं।

समाजशास्त्री डॉ. श्यामाचरण दुबे ने अपने निबंध ‘भारतीयता की तलाश’ में भारतीयता की सही समझ की कुछ पूर्व शर्तों की ओर इशारा किया है, जिनमें ‘इतिहास दृष्टि’, ‘परंपरा बोध’, ‘समग्र जीवन-दृष्टि’, और ‘वैज्ञानिक विवेक’ प्रमुख हैं।<sup>35</sup> श्री राय के लेखन में यह ‘चतुरानन-दृष्टि’ हर जगह देखने को मिलती है। ‘भारतीयता’ की पहचान के लिए जिस शास्त्रीय, स्थानीय और क्षेत्रीय परम्पराओं के अंतरावलंबन की सूक्ष्म समझ की आवश्यकता पर डॉ. श्यामाचरण दुबे ने जोर दिया है, वह श्री राय को सहज ही संस्कार-लब्ध है। कला-शिल्प की आंतरिक संरचना और बुनावट को जिस आत्मीयता से वे प्रस्तुत करते हैं, वह अद्भुत तो है ही, असल ‘भारतीय मन’ का प्रमाण भी है। उनकी दृष्टि में महाकवि कालिदास की अमर कृति ‘शकुंतला’ ‘दुष्यंत-शकुंतला’ की प्रणय-गाथा मात्र न होकर ‘भारतीयता के जन्म-रहस्य, प्रसव-कथा और उसकी निर्मिति’ का जीवंत दस्तावेज़ है। यह कथा आर्यतर और आर्य के महासमन्वय और वर्णाश्रम के सही ऐतिहासिक स्वरूप की ओर इशारा करने के साथ ही भारतीय धर्म साधना की पूर्णांगता को भी प्रस्तुत करती है, जिसके अनुसार काम और तप परस्पर विरोधी न होकर सहजीवी हैं।<sup>36</sup> भारत के जल-जंगल-जमीन को लेकर लिखे गये उनके निबंधों में ‘भारतीयता’ का इर्द्धनुषी रूप देखने को मिलता है। इस ‘आसेतु हिमाचल वसुंधरा’ को वे मामूली मिट्टी मानने के लिए कर्तई तैयार नहीं हैं। यह उनके लिए ‘साक्षात् देव-विग्रह’ है जिसे ‘कोई जय नहीं कर सकता’। ‘महीमाता’ निबंध में भारतवर्ष के मृण्मय स्वरूप की सार्थक विवेचना करते हुए श्री राय ने यह सिद्ध किया है कि भारत का सिर्फ झंडा ही तिरंगा नहीं है अपितु ‘मिट्टी के रंग की दृष्टि से यह भारतवर्ष तिरंगा, त्रिवर्णी भूमि है-सादी, लाल और काली’। उनकी नजर में ‘यह स्वर्णगर्भा वसुंधरा है, शस्य लक्ष्मी,... साक्षात् माता है’।<sup>37</sup>

श्री राय एक जगह लिखते हैं कि ‘भारतीय सभ्यता में बाह्य तत्वों को आत्मसात करने की अपूर्व क्षमता थी। ऐसे तत्वों का भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में अनुकूलन भी हुआ, समाकलन भी’। सच तो यह है कि भारतीयता का विकास एक लम्बी सांस्कृतिक यात्रा है। यह प्रक्रिया निरंतर आज भी जारी है। लेकिन आज

परिस्थितियाँ भिन्न हैं। आज हम पर फिर चौतरफा आक्रमण हो रहा है। हर्षवर्धनोत्तर काल में जो स्थिति पैदा हुई थी कुछ वैसी ही परिस्थितियाँ आज फिर से हमारे सामने उत्पन्न हो गई हैं। आज बड़ी सफाई और बारीकी से 'भारतीयता' को कुचलने की कोशिश हो रही है- "भारतीयता के सगुण प्रतीक 'महात्मा गांधी' के नाम को ही मिटाने की कोशिश हो रही है। इसी के साथ 'अन्नों के देशी बीज, पशुओं की देशी नस्लें, देशी भूषा और सज्जा, देशी भाषा और शब्दावली सब कुछ से हमें धीरे-धीरे काटने की कोशिश चालू है जिससे हम सर्वथा जड़-मूलहीन हो जाएँ। अतः ठहरकर सोचने की जरूरत है। आज हमारे लिए जरूरी है कि पश्चिमी मानसिकता को निरंतर उधार लेने की जगह अपने देशी मानसिक उत्तराधिकारों की चर्चा करें।"<sup>38</sup> सरस्वती के वरद पुत्र श्री कुबेरनाथ राय की यह चिंता अत्यंत सहज और स्वाभाविक है।

भारतीयता की पहचान का असल स्वरूप हमें उसकी वांगमय परंपरा अर्थात् साहित्य और शिल्प में देखने को मिलता है। आनंद कुमारस्वामी भी लिखते हैं-It is because nations are made by artists and by poets, not by traders and politicians.<sup>39</sup> तो इस पहचान के उद्घाटन के लिए हमारा आर्ष चिंतन से परिचित होना जरूरी है। 'चिन्मय भारत' नामक पुस्तक में श्री राय ने आर्ष चिंतन के बुनियादी सूत्रों को स्पष्ट करने की कोशिश की है। वे लिखते हैं, "आर्ष से हमारा तात्पर्य 'वैदिक' मात्र या 'ऋषि दृष्टि प्रसूत' मात्र नहीं है। हम उस पूरी परंपरा को, जो ऋषि के अनुधावन से बनती है, आर्ष परंपरा मानते हैं। आर्ष से हमारा तात्पर्य उस समूची चिंतन परंपरा से जिसका प्रस्थान बिन्दु तो ऋषि ही है, पर अविच्छिन्न रूप में कालिदास, शंकराचार्य, रामानुज- वल्लभ-चौतन्य, संत और भक्त से होती हुई आधुनिक गांधी-अरविंद तक आती है। बीज है ऋषि और भारतीय चिंतन का यह अश्वत्थ अभी तक विराजमान है। वृक्ष बीज के आधार पर ही नामांकित होता है। अतः इस इतिहासव्यापी अखंड चिंतन परंपरा की संज्ञा आर्ष हो सकती है।"<sup>40</sup>

श्री राय की एक बड़ी चिंता है हमारा अपनी जड़ों से अपरिचित होना। डॉ. श्यामाचरण दुबे ने भी एक जगह स्वीकार किया है कि "जड़ों की तलाश एक बुनियादी सवाल है। वह एक सार्थक जिज्ञासा से जुड़ा है और अस्तित्वबोध को एक नया आयाम और नए मूल्य देता है।"<sup>41</sup> श्री राय का मानना है कि पिछले डेढ़-दो-सौ वर्षों में इस आर्ष चिंतन को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से गलत ढंग से समझा और परोसा जा रहा है। स्वतंत्र भारत के बुद्धिजीवी अपने निजी पर्यवेक्षण, अपनी भारतीय दृष्टि और अपने भारतीय स्रोतों के आधार पर आर्ष चिंतन और भारतीय समाज को समझने तथा तत्संबंधी सिद्धांतों को विकसित करने की अपेक्षा पश्चिमी अवधारणाओं और प्रत्ययों के सहारे अपने अधूरे सरलीकरण प्रस्तुत कर रहे हैं जिनसे देश का भयानक अहित अवश्यभावी है। सच तो यह है कि भारतीय चिंतन और संरचना को ठीक-ठीक समझने के लिए भारतीय बुद्धिजीवियों को अपना निजी समाजशास्त्र या देशी नृतत्वशास्त्र या सौन्दर्य शास्त्र विकसित करना चाहिए। श्री राय इन्हीं जड़ों की तलाश में निरंतर मानसिक यात्रा करते रहे हैं। श्री राय विदेशी विद्वानों से विचारों के आदान-प्रदान के विरोधी नहीं हैं। परंतु गांधी की ही तरह अपने घर की खिड़कियों को खोले रखने के साथ-साथ अपनी निजी-देशी-सोंधी जमीन-हमारे हरि हरिल की लकड़ी-को मजबूती से पकड़े रखने का आग्रह करते हैं। श्री राय उसी आर्ष चिंतन परंपरा के प्रामाणिक दस्तावेज़ के साथ हमारे सामने उपस्थित होते हैं। इसके लिए वे नृतत्व शास्त्र के साथ-साथ भाषा विज्ञान का भी सहारा लेते हैं और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतवर्ष को जानने के लिए 'भारत' और 'भारतीय विश्व' को जानना आवश्यक है। भारतीयता की तलाश का रास्ता-लेखन नीरस और उबाऊ न हो इसके लिए उन्होंने आवश्यकतानुसार 'लालित्य' का सहारा लिया है। भारतीयता की समझ के लिए लालित्य-बोध एक आवश्यक कड़ी है क्योंकि भारतीयता एक ही साथ 'भावना' और 'मनोदशा' दोनों है। बोध-युक्त देशज लालित्य के अखाड़े में खड़े श्री राय दोनों भुजाओं और जंघों पर भीम-ताल ठोंक कर चुनौती देते हैं। यह सच है कि इस तरह की यह ललकार तो कोई 'मरदवा' ही दे सकता है जिसकी अपनी जमीन निजी उर्वरा शक्ति से भरपूर हो।

यह एक तथ्य है कि स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद ही देश में एक सांस्कृतिक अराजकता की शुरुआत हो गई थी। हुमायूँ कबीर जैसे लोगों ने उल-जुलूल व्याख्या से इसकी शुरुआत हुई और नुरुल हसन की छत्रछाया में भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद ने इसे खाद-पानी दिया। परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय भावनाएँ बड़ी तेजी से अशक्त

और निष्प्राण होने लगीं। हम बेझिझक पश्चिम का अनुकरण कर अपनी अस्मिता खोते जा रहे थे। कल तक यह प्रवृत्ति एक छोटे और प्रभावशाली तबके तक ही सीमित थी पर अब उसका फैलाव बड़ी तेजी से बढ़ता जा रहा है। आज हम सब इस बात से परिचित हैं कि संस्कृति आज की दुनिया में एक राजनीतिक अस्त्र के रूप में उभर रही है। अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राष्ट्र और संस्थाएँ इसका खुलकर उपयोग कर रही हैं। यदि हम निष्ठा और प्रतिबद्धता से भारतीयता को समझें, उसे पहचानें और आत्मसात करने की कोशिश करें तो उन पर रोक लग सकती है। पर यह कहने और लिखने में जितना आसान है उतना ही व्यवहार में जटिल भी है।

आज जब समाज के सभी तबके- बुद्धिजीवी से लेकर साहित्यकार तक सरकार-बाजार के पिछलग्गू बनने के लिए हर संभव प्रयास कर रहे हैं वैसे समय में श्री राय गंगातीरी पगड़ी बांधे हुए कंधे पर भारतीयता का अमृत-घट लटकाये हुए आर्यावर्त से लगायत जंबूद्वीपे-भरतखंडे की परिक्रमा करते हुए नजर आते हैं। श्री राय का इतिहास बोध प्रखर है। इसे धार देने के लिए वे विज्ञान, नृत्य शास्त्र, भाषा विज्ञान, मिथक, इतिहास आदि अनुशासनों का यथासंभव सहारा भी लेते हैं। इसकी अभिव्यक्ति के लिए जिस अकुंठ साहस, निर्भयता, स्पष्टता और दो टूकपन की जरूरत होती है वह उनके लेखन में सर्वत्र मौजूद है। वे किसी के विरोध या उपेक्षा से मुक्त सम्पूर्ण आर्यावर्त में 'शिव के सांड़' की तरह मुक्त विचरण करते हैं। वे जानते हैं कि "जब-जब अंधकार छा जाता है, तो जम्बुक वेला का आगमन होता है। तब चारो ओर से जम्बुक-स्वर उठना स्वाभाविक है।"<sup>42</sup> वे इन स्वरो से गहरे चिंतित भी हैं-"आज सारा देश मोहरात्रि से पराजित और अवसन्न है। आलोक के बिन्दु एक के बाद एक बुझते जा रहें हैं। भय से अधिक हताशा का वातावरण है।"<sup>43</sup> लेकिन श्री राय आशावादी हैं-"मैं एक नए श्रीकृष्ण जन्म की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मैं देव शिशु के अवतरण की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मुझे ज्ञात है कि अवतरण होगा, पर इस बार रूप नहीं, भाव का अवतरण होगा, इस बार अवतरण की शैली सामूहिक होगी।"<sup>44</sup>

गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा

महाराष्ट्र - 442001

#### संदर्भ -

1. वर्मा, केशवचन्द्र, भारतीयता की पहचान, प्रयागराज : लोकभारती प्रकाशन, 1993
2. राय, कुबेरनाथ, कामधेनु, पृ. 6
3. राय, कुबेरनाथ, मराल, पृ. 160
4. राय, कुबेरनाथ, मराल, पृ. 158
5. वही
6. राय, कुबेरनाथ, रस आखेटक, पृ. 55
7. राय, कुबेरनाथ, रस आखेटक, पृ. 195
8. स्नेहलता पाण्डे, शोध ग्रंथ (हिन्दी में सांस्कृतिक निबंध की परंपरा और कुबेरनाथ राय का निबंध-साहित्य), पंजाब वि.वि., चंडीगढ़ पृ. 451
9. कला गुरु आनंद कुमारस्वामी
10. अजय अंजान, शब्दप्रहरी कुबेरनाथ राय, पृ. 9
11. स्नेहलता पाण्डे, शोध ग्रंथ (हिन्दी में सांस्कृतिक निबंध की परंपरा और कुबेरनाथ राय का निबंध-साहित्य), पंजाब वि.वि., चंडीगढ़ पृ. 452
12. वही
13. राय, कुबेरनाथ, प्रिया नीलकंठी, पृ. 126

14. हमारा समय संवाद आडियो
15. राय, कुबेरनाथ, पत्र मणिपुतुल के नाम, पृ. 74
16. राय, कुबेरनाथ, रस-आखेटक, पृ. 195)
17. राय, कुबेरनाथ, निषाद बांसुरी, पृ. 244
18. राय, कुबेरनाथ, (मराल, पृ. 168
19. वर्मा, निर्मल, हीरानंद शास्त्री स्मृति व्याख्यान माला, भाग दो, पृ. 322
20. राय, कुबेरनाथ, दृष्टि अभिसार, पृ. 76
21. राय, कुबेरनाथ, गंधमादन, पृ. 21
22. राय, कुबेरनाथ, दृष्टि अभिसार, पृ. 18
23. राय, कुबेरनाथ, निषाद बांसुरी, पृ. 235
24. राय, कुबेरनाथ, दृष्टि अभिसार, पृ. 9
25. राय, कुबेरनाथ, निषाद बांसुरी, पृ. 244
26. वही, पृ. 216
27. राय, कुबेरनाथ, त्रेता का बृहत्साम, पृ. 165
28. राय, कुबेरनाथ, कामधेनु, पृ. 90
29. वही, पृ. 90
30. गांधी, महात्मा, हिन्द स्वराज
31. राय, कुबेरनाथ, मराल, पृ. 163
32. राय, कुबेरनाथ, उत्तरकुरु, पृ. 105
33. वही, पृ. 105
34. वही, पृ. 105-6
35. दुबे, श्यामाचरण, समय और संस्कृति, पृ. 44-5
36. राय, कुबेरनाथ, कामधेनु, पृ. 32
37. राय, कुबेरनाथ, निषाद बांसुरी, पृ. 84
38. राय, कुबेरनाथ, उत्तरकुरु, पृ. 70
39. कुमारस्वामी आनंद, एसेज इन नेशनल आइडियलिज्म, पृ. 7
40. राय, कुबेरनाथ, चिन्मय भारत, पृ. 16-17
41. दुबे, श्यामाचरण समय और संस्कृति, पृ. 44
42. राय, कुबेरनाथ, रस आखेटक, पृ. 134
43. राय, कुबेरनाथ, रस आखेटक, पृ. 132
44. वही, पृ. 134

## स्वामी रामानन्द का समाजशास्त्र

विमल कुमार लहरी

भारत में संत परंपरा की काफी पुरातन यात्रा रही है। इस यात्रा में ढेर सारे संतों एवं पीठाधीश्वरों को देखा जा सकता है जिनके सामाजिक अवदान से सामाजिक परिवर्तन को बड़े स्तर पर गति मिली। इसी संत परंपरा में स्वामी रामानन्द का नाम प्रमुख है। स्वामी रामानन्द कालीन संरचना को देखा जाय तो उस संरचना में दलितों एवं पिछड़ों का संत परंपरा में कोई स्थान नहीं था। स्वामी रामानन्द ने इस निषेध को तोड़ा एवं पहली बार दलितों पिछड़ों को अपना शिष्य बनाना प्रारंभ किया। इससे पहले की तस्वीर को हम देखें तो संत पद धारण करना कुछ व्यक्ति विशेष एवं जाति विशेष तक ही सीमित रहा है। वस्तुतः संत परंपरा में सबकी सहभागिता नहीं थी, कुछ मुट्ठी भर लोग इस परंपरा को आगे बढ़ा रहे थे। इसका मूल कारण यह भी था कि यह परंपरा पवित्रता की उस अवधारणा से पोषित थी जिसमें जनसंख्या का एक बड़ा भाग हासिये पर था, अपवित्र था। जहाँ लोग एक दूसरे की परछाइयों से दूर भागते थे। मानव-मानव को छूने मात्र से ही अपने को अपवित्र समझता था। ऐसी स्थिति में रामानंद का अस्पृश्य समाज को संत परंपरा से जोड़ना सूर्य को पूरब की बजाय पश्चिम में उगाने के समान था। लेकिन स्वामी रामानन्द ऐसी परिस्थितियों से ना ही डरे, और ना ही झुके। बल्कि संत परंपरा के दरवाजे सभी के लिए खोल दिया। स्वामी रामानन्द का यह कृत्य उन्हें यह एक महान क्रिया समाज वैज्ञानिक के रूप में स्थापित करता है।

स्वामी रामानन्द के जन्म दिवस की प्रमाणिकता के संदर्भ में काफी मतभेद है। कुछ विद्वान उनके जीवन काल को विक्रम की 14वीं शताब्दी के अंत से प्रारंभ करके विक्रम की 16वीं शताब्दी की तृतीय चरण तक माना है। द्वितीय मत के अनुसार डॉ. जे.एन. फर्कुहर का मानना है कि रामानन्द का कालखण्ड 1400 ई. से 1470 ई. तक था। वहीं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि इनका कालखण्ड 15वीं शती के चतुर्थ और 16वीं शती के तृतीय चरण के बीच है।

मैकॉलिफ का मानना है कि- रामानन्द गौड़ ब्राह्मण थे। इनका जन्म मैसूर राज्य में 'मेलकोटा' नामक स्थान पर हुआ, जबकि रामानन्द सम्प्रदाय के प्रमुख विद्वान गोपाल दास ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'वैष्णव धर्म रत्नाकर' में रामानन्द को दक्षिण भारत का मानते हैं। अगस्त्य संहिता के अनुसार स्वामी रामानन्द का जन्म प्रयाग में हुआ, जबकि 'भविष्यपुराण' स्वामी रामानन्द का जन्म काशी को स्वीकार करता है। लेकिन डॉ. बर्थवाल, रूपकलाजी, डॉ. ग्रियर्सन एवं आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जैसे विद्वान स्वामी रामानन्द के जन्म स्थान के संदर्भ में प्रयाग को ही स्वीकार करते हैं।

'अगस्त्य संहिता' के अनुसार रामानन्द के पिता का नाम 'पुण्यसदन' और माता का नाम 'सुशीला देवी' था। 'प्रसंग पारिजात' में रामानन्द की माता का नाम सुखी देवी है। 'अगस्त्य संहिता' के अनुसार रामानन्द के पिता जी पुण्यसदन 'कान्यकुब्ज ब्राह्मण' थे। 'भविष्यपुराण' भी कान्यकुब्ज ब्राह्मण का समर्थन करता है।

स्वामी रामानन्द के बालपन के संदर्भ में आर.एस. प्रजापति कहते हैं कि- “ये रोज घर से नये वस्त्र पहनकर खेलने जाते थे। खेलते समय अनाथ बच्चों को वे वस्त्र दे देते थे। और उनके बीच बैठकर रामधुन लगाते थे।”<sup>1</sup>

स्वामी रामानन्द के नाम की यदि हम चर्चा करें तो ‘वैष्णव धर्म रत्नाकर’ के अनुसार रामानंद का पूर्व नाम राम भारतीय था। कालांतर में दीक्षित होने के बाद उनका नाम रामानंद पड़ा। अगस्त संहिता, भक्तमाल एवं भविष्य पुराण जैसे ग्रंथों में रामानंद के गुरु राघवानंद का नाम दृष्टिगत नहीं होता है। रामानंद ने श्री रामार्चन पद्धति में राघवानंद स्वामी को अपना गुरु स्वीकार किया है। कालांतर में रामानंद के पिता ‘पुण्यसदन’ काशी के प्रसिद्ध आचार्य राघवानंद के यहाँ स्वामी रामानन्द को भेज दिया। 12 वर्ष की अवस्था में ही रामानन्द अपने गुरु राघवानंद के समीप जाकर ज्ञान अर्जन करने लगे। इस तरह स्वामी रामानन्द ने अपने कठिन परिश्रम और पुरुषार्थ से संत परंपरा के बीच अपने को स्थापित किया। स्वामी रामानन्द ने काफी दिनों तक योगसाधना करके सिद्धि प्राप्त की उसी का परिणाम है कि ‘कबीर’, ‘रैदास’, ‘पीपा सेन’, ‘धन्ना’ आदि जैसे स्थापित संत परंपरा के लोग इनके शिष्य बने। रामानन्द के संदर्भ में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी कहते हैं कि- “स्वामी रामानन्द का स्थान उत्तरी भारत की संत परंपरा के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रायः सभी तत्कालीन भक्तों तथा संतों को प्रभावित किया है।”<sup>2</sup>

स्वामी रामानन्द समस्त भारतवर्ष का भ्रमण किया। जिसमें बहुतायत भारत के पूर्वी और उत्तर की यात्राएं अधिक रही। उन्होंने रामेश्वर, द्वारका, बद्रीकाश्रम, मिथिला आदि जैसे तीर्थों की यात्रा की और इन सभी क्षेत्रों में घूम कर के उन्होंने जीवन के वास्तविक मर्म को जहाँ समझा तो वहीं दूसरी तरफ लोकजन को समझाने का भी प्रयास किया। स्वामी रामानन्द का प्रारंभिक कर्मक्षेत्र पंचगंगा घाट, काशी को माना जाता है, क्योंकि यहीं पर इन्होंने कड़ी तपस्या किया। भ्रमण के दौरान ही स्वामी रामानन्द ने दलितों और पिछड़ों के दर्द को जाना, समझा और यहीं से उनके जीवन का एक ऐसा दौर प्रारंभ होता है, जिसके बीच दलितों पिछड़ों की भी हिस्सेदारी सुनिश्चित होती है। इनके व्यक्तित्व के संदर्भ में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी कहते हैं कि- “उत्तरी भारत की संत परंपरा के इतिहास में स्वामी रामानंद का एक महत्वपूर्ण स्थान है। ये एक सहृदय व स्वाधीन-चेता व्यक्ति थे जो किसी प्रश्न का विचार करते समय एक व्यापक दृष्टिकोण का उपयोग करते थे और किसी भी बात को सिद्धांत-रूप में स्वीकार कर लेने पर उसे यथावत व्यवहार में लाने का प्रयत्न पूरी निष्कलता के साथ किया करते थे। इनके चरित्र-बल व असाधारण व्यक्तित्व के कारण इनके समकालीन हिंदू-समाज का वातावरण इनसे प्रभावित हो उठा और सर्वत्र एक प्रकार की क्रांति की लहर फैल गई थी। अपने समय की एक प्रभावशाली पथ-प्रदर्शक के रूप में दिख पड़ते हैं और उस युग के प्रायः प्रत्येक विशिष्ट सुधारक को इनका किसी न किसी प्रकार से आभारी होना आज तक स्वीकार किया जाता है।”<sup>3</sup>

स्वामी रामानन्द का सम्पूर्ण जीवन अकादमी अवदान के साथ-साथ मानवतावादी कार्यों के लिए समर्पित रहा। सभी जाति एवं सम्प्रदाय के प्रति उनका विचार उदार था। अस्पृश्यों को वे अपनी धारा से जोड़कर उनको वास्तव में वैष्णव बनाया। आज जिस समाज-सुधार आन्दोलनों की बात हम करते हैं, वास्तव में उसकी नींव तो आज से 600 वर्ष पहले स्वामी रामानन्द ने रख डाली थी। सभी लोगों को एक साथ लेकर चलने की यात्रा को स्वामी रामानन्द ने ही शुरू किया। स्वामी रामानन्द के समाजशास्त्र की यात्रा आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी प्रासंगिक है। स्वामी रामानन्द के समाजशास्त्र की विषय वस्तु को को कुछ पन्नों में समेटना संभव नहीं है, परन्तु आलेख की शब्द सीमा को देखते हुए उनके समाजशास्त्र को अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट करने का सार्थक प्रयास किया गया है :

स्वामी रामानन्द कालीन सामाजिक संरचना को हम देखें तो उसमें महिलाओं की अस्मिता, पहचान एवं उनकी स्वतंत्रता को लेकर ढेर सारे बंधन थे। उनकी प्रस्थिति एवं भूमिका का निर्धारण स्वयं उनके हाथों में नहीं था, बल्कि पिता, पति एवं पुत्र के साथ उनकी प्रस्थिति एवं भूमिका निर्धारित रही। इस यात्रा में हम देखें तो सती प्रथा,

बाल-विवाह एवं विधवा-विवाह निषेध बड़े स्तर पर लागू था। महिलाओं की शिक्षा पर पूरी तरह से प्रतिबन्ध था। घर की चारदीवारी के बीच उनका जीवन सीमित था। पर्दे की वैचारिकी से बाहर कदम रखना पूरी तरह से वर्जित था। ऐसी स्थिति में भी स्वामी रामानन्द ने महिलाओं को संत परंपरा से जोड़ा एवं संत परंपरा का दरवाजा महिलाओं के लिए भी खोल दिया। स्वामी रामानन्द ने महिलाओं की प्रस्थिति एवं भूमिका को वास्तविक फलसफा प्रदान किया। रामानन्द ने अपनी शिष्य परम्परा के बीच जिन महिलाओं को जोड़ा उसमें 'पद्मावती' एवं 'सुरसरि' का नाम प्रमुख है। ये महिलायें अपने को सिर्फ पितृसत्ता की वैचारिकी से बाहर ही नहीं निकला, बल्कि पुरुष प्रधान समाज के बीच अपनी बुद्धि एवं पुरुषार्थ का लोहा भी मनवाया। इस यात्रा में आज महिलाओं की प्रस्थिति एवं भूमिका पिता, पुत्र एवं पति की वैचारिकी से बाहर निकल चुकी हैं। आज प्रत्येक क्षेत्रों में महिलायें कंधे से कंधा मिलाकर पुरुषों के साथ खड़ी हैं। भारत ही नहीं, दुनियां के अधिकांश देशों में महिलायें शीर्ष पद को भी सुशोभित कर रही हैं।

भारत में सामाजिक व्यवस्था जाति के विविध सोपानों में बंटी रही है। इन्हीं सोपानक्रमों के बीच अस्पृश्यता एवं छुआछूत का भेद मानव और मानव के बीच एक बड़ी दीवार के रूप में था। लोग एक-दूसरे की परछायों से भी अपने को अपवित्र समझते थे। ऐसी स्थिति में जनसंख्या का एक बड़ा भाग हाशिए पर था। समाज की मुख्यधारा से ही पूरी तरह अलग-थलग था। उनका शरीर तो था, परन्तु जिन्दा लाश के समान। ऐसी स्थिति को वे अपनी नियति के रूप में स्वीकार करते थे। ऐसे लोकजन के लिए स्वामी रामानन्द का आगमन मसीहा से कम नहीं था। इस संदर्भ में हरीश रायजादा कहते हैं- “उन्होंने साफ-साफ बताया कि ईश्वर की भक्ति के मामले में जाति-पाति और ऊंच-नीच का भेदभाव बेकार है। आदमी अपनी भक्ति से ऊंचा उठता है, जन्म और जाति से नहीं।”<sup>4</sup>

स्वामी रामानन्द ने हाशिए के लोकजन की स्थिति को पर्यटन के दौरान के देखा, समझा और जाना। पहली बार स्वामी रामानन्द ने धर्म की भक्ति का सहारा लेकर हाशिए के लोकजन को अपना शिष्य बनाया, उन्हें दीक्षित किया, जिसमें जुलाहे और चमार जैसी जातियों को देखा जा सकता है। स्वामी रामानन्द का यह मानवतावादी कार्य वास्तव में समाज सुधार आन्दोलन का पहला पड़ाव था। स्वामी रामानन्द ने धर्म की भक्ति का सहारा लेकर हाशिए के लोकजन को मुख्यधारा में लाने के लिए आवाज उठायी। इस काल को भक्ति आन्दोलन काल भी कहा जाता है। इस काल को पुनर्जागरण का प्रथम काल कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस संदर्भ में हरीश रायजादा पुनः कहते हैं कि- “जाति-पाति के भेदभाव को दूर करने और हिन्दू मुसलमानों को एक-दूसरे के नजदीक लाने में रामानन्द ने बहुत बड़ा काम किया है।”<sup>5</sup>

स्वामी रामानन्द का यह अवदान मानवता के कल्याण हेतु इस धरा का सबसे बड़ा कृत्य था। तत्कालीन समय में स्वामी रामानन्द ने लोकजन के एक मूल मंत्र रखा-

“जात, पात कोई पूछे ना कोई। हरि को भजे, सो हरि का होय।।”

वास्तव में रामानन्द का यह वाक्य व्यक्ति और व्यक्ति के बीच जाति, छुआछूत, अस्पृश्यता एवं विविध स्तरों पर भेद के खाईयों को पाटने का काम किया। रामानन्द के अवदानों का ही परिणाम है कि आज संवैधानिक दौर में जाति के दंश से लोकजन बाहर निकल चुका है।

मानव सभ्यता की यात्रा में भक्ति और साधना का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। वैश्विक पटल पर आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी भक्ति एवं साधना मानव के अभिन्न अंग के रूप में दृष्टिगोचर हैं। स्वामी रामानन्द का मानना था कि भक्ति किसी जाति विशेष की वस्तु नहीं है, बल्कि ईश्वर के प्रति श्रद्धा, विश्वास प्रत्येक जाति के लोग कर सकते हैं। यहाँ रामानन्द दो खांचे में खींचे दिखते हैं, एक तरफ तो वे सभी जाति को भक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं, जबकि मंत्र देने का अधिकार सिर्फ ब्राह्मण को ही देते हैं। उनकी भक्ति एवं साधना के संदर्भ में बदरीनारायण श्रीवास्तव कहते हैं कि- “भक्तमाल के अनुसार रामानन्द ने रामचन्द्र की ही भांति संसार के प्रत्येक प्राणियों को तारने के लिए ही दूसरा सेतु तैयार कर दिया था। श्रान्तानन्दादि शिष्यों में उन्होंने दस प्रकार की भक्ति कूट-कूट कर भर दी।”<sup>6</sup>

आगे बदरीनारायण श्रीवास्तव स्वामी रामानन्द की भक्ति एवं साधना के संदर्भ में पुनः कहते हैं कि- “रामानन्द के तत्त्ववाद पर अधिक बल नहीं दिया है। भक्ति ही उनके लिए सबकुछ थी। उनके उपास्य है ‘राम’ और उनकी साधना है ‘राम के प्रति अनन्य शरणागति’। रामानन्द को पाकर रामभक्ति-लता समूचे भारतवर्ष की ऊर्वर भूमि में बहुत ही पल्लवित हुई।”<sup>7</sup>

स्वामी रामानन्द ने लोकजन के बीच कर्म के एक नए स्वरूप को स्थापित किया। इस संदर्भ में हरीश रायजादा का मानना था कि- “काम-धंधा और घर-बार छोड़कर आदमी संन्यास ग्रहण कर ले, यह जरूरी नहीं है, दुनिया में रहकर भी अच्छे काम किए जा सकते हैं, और अच्छी आदतें अपनाई जा सकती हैं। हर एक आदमी यदि गुस्सा, लालच, घमंड और लालसा को छोड़कर ईश्वर को सच्चे मन से प्रेम करें तो जंगल का रास्ता भी परमात्मा के लिए मिल सकते हैं।”<sup>8</sup>

यहाँ रामानन्द कर्म की वैचारिकी को लेकर एक नया फलसफा स्थापित करते हैं। जीवन की वास्तविक दिनचर्या को ही कर्म का असली स्वरूप बताते हैं। स्वामी रामानन्द लोकजन को गृहस्थ जीवन त्यागने के लिए नहीं कहा, बल्कि इसे धर्म और कर्म के वास्तविक रूप में देखा। हाशिये के लोकजन को कर्म के रूप में धर्म का सही फलसफा सिखाया। रामानन्द ने कभी भी धर्म और कर्म को अलग करके नहीं देखा।

स्वामी रामानन्द पूरी दुनिया को ‘राममय जगत’ के रूप में स्वीकार किया। वे भारत के अधिकांश राज्यों में पर्यटन किया और राम भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। लोकजन के बीच राम मंत्र देने में संकोच नहीं किया। उनका मानना था कि राम ही इस सृष्टि का संचालन कर्ता हैं। उसी के आदेश पर यह सत्ता गतिमान है। राम के बिना मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। यहाँ हम स्वामी रामानन्द के राम को देखें तो उनका राम व्यक्ति विशेष का राम नहीं है बल्कि उनका ‘राम’ तो सबका है। सभी के बीच उसकी उपस्थिति है। उनका राम कल्याणकारी है, सृजनकर्ता है। राम ही इस सृष्टि का निर्माण करता है। इस तरह स्वामी रामानन्द आज से 600 वर्ष पूर्व राम भक्ति की धारा को एक नया फलसफा प्रदान किया और एक ऐसे समाज की स्थापना पर बल देते हैं जो सभी को समान अवसर उपलब्ध कराता है, सबको राममय बनाता है।

रामानन्द ने ‘रामानंदी संप्रदाय’ को स्थापित किया। इस संप्रदाय को रामावत अथवा ‘बैरागी संप्रदाय’ भी कहा जाता है। इस परंपरा से जुड़े सन्यासियों को ‘बैरागी’ कहा जाता है। स्वामी रामानन्द के द्वारा स्थापित रामानंदी संप्रदाय के संदर्भ में बदरीनारायण श्रीवास्तव कहते हैं कि- “रामानंदी संप्रदाय के बैरागी साधुओं का संगठन बहुत ही सुदृढ़ और पक्का है। अयोध्या चित्रकूट एवं मिथिला इनके प्रमुख केंद्र हैं। इनके अपने मठ हैं, अपने अखाड़े हैं और अपनी संस्थाएँ हैं। यह संप्रदाय समय के अनुकूल सदैव बदलता रहा, और अनेक बार आपत्ति काल में इसने देश की रक्षा एवं सेवाएँ की हैं। आज उत्तर भारत में इतना सुदृढ़ एवं सुसंगठित सम्प्रदाय कोई दूसरा नहीं है।”<sup>9</sup>

रामानंदी संप्रदाय के संदर्भ में आचार्य परशुराम कहते हैं कि- “स्वामी रामानन्द पढ़ने के लिए काशी गए थे, जहाँ पर शंकराद्वैत मत के प्रभाव में शिक्षा प्राप्त कर अंत में प्रसिद्ध विशिष्टाद्वैती स्वामी राघवानन्द के शिष्य हो गए। परंतु कहीं से तीर्थयात्रा करके लौटने पर आचार-संबंधी कुछ मतभेदों के उत्पन्न हो जाने के कारण उन्होंने अपने गुरु से अलग होकर एक नवीन मत का प्रतिपादन किया, जो श्रामावत संप्रदाय का निर्देशक सिद्धान्त बन गया। स्वामी रामानन्द स्वाधीनचेता महापुरुष थे।”<sup>10</sup>

इस तरह देखा जाए तो स्वामी रामानंद ने ‘रामानंदी संप्रदाय’ की स्थापना कर अपनी मानवतावादी वैचारिकी को मजबूत धरातल प्रदान किया।

भारतीय संस्कृति एवं व्यवस्था सहयोग, योगदान एवं समन्वय की वैचारिकी से पोषित रही है, जिसमें संत समाज का एक बड़ा योगदान रहा। वैसे कुछ कालखंडों में इस व्यवस्था पर स्वार्थपरक शक्तियों ने अपना कब्जा जमा लिया, जिसके कारण लोग एक दूसरे से दूरियां रखने लगे जिससे, मानव और मानव के बीच भेद एवं दूरी की खाइयाँ बढ़ती गई। ऐसी स्थिति में प्रथम वैष्णव आचार्य स्वामी रामानन्द ने सभी जातियों को एक दूसरे के साथ जोड़ा एवं उन्हें अपनी शिष्य परंपरा में स्थान दिया। आज उसी का परिणाम है कि संत परंपरा के बीच जाति का कोई स्थान

नहीं है। संत परंपरा के बीच यदि कोई स्थान है, तो वह है मात्र सहयोग का, योगदान का एवं समन्वयवादी वैचारिकी का। वास्तव में स्वामी रामानन्द ने इस विचारधारा को आज से 600 वर्ष पहले एक मजबूत आधार प्रदान किया। यदि हम तत्कालीन संरचना को देखें तो उस संरचना के बीच विभिन्न हुकूमतों के साथ विदेशी आक्रमणकारियों के दंश के बीच हाशिये का समाज पीस रहा था। अपने ही देशवासी अपनों से ही दूर थे। ऐसी स्थिति में स्वामी रामानन्द का सबको एक साथ लेकर चलना वास्तव में सहयोग, योगदान एवं समन्वयकारी व्यवस्था का एक नया स्वरूप था। यह व्यवस्था जातिगत भेद से परे मानव कल्याण पर आधारित थी। आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी रामानंदी संप्रदाय की विचारधारा के लोग मानवतावादी वैचारिकी के साथ गतिमान हैं।

स्वामी रामानन्द ने धार्मिक कर्मकांडों के क्रिया स्वरूप को स्थापित कर भारतीय संस्कृति और हाशिये के समाज की रक्षा किया। स्वामी रामानन्द के पुरुषार्थ का सार्थक परिणाम रहा कि उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में कई सांस्कृतिक केंद्रों की स्थापना हुई। तत्कालीन 'बैरागी' साधु और संत अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर एक मजबूत मानवीकृत व्यवस्था का निर्माण किया। तीर्थ स्थानों से लेकर गांव-गांव में 'बैरागी' साधुओं ने अखाड़े स्थापित किए। आज उसी का परिणाम है कि भारत ही नहीं वरन संपूर्ण जगत में 'रामानंदी संप्रदाय' के सर्वाधिक मठ, मंदिर, आश्रम स्थापित हैं। आज पूरी दुनिया में रामानन्दाचार्य की 'चरण पादुका' रामानंदियों की तपस्या एवं श्रद्धा का केंद्र बना हुआ है। तत्कालीन संरचना में स्वामी रामानन्द द्वारा धर्म के क्रिया स्वरूप के साथ अंधविश्वास से दूर एवं जातिगत भेद से परे एक ऐसे मानवतावादी धर्म की स्थापना की जो सबकी सहभागिता को सुनिश्चित करता है।

14वीं शताब्दी की संरचना को हम देखें तो शिक्षा का स्तर जो आज है वह उस समय नहीं था। बल्कि बहुत ही कम लोग गुरुकुल शिक्षा को प्राप्त कर पाते ऐसी स्थिति में स्वामी रामानन्द के शिक्षा का स्तर और उनका लेखन उन्हें विद्वानों की श्रेणी में सर्वोपरि पायदान प्रदान करता है। स्वामी रामानन्द ने संस्कृत के साथ हिंदी में भी रचना की जो आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी अपना महत्वपूर्ण हस्तक्षेप रखती है। लोकनज के जीवन के लगभग हर पक्षों को उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान दिया।

प्रस्तुत आलेख के समापन अवलोकन के संदर्भ में कहा जा सकता है स्वामी रामानन्द 'भक्ति आंदोलन' के नायक ही नहीं रहे वरन व्यवस्था परिवर्तन हेतु उन्होंने पहली बार सवाल खड़ा किया। शोषित, दमित सभी को अपने से जोड़ा। जनसंख्या के एक बड़े भाग को नियति की वैचारिकी से बाहर निकाला। स्वामी रामानन्द को पुनर्जागरण आंदोलन के प्रणेता के रूप में देखा जा सकता है। स्वामी रामानन्द ने जिनको अपना शिष्य बनाया उसमें से अधिकांश दलित और पिछड़े ही समाज के थे। उसी में हम 'कबीर' और 'रैदास' को भी देखते हैं। कबीर और रैदास ने स्वामी रामानन्द की विचारधारा को आधार बनाते हुए मानवता का गलियारा बनाया। 'ऊँच-नीच' एवं 'अस्पृश्यता' जैसी वैचारिकी को समाप्त करने की सार्थक पहल की। स्वामी रामानन्द ने महिलाओं को भी पराधीनता की वैचारिकी से बाहर निकाला और उन्हें समाज के बीच उनकी वास्तविक प्रस्थिति सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बिखरी जातियों को एक पायदान पर ला खड़ा किया। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उन्होंने सभी को एक माले में गूँथ दिया। स्वामी रामानन्द ने भक्ति और साधना के वास्तविक स्वरूप को स्थापित किया और कर्म की प्रधानता को सर्वोपरि माना। संपूर्ण जगत को राममय बनाया। उनका मानना था कि राम व्यक्ति विशेष के नहीं हैं, बल्कि राम तो सबके हैं। क्योंकि 'राम' तो घट घट में निवास करता है राम ही इस सृष्टि का सृजनकर्ता है और राम से ही इस सृष्टि का संचालन होता है। राम के अभाव में हम दुनिया की कल्पना नहीं कर सकते। स्वामी रामानन्द ने धार्मिक कर्मकांडों को स्वीकार नहीं किया, बल्कि उसके क्रिया पक्ष को स्वीकार किया। यहाँ स्वामी रामानन्द एक 'क्रिया-समाज वैज्ञानिक' के रूप में खड़े दिखते हैं, क्योंकि आडंबरों से दूर सिर्फ भक्ति और श्रद्धा को ही स्वीकार किया और इसी को ही सर्वोपरि माना। इसी से ही ईश्वर प्राप्ति का रास्ता चुना। आज दुनिया जिस चौराहे पर खड़ी है वहाँ हमें स्वामी रामानन्द के विचारों पर चलना होगा, क्योंकि आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी हम जाति, प्रजाति धर्म, सम्प्रदाय एवं वर्ग जैसे खेमे में बंटे हुए हैं मानव का सृजनकर्ता तो सबको एक समान रूप में बनाता है फिर मानव को मानव से अलग करने का अधिकार कैसे भेद करने का अधिकार कैसे

हमें एक बार पुनः रामानन्द के विचारों की तरफ लौटना होगा क्योंकि उनके विचार तोड़ने की बजाय जोड़ने पर बल देते हैं सबको एक साथ लेकर चलते हैं एवं सामान्य भागीदारी की बात करते हैं। स्वामी रामानन्द का समाजशास्त्र वास्तव में समाज के सभी पक्षों को अपनी विषय-वस्तु में समाहित करता है। स्वामी रामानन्द ने लोकजन को जीवन जीने का सही फलसफा प्रदान कर जीवन जीने का ढंग सिखाया। स्वामी रामानन्द लोकजन को एक साथ लेकर चलते दिखते हैं। स्वामी रामानन्द का आज भौतिक शरीर नहीं है लेकिन उनकी विचारधारा एक सम्प्रदाय के रूप में एक बृहद परंपरा का रूप धारण कर चुकी है। आज दुनिया में 'रामानंदी संप्रदाय' की कई उप-शाखायें अस्तित्व में हैं जो मानव कल्याण हेतु अनवरत समर्पित हैं।

---

समाजशास्त्र विभाग,  
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.) - 221005

**संदर्भ -**

1. प्रजापति, आर.एस. (1984) : रामानन्द संप्रदाय और साहित्य, प्रगति प्रकाशन, आगरा, पृ. 22
2. चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम (1981-चतुर्थ संस्करण) : संत काव्यधारा, किताब महल, इलाहाबाद, पृ. 89-90, ई-पुस्तकालय से प्राप्त
3. चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम (2014) : उत्तरी भारत की संत-परंपरा, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, पृ. 163
4. रायजादा, हरीश : भारतीय संत, भारतीय भवन, अलीगढ़, पृ. 2, ई-पुस्तकालय से प्राप्त।
5. वही, पृ. 5
6. श्रीवास्तव, बदरीनारायण (1957) : रामानन्द-संप्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव, हिन्दी परिषद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, पृ. 97, ई-पुस्तकालय से प्राप्त।
7. वही, पृ. 89
8. रायजादा, हरीश : भारतीय संत, भारतीय भवन, अलीगढ़, पृ. 4, ई-पुस्तकालय से प्राप्त
9. श्रीवास्तव, बदरीनारायण (1957) : रामानन्द-संप्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव, हिन्दी परिषद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, पृ. 94, ई-पुस्तकालय से प्राप्त।
10. चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम (1981-चतुर्थ संस्करण) : संत काव्यधारा, किताब महल, इलाहाबाद, पृ. 89, ई-पुस्तकालय से प्राप्त।

## शिवलहरा की शैलोत्कीर्ण गुफाओं का प्रलेखीकरण और शिलालेखों का विवेचन

*आलोक श्रोत्रिय, मोहनलाल चढार एवं हीरासिंह गोंड*

मध्य प्रदेश का अनूपपुर जिला अब तक मात्र नर्मदानदी के उद्गम एवं धार्मिक महत्व के स्थल अमरकंटक के कारण प्रसिद्ध है। साथ ही इस जिले में कलचुरियों के मंदिर और मूर्तियाँ ही विद्वत जगत और सामान्य जन को ज्ञात हैं। इस शोधपत्र के माध्यम से अनूपपुर जिले के शिवलहरा नामक स्थल पर विद्यमान मानव निर्मित गुफाओं की मूर्तिकला, वास्तुकला और ऐतिहासिक महत्ता को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। इन गुफाओं में प्रथम शताब्दी ई. की ब्राह्मी लिपि में लिखे तथा शिलालेखी प्राकृत भाषा में निबद्ध शिलालेख प्राप्त हुए हैं। धार्मिक क्रियाकलापों और आमोद-प्रमोद की गतिविधियों के कारण यह स्थान जनसामान्य के आकर्षण और श्रद्धा का केंद्र तो रहा है परन्तु यहाँ की महत्त्वपूर्ण पुरा-सम्पदा का ऐतिहासिक महत्त्व लोगों के लिए आज भी कौतुहल और उत्सुकता का हेतु है। गुफा में लिखे शिलालेखों की लिपि रहस्य का विषय होने से लोगों की जिज्ञासा का केंद्र बनी हुई है। प्रस्तुत शोधपत्र गुहाओं के वास्तु और कलावशेषों का प्रलेखीकरण करते हुए शिलाभित्तियों पर अंकित अभिलेखों के पाठ, अर्थ और महत्त्व को प्रकाश में लाने का एक उपक्रम है।

मध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले की कोतमा तहसील में दार सागर ग्राम पंचायत के अंतर्गत शिवलहरा नामक स्थल है। यह स्थान अनूपपुर जिला मुख्यालय से लगभग 40 किलोमीटर की दूरी पर 23° 8' 16' उत्तरी अक्षांश से 81° 57' 51'' पूर्वी देशान्तर के मध्य सोननदी की सहायक नदी केवई के पूर्वी तट पर स्थित है।



चित्र क्रं.1 शिवलहरा की स्थिति

अनूपपुर जिले की कोतमा तहसील के भालूमाडा नामक स्थल से यहाँ की दूरी लगभग तीन किलोमीटर है जबकि नर्मदा नदी के उद्गम स्थल अमरकंटक से यह स्थान 87 किलोमीटर दूर है। प्रतिवर्ष महाशिवरात्रि पर्व के अवसर पर यहाँ तीन दिवसीय मेले का आयोजन भी किया जाता है।

### पुरातात्विक सर्वेक्षण

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के द्वारा भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण से विधिवत अनुमति लेकर सम्पूर्ण अनूपपुर जिले का पुरातात्विक सर्वेक्षण 2013-14 और 2014-15 के सत्रों में किया जिनमें पुरातात्विक महत्त्व की प्रभूत सामग्रियाँ प्राप्त हुयीं। सत्र 2014-15 में संपन्न पुरातात्विक सर्वेक्षण के दौरान इस शोधपत्र के लेखकों ने शिवलहरा की शैलोत्कीर्ण गुफाओं और उनमें सन्निहित पुरा-सामग्रियों को विश्लेषित किया।<sup>1</sup>

### शैलोत्कीर्ण गुफाएँ एवं अभिलेख

सत्र 2013-14 में किए गए पुरातात्विक सर्वेक्षण में प्रस्तुत पंक्तियों के लेखकों द्वारा शिवलहरा में 7 शैलकृत गुफाओं का अवलोकन कर उनकी प्राचीनता एवं महत्त्व का परीक्षण किया गया। प्रस्तुत शोधपत्र के प्रथम लेखक प्रो. आलोक श्रोत्रिय ने इन गुफाओं में उत्कीर्णित सभी ब्राह्मी लिपि में लिखित अभिलेखों का उद्घाटन किया है और उनकी तुलना पूर्ववर्ती पाठों से की है। सबसे प्राचीन अभिलेख प्रथम शती ईस्वी की ब्राह्मी लिपि में लिखे पाए गए हैं।

### पूर्ववर्ती कार्य और उनकी सीमाएँ

वर्तमान समय के सर्वेक्षण प्रतिवेदनों तथा प्रकाशनों में इस स्थल के ऐतिहासिक महत्त्व का समुचित प्रतिपादन नहीं मिलता है। राज्य पुरातत्त्व विभाग के सर्वेक्षण में इन गुफाओं को 16 वीं शती ईस्वी में निर्मित बताया गया है और ब्राह्मी अभिलेखों का कोई उल्लेख भी नहीं किया गया है।<sup>2</sup> भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के जबलपुर मंडल की वेबसाइट पर अनूपपुर जिले के स्मारकों के तहत सिलहरा की अभिलिखित गुफाओं का उल्लेख है किन्तु वेबसाइट पर मात्र सामान्य दृश्य और एक शिलालेख का चित्र है। इन गुफाओं के वर्तमान स्थल-नाम शिवलहरा की चर्चा इसमें नहीं है। साथ ही वेबसाइट पर गुफाओं की अवस्थिति तहसील राजेन्द्र नगर में दर्शायी गयी है जबकि इस नाम की कोई तहसील अनूपपुर जिले में नहीं है। वेबसाइट पर 6 दिसंबर 1952 के भारत सरकार के गजट के भाग 2 अनुभाग 3 तथा 9 मई 1953 के भारत सरकार के गजट के भाग 2 अनुभाग 3 की अधिसूचनाएँ संलग्न हैं जो इन गुफाओं की अवस्थिति ग्राम दार सागर के निकट होने की जानकारी देती हैं।<sup>3</sup> 6 दिसंबर 1952 के भारत सरकार के गजट की अधिसूचना में इन गुफाओं को प्रथम शती ईस्वी का बताया गया है।<sup>4</sup> डॉ. आर. के. शर्मा की प्रसिद्ध पुस्तक 'मध्य प्रदेश के पुरातत्त्व का संदर्भ ग्रंथ' में शिलाहार की गुफाओं का उल्लेख है।<sup>5</sup> परन्तु जिन्हें ढूँढ पाना मात्र इस पुस्तक से संभव नहीं हो पाता क्योंकि इन गुफाओं की स्थिति, जिले अथवा क्षेत्र का उल्लेख इस पुस्तक में नहीं है। साथ ही स्थल का नाम इस पुस्तक में शिलाहार अंकित है जो महाराष्ट्र के शिलाहार वंश का संकेत देता है और मध्य प्रदेश में इसकी अवस्थिति स्पष्ट नहीं हो पाती है। तथापि यह सन्दर्भ ग्रन्थ एपिग्राफिया इंडिका के भाग 22 में शिलाहार के गुफालेख प्रकाशित होने की चर्चा करता है।<sup>6</sup> एपिग्राफिया इंडिका के भाग 22 के अध्ययन से विदित होता है कि मध्य भारत के रीवा स्टेट के अंतर्गत सिलहरा की गुफाओं से प्राप्त अभिलेखों कि स्याही-छाप लगभग 1909 में किसी शिक्षक ने राय बहादुर डॉ. हीरालाल को भेजी थी। ये स्याही-छाप बाद में शासकीय अभिलेख शास्त्री डॉक्टर हीरानंद शास्त्री के संज्ञान में आयी और उन्होंने 1927-28 की आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की एनुअल रिपोर्ट में इनका सार प्रस्तुत किया।<sup>7</sup> प्रो. डी. आर. भंडारकर ने इन शिलालेखों की स्याही-छाप के आधार पर इन गुफाओं के ब्राह्मी अभिलेखों का उद्घाटन करके उनसे प्रकट सूचनाओं की व्याख्या करने का प्रयास किया है।<sup>8</sup> डॉ. भंडारकर ने अपने निष्कर्ष बिना स्थल की यात्रा किए मात्र अभिलेखों के आधार पर दिए हैं, इस कारण निष्कर्षों में वास्तविक गुहा स्थल की प्रकृति और उसके उपयोग के सम्बन्ध में दिए गए मत ग्राह्य नहीं हैं, जिनकी चर्चा लेख में आगे की गयी है।

### शिवलहरा की गुफाओं का विन्यास

विवेच्य गुफाएँ केवई नदी के पूर्वी तट पर स्थित हैं। यह नदी छतीसगढ़ के कोरिया जिले के बैरागी ग्राम से निकलती है और सुतारी, मुद्धवा, खोलाधि, पचखुरा, छुलहा (हनुमान घाट), सीतामढी (जल प्रपात), भालूमाड़ा,

शिवलहरा, दारसागर होते हुए जैतहरी तहसील के चोलना ग्राम के निकट सोननदी में मिल जाती है। कोतमा नगरवासियों एवं क्षेत्र के लोगों के लिए यह सदानीरा नदी जीवन रेखा है। केवई नदी के तट पर स्थित इन गुफाओं पर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा क्रमांक अंकित नहीं किए गए हैं। किंतु अध्ययन की सुविधा के लिए इस शोधपत्र में गुफाओं को क्रमांक 1 से क्रमांक 7 तक क्रमांकित किया गया है।



चित्र क्र. 2



चित्र क्र. 3



चित्र क्र. 4

शिवलहरा की गुफाओं का सामान्य दृश्य तथा आलेख में गुफाओं को दिए गए क्रमांक शिवलहरा की पहाड़ी जिसमें खोदकर गुफाएं बनाई गई हैं सफेद से हल्के पीले रंग के बलुआ पत्थर से निर्मित है जो महीन दानेदार प्रकृति का है। चट्टान को तोड़कर देखने पर उसमें क्वार्टज, सिलिका और मृदा के महीन दाने दिखाई देते हैं। दक्षिण की ओर से पहाड़ का अवलोकन करते हुए आगे बढ़ने पर पहाड़ पर प्राचीन से लेकर के अब तक के बहुत से उत्खनन दिखाई देते हैं। पर्यटकों ने विभिन्न प्रकार की आकृतियां बनाकर तथा अपने नाम खोदकर इस पुरास्थल को बहुत नुकसान पहुंचाया है। विभिन्न मानव आकृतियां तथा पशु आकृतियां चट्टान पर खोदकर बनाई हुई दिखाई देती हैं। एक मानव आकृति के समीप खोदकर बनाया गया त्रिशूल बाद के समय का प्रतीत होता है। साथ ही हाथी, डायनासोर के समान चार पैर वाला जंतु, गाय बछड़ा, चोंच- से चोंच मिलाकर बनाई गई बत्तख के समान आकृतियाँ एवं हनुमान का अंकन उल्लेखनीय हैं। गुफाओं के सम्मुख भूतल में बहुत से

गोलाकार छिद्र प्राप्त होते हैं जो संभवतः प्राचीन समय में विशिष्ट अवसरों पर गुफाओं के सम्मुख छाजन करने हेतु प्रयुक्त होते रहे होंगे। पहाड़ी के किनारे दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ने पर गुफाएं परिलक्षित होने लगती हैं जिनका विवरण आगे की पंक्तियों में दिया गया है।

**गुफा क्र. 1:** यह गुफा भूतल से लगभग 3 फीट की ऊँचाई पर पहाड़ में खुदी हुई है। इसका आकार (लंबाई चौड़ाई तथा गहराई) 4'x2.5'x3' है। गुफा के बायीं ओर श्रृंगयुक्त शिरोभूषण पहने हुए एक साधु का अंकन है जो अपने दोनों हाथ ऊपर की ओर उठाए हुए है। साधु के दाएं हाथ में पोथी तथा बाएं हाथ में त्रिशूल तथा निचले बाएं हाथ में डमरु का अंकन किया गया है। दायीं ओर का निचला हाथ संभवतः टूट गया है। ठीक इसी प्रकार की आकृति गुफा की आंतरिक भित्ति पर भी मिलती है। इसी आकृति के बायीं ओर चैत्य गवाक्ष जैसी अत्यंत धूमिल आकृति दिखाई देती है और साथ ही अस्पष्ट से अक्षर दृष्टिगोचर होते हैं। गुफा में सम्प्रति एक बड़ा शिवलिंग स्थापित है तथा छोटा शिवलिंग, देवी-देवताओं के चित्र व एक त्रिशूल रखा हुआ है।



चित्र क्र. 5

**गुफा क्र. 2 :** यह एक छोटी सी गुफा है जो पहाड़ी को खोदकर भूतल से स्तर पर ही बनाई गयी है। गुफा की छत गज पृष्ठाकार है और आकार (लंबाई चौड़ाई तथा गहराई) 8'x 5'x9.5' है। ऊँचाई की दृष्टि से यह एक कम ऊंची गुफा है जिसमें बैठकर साधक संभवतः ध्यान किया करते होंगे। इसी गुफा के दाहिनी ओर चट्टान पर हाथ में कमंडल लिए हुए साधु का स्थानक स्थिति में अंकन है और साधु के दाहिने ओर एक स्तंभ का उत्खचन है जिस पर बगुले के समान पक्षी उकेरा गया है। केवई नदी में आने वाली बाढ़ के कारण आकृतियाँ क्षतिग्रस्त हुई हैं।

**सोपान व्यवस्था, प्रांगण तथा राहदारी :** गुफा क्रमांक 2 के पहले चट्टान में काटकर 10 सीढ़ियाँ बनी हैं, जिनसे होकर ऊपरी तल की गुफा क्रमांक 3 तक पहुँचा जा सकता है। सीढ़ियों तथा चट्टान की भित्तियों पर बहुत से नाम, स्वस्तिक, अन्य प्रतीक तथा आकृतियाँ बाद के समय में पर्यटकों ने अंकित कर दिए हैं। ऊपर चढ़कर जाने पर गुफा क्रमांक 1 और 2 की छत तथा गुफा क्रमांक 3 के सामने की खाली जगह प्रांगण तथा राहदारी का स्वरूप प्रस्तुत करती है। सीढ़ियों के दायीं ओर शिवलिंग बने थे जो पानी के बहाव तथा काल के प्रवाह से घिस गए हैं किंतु सभी की जलहरी दिखाई देती है। इसी के ऊपरी शिला खंड पर तीन (दो बड़ी और एक छोटी) स्थानक मानव आकृतियाँ उकेरी हुई मिलती हैं। यह आकृतियाँ आजानुबाहु नहीं हैं और न ही नग्न हैं। इसलिए इन्हें जैन तीर्थंकर नहीं माना जा सकता। यह साधुओं का अंकन हो सकता है। इसके आगे बढ़ने पर दायीं ओर सात मानव आकृतियाँ उत्कीर्णित हैं जिनमें से प्रथम, तृतीय, चतुर्थ, षष्ठ और सप्तम आकृतियाँ हाथों को सामने की ओर नीचे लटकाकर बाँधे हुए दर्शाए गई हैं जबकि द्वितीय और पंचम आकृति के हाथ धड़ के समानांतर लटके हुए प्रदर्शित किए गए हैं। प्रथम, तृतीय और षष्ठ उत्कीर्णन में स्त्री आकृति प्रतीत होती है। सात मानवाकृतियों के ऊपर बाद के समय में हनुमान की आकृति उकेरी गयी है। गुफा क्र. 3 के बाहर प्रांगण में पश्चिमाभिमुख भित्ति पर लगभग 6' की ऊँचाई पर प्रथम शताब्दी ईस्वी की ब्राह्मी लिपि में तीन पंक्तियों का लेख उत्कीर्ण किया गया है जो इस प्रकार है :



चित्र क्र. 6

पाठ

1. सि वा नंदिप न ति के न (सिवानंदि पनतिकेन)
2. सि व द त न ति के न (सिवदत्त नतिकेन)
3. (सि) (व) (मि) (त) (पुतेन) (सिवमित पुतेन)

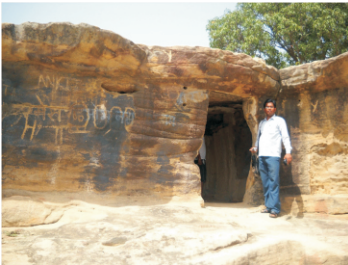
गुहा भित्ति पर अंकित इस लेख तथा गुहा समूह के अन्य ब्राह्मी लेखों से ज्ञात होता है कि इन गुहाओं के उत्कीर्णन में शिवानंदी के परनाती और शिवदत्त के नाती और शिवमित के पुत्र का योगदान रहा है। प्रस्तुत पंक्तियाँ तथा गुहा क्र. 3 के भीतर के लघु उत्खचन भी इसी तथ्य को उद्घाटित करते हैं।

**गुहा क्र. 3 :** यह गुफा गुफा क्रमांक 2 के ऊपरी तल पर चट्टान को काटकर बड़े ही सुगढ़ ढंग से बनाई गई है।

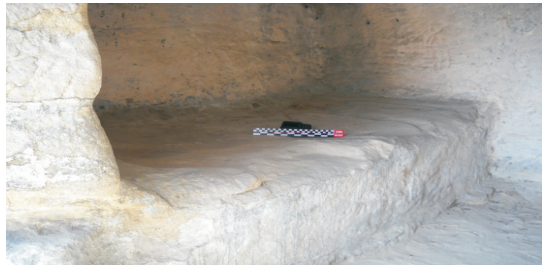


चित्र क्र. 7

ब्रिटिशकाल में इस गुफा को चेरी गोदड़ी गुफा कहा जाता था जो डॉ. हीरानंद शास्त्री और प्रो. डी. आर. भंडारकर के लेखों से प्रकट होता है। नदी के तल से यह गुफा लगभग 30 फीट ऊंचाई पर बनी है। गुफा का द्वार 5'6" ऊँचा और 3' चौड़ा है। गुफा की छत सपाट है और आकार (लंबाई चौड़ाई तथा गहराई) 5'8" x 9.5' x 5'6" है। गुफा में भिक्षु अथवा साधु के शयन हेतु पाषाण पर्यंक (चौकी) बना है।



चित्र क्र. 8



चित्र क्र. 9

जिसका आकार (लंबाई चौड़ाई ऊंचाई) 7'6"x3' 4"x3' है। पाषाण पर्यक सपाट है और इसमें तकिए के समान संरचना नहीं है। पश्चिमी भारत तथा दकन की बौद्ध गुफाओं में इस प्रकार के पाषाण पर्यक प्रायः मिलते हैं। यह विशेषता इन गुफाओं के बौद्ध धर्म से संबंधित होने का संकेत देती है। आसपास के क्षेत्र में बौद्ध स्तूप नहीं मिला है। परंतु इसी गुफा में एक बड़ा आला चैत्य गवाक्ष अलंकरण युक्त है।



चित्र क्र. 10

इस आले का आकार 3'4"x3'x2'4" है। आले के ऊपर कालांतर में चूने और सीमेंट का प्रयोग किया गया है। साथ ही आले के बायीं ओर चंद्रमा बना है जबकि दायीं ओर प्रथम शताब्दी ईस्वी की ब्राह्मी लिपि में '..... .....पुतेन अ म ....' लिखा मिलता है। गुफा के दरवाजे के विपरीत दिशा में भी एक त्रिकोणात्मक आला बना हुआ है जिसकी प्रत्येक भुजा लगभग 7" की है और आले की गहराई 4" है। ये आलेदीपक रखने तथा गुफा में अन्य सामग्रियों को रखने के काम में आते थे। इस आले के ऊपर दायीं ओर ब्राह्मी लिपि में 'सिवदतनतिकेन' शिला भित्ति पर खुरचकर लिखा गया है। यह वाक्यांश उसी लेख से मिलता जुलता है जो कि इस गुफा के बाहर प्रांगण में पश्चिमाभिमुख भित्ति पर 3 पंक्तियों में अंकित है।<sup>10</sup> डॉ. भंडारकर को इस गुहा से सम्बंधित प्रति चित्रण प्राप्त हुए थे जो उस समय अच्छी अवस्था में रहे उत्खननों से तैयार के गए होंगे। उनके पाठ उसी पाठ का भाग प्रदर्शित करते हैं जो आगे सीतामढी गुहा के पाठ में दिया गया है।<sup>11</sup>

**गुफा क्र. 4 और 5 :** ये गुफाएं तल से लगभग साढ़े 4 फीट की ऊंचाई पर पास-पास निर्मित हैं। चट्टान को गहराई में खोदकर गुफाओं का मुँह गोलाकार/अंडाकार बनाया गया है। गुफाओं के मुहार का व्यास 4 फीट का है और अंदरूनी भाग की ऊंचाई लगभग 5.5 फीट है। गुफाएँ खाली हैं। कम ऊंचाई के कारण इनमें केवल बैठना ही सुविधाजनक लगता है। संभवतः ध्यान के उद्देश्य से इन्हें निर्मित किया गया होगा।



चित्र क्र. 11

**गुफा क्र. 6 :** गुहा क्रमांक 4 तथा 5 को पार करके उत्तर दिशा की ओर आगे बढ़ने पर दायीं ओर यह गुफा दिखाई देती है। मार्ग में दायीं ओर की चट्टानों पर समतल बनाए गए आयताकार पटल मिलते हैं। साथ ही शिला फलकों पर बहुत से लेख तथा आकृतियाँ भी घिसी हुई मिलती हैं। संभवतः इन पर कुछ अंकित रहा होगा। बाढ़ अथवा मानवीय गतिविधियों के कारण इन पर अंकित अंकन आज उपलब्ध नहीं होते। मार्ग में जल एकत्रित करने के लिए चट्टान

काटकर बनाए गए कुंड और बाँस-बल्लियाँ लगाकर छाजन करने में प्रयुक्त स्तम्भ आधार के छिद्र प्राप्त होते हैं। गुफा क्र. 6 शिवलहरा के गुहा समूह की सबसे बड़ी गुफा है। इस वृहत गुहा को नदी के तल से लगभग 15 फीट की ऊँचाई पर चट्टान को काटकर बनाया गया है।<sup>12</sup> ब्रिटिश काल में इस गुफा को दुर्वासा गुफा कहा जाता था जो डॉ. हीरानंद शास्त्री और प्रो. डी. आर. भंडारकर के लेखों से प्रकट होता है।<sup>13</sup> बाहर की ओर से देखने पर शिलाभित्ति, पांच स्तंभ और उसके पश्चात बाद के समय में बनाई गई ईंटों की दीवार दिखाई देती है।

शिलाभित्ति और प्रथम व द्वितीय स्तंभों के मध्य पाँच-पाँच सीढ़ियाँ हैं जिन पर चढ़कर गुहा में प्रवेश किया जा सकता है। ये सीढ़ियाँ मूल रूप से उत्खनित गुफा का भाग नहीं थी। इन्हें बाद में किसी समय काटकर बनाया गया है। बाहर से दिखाई देने वाले प्रथम तथा द्वितीय स्तंभों पर हनुमान का अंकन है जिनके दाहिने हाथ में गदा है जो दाहिने स्कंध पर अभिविन्यस्त है जबकि बायें हाथ में पर्वत है जो मुख से कुछ ऊँचाई पर दिखाया गया है। हनुमान की पूंछ सिर के ऊपर से होकर बायें हाथ में प्रदर्शित पर्वत के समीप तक एक अर्धवृत्ताकार स्वरूप में गई है।



चित्र क्र. 12

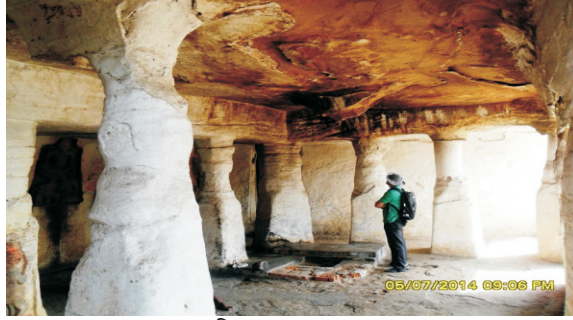
यह उत्कीर्णन स्तंभों पर बाद के किसी समय में किये गये प्रतीत होता है। द्वितीय स्तंभ पर आधार रूप अधिष्ठान से लगभग 1' की ऊँचाई पर एक हस्ति सवार का रोचक अंकन है। यह अंकन सीढ़ियों की तुलना में पुराना है क्योंकि सीढ़ियाँ बनाने में यह उत्खनन आधा कट गया है। इस उत्खनन में हाथी की पीठ पर बैठने के लिए बिछाया गया वस्त्र दर्शाया गया है। उसके ऊपर एक मानव आकृति बनाई गई है जो कि स्थानक अवस्था में दर्शित है। वस्तुतः कलाकार मानव आकृति को हाथी पर बैठे हुए दिखाना चाहता था परंतु उस तरह के उत्खनन में समर्थ न होने के कारण मानव को इसी रूढ़ अवस्था में हाथी के ऊपर बना दिया गया है।



चित्र क्र. 13

मानवाकृति के सिर छत्र का अंकन है। छत्र की यष्टि भी हाथी की पीठ से मानवाकृति के पीछे तक जाती देखी जा सकती है। मुख गोलाकार है और हाथ हाथी की गति की दिशा में आगे बढ़े हुए दिखाए गये हैं। इसी स्तम्भ

पर हस्ति सवार के ऊपर आधार रूप अधिष्ठान से 3' की ऊँचाई पर दो अलग-अलग ऊँचाई की मानव आकृतियाँ बनी हैं जिसमें से बड़ी आकृति के दायें हाथ में तलवार (खड्ग) तथा बायें हाथ में त्रिशूल है। इसी आकृति के बायीं ओर बनी अपेक्षाकृत छोटी मानव आकृति के बाएँ हाथ में दंड का अंकन है। यह अपनी रुढ़ कला शैली के कारण ये मानवाकृतियाँ लोककला का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। इनके काल का निर्धारण कठिन है। इस गुहा का आकार (लम्बाई-चौड़ाई और ऊँचाई) 39'6"x20'x9'8" का है। गुहा में कुल 16 स्तम्भ थे जो चट्टान को काटकर निर्मित किए गए थे। संप्रति गुफा के बाहर की ओर से पाँच स्तंभ दिखाई देते हैं। गुफा में प्रवेश करते ही दायीं ओर चार स्तंभों की पंक्ति तथा सामने की ओर 5 स्तंभों की पंक्ति दिखाई देती है। बायीं ओर दो स्तम्भ बने हैं।



चित्र क्र. 14

इन दो स्तंभों के समीप एक आधुनिक स्तम्भ गुहा को सहारा देने के लिए ईंट और सीमेंट से बना दिया गया है। गुहा के मध्य में दो स्तंभ बने हैं। कुछ स्तंभों का केवल ऊपरी भाग दिखाई देता है जिससे स्पष्ट होता है कि वहां भी पहले स्तंभ रहे होंगे। गुफा के मध्य में आधार से छत तक की ऊँचाई 9' 8" है जबकि कोनों में यह 7'3" है। स्तम्भ आधार से शीर्ष तक 9'6" के हैं। इन स्तंभों का निचला भाग चौपहल है जिसका घेरा 70 से.मी. का है और ऊपरी भाग बाद में गोलाकार स्वरूप में पुनः निर्मित किया गया है। इस गोल भाग की परिधि की लम्बाई 60 से. मी. है। गुफा के पश्चिमाभिमुखी द्वार के समीप द्वितीय-तृतीय तथा तृतीय-चतुर्थ स्तंभों के मध्य चट्टान का कटाव वातायन की तरह है। गुफा के अंदर से देखने पर ये कटाव खिड़की की तरह दिखते हैं और इनसे होकर केवई नदी और बाहर के दृश्य देखे जा सकते हैं। तृतीय स्तम्भ में भीतर की ओर आधार रूप अधिष्ठान से 2' की ऊँचाई पर एक आला (ताखा) बना है जो पूजा अथवा दैनिक उपयोग की सामग्रियों को रखने हेतु प्रयुक्त होता रहा होगा। सम्प्रति स्तम्भों पर कहीं कहीं सिन्दूर का लेपन मिलता है। हनुमान मूर्तियाँ भी सिन्दूर लेपित हैं। स्तंभों पर देवनागरी में राम भी लिखा है जो वर्तमान में श्रद्धालुओं द्वारा सिन्दूर से लिखा दिया गया है।

**शिलालेख :** गुहा में प्रवेश के साथ ही सम्मुख स्तम्भ पंक्ति (जिसमें 5 स्तम्भ दिखाई देते हैं) के प्रथम और द्वितीय स्तम्भ के मध्य की ऊपरी समतल भित्ति पर प्रथम शताब्दी ईस्वी की ब्राह्मी लिपि में पाँच पंक्तियों का एक लेख उत्कीर्ण है जो इस प्रकार है:



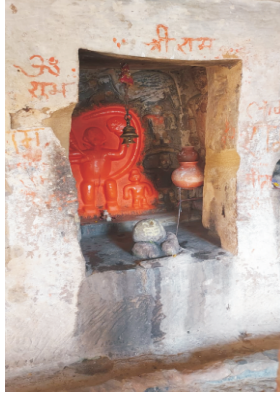
चित्र क्र. 15

## पाठ

1. स्वा मि द तेरा ज क र यं त म्हिसि वा नंदिप न ति के न (स्वामिदत्ते राज करयंतम्हिसिवानंदि पनतिकेन)
2. सि व द त न ति के न (सिवदत्त नतिकेन)
3. [सि] [व] मि त पुतेन (सिवमित पुतेन)
4. [व] [छे] [न] म [मो] ग लिपुतेन (वछेन मोगलि पुतेन)
5. [मू] [ल] [दे] [वे] न पुराबुध व ने रोपा पि ता (मूलदेवेन पुराबुधवने रोपापिता)

गुहा भित्ति पर अंकित इस लेख से ज्ञात होता है कि स्वामिदत्त के शासन के दौरान (राज करने के समय) शिवानंदी के परनाती और शिवदत्त के नाती और शिवमित के पुत्र वत्स गोत्र वाले मौद्गली (मोगली) के पुत्र मूलदेव के द्वारा पुराने बुद्ध वन में रोपण करवाया।

यह गुफा शैलकृत मंदिर के स्वरूप में है। स्तम्भाधारित मण्डप, तदनन्तर अंतराल, उसके पीछे गर्भगृह और गर्भगृह के बायें पार्श्व में विहार गुहा (आवास हेतु) का अभिनिवेश इसे विशिष्ट गुहा मंदिर का रूप देता है। सम्मुख ओर के 5 स्तंभ और दर्शक के दाहिनी ओर के 4 स्तम्भ गुफा में दो बरामदों का स्वरूप उपस्थित करते हैं। एक स्तम्भ पर हनुमान का उच्चित्रण किया हुआ मिलता है।<sup>14</sup> सम्मुख ओर के प्रथम और द्वितीय स्तम्भ, जिनके ऊपर के फलक के अभिलेख की चर्चा पूर्व में की जा चुकी है, के सामने सम्प्रति ईंटों से बना हुआ हवन-कुंड है जो बाद की रचना जान पड़ता है। इन्हीं दोनों स्तंभों के पीछे बने अंतराल के बाद की शिलाभित्ति को गहराई में काटकर 2' 6" x 5' 3" x 2' 4" का गर्भगृह बनाया गया है। सम्प्रति इसके ऊपर और आस-पास ओंकार, राम, श्रीराम, शुभ तथा लाभ सिन्दूर से लिखा गया है। वर्तमान में इस गर्भगृह में हनुमान की सिन्दूर लेपित प्रतिमा प्रतिष्ठित है। पश्चिमाभिमुख इस स्थानक प्रतिमा के दायें हाथ में गदा है जो दायें कंधे पर अभिविन्यस्त है। हनुमान के बाएं हाथ में पर्वत है तथा यह उनके सिर से कुछ ऊपर की ओर उठा हुआ है। हनुमान जी की पूंछ उनके बायीं ओर से अर्द्धवृत्त बनाते हुए शीश तक गयी है। हनुमान प्रतिमा के दायीं और बायीं दोनों ओर एक-एक स्थानक लघु पुरुषाकृति बनी है। हनुमान फलक का यह अंकन परवर्ती काल में इन प्रथम शताब्दी ईस्वी की गुफाओं में लगाया गया प्रतीत होता है। हनुमान फलक के ऊपर, दायें-बायें तथा गर्भगृह के दोनों ओर बने उच्चित्रण भी कभी बाद के समय में उकेरे गए हैं।



चित्र क्र. 16

गर्भगृह के भीतर हनुमान प्रतिमा के दाहिनी ओर बायीं दोनों ओर लगभग 5' 3" ऊंची पुरुष आकृतियाँ उन्नत उच्चित्र के रूप में बनी हैं। इन पुरुष मूर्तियों के गले का हार, भुजबंध, धोती और उसका पटका देखे जा सकते हैं। फलक के परितः दक्षिणावर्त हस्त्यारूढ़ पुरुष (कलाकार हाथी पर व्यक्ति को बैठे हुए नहीं बना पाया है, फलतः उसने हाथी के ऊपर स्थानक आकृति बना दी है), दो पक्षी, एक बड़ा मयूर समान पक्षी तथा दो स्थानक पुरुष आकृतियाँ उत्कीर्णित हैं। हनुमान प्रतिमा के बायीं ओर सबसे नीचे बनी पुरुष आकृति दोनों हाथ ऊपर उठाए हुए हैं जिसके सिर के ऊपर छत्र समान अंकन है। छत्रयुक्त आकृति किसी राज-पुरुष का अंकन प्रतीत होता है। गर्भगृह से 40 सेंटीमीटर की दूरी पर तथा भूतल से 120 सेंटीमीटर की ऊंचाई पर हाथी पर सवार पुरुष आकृति का उच्चित्रण है।

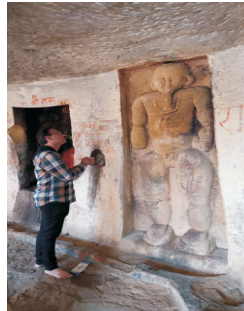
हस्त्यारूढ पुरुष की मुखाकृति अस्पष्ट है। मूर्ति के घिस जाने के कारण नाक और दाढ़ी मिलकर सूंड का भ्रम उत्पन्न करते हैं जिससे लोग इसे गणेश मूर्ति मानकर भ्रमित होते हैं। वस्तुतः यह दाढ़ी युक्त पुरुष का अंकन है।



चित्र क्र. 17

यह उच्चित्रण 7'3''x2' के आले में बनाया गया है। हाथी की पीठ पर बिछाया हुआ वस्त्र भी प्रदर्शित है और ऊपर व्यक्ति को सामने की ओर पालथी मारकर बैठे हुए उच्चित्रित किया गया है। यह उच्चित्रण चट्टान को तराशकर बनाया गया है। यह स्पष्ट नहीं है कि यह उच्चित्रण गुफा तथा अभिलेखों के कालखंड का ही है अथवा बाद की रचना है। इसी उच्चित्रण के दाहिनी ओर स्त्री (देवी) मस्तक भी उच्चित्रित है। देवी के उच्चित्रण के दायीं ओर 4'x3' के आले में एक आकृति दिखाई देती है जो पाषाण के क्षरण के कारण अस्पष्ट है। इस आकृति का संभवतः जलाभिषेक किया जाता रहा है क्योंकि आले से होकर गुहा के बाहर तक एक नाली जल की निकासी के लिए बाद के समय में बनाई गयी दिखाई देती है। उच्चित्रण के दाहिनी ओर कुछ ऊपर की तरफ के आयताकार आले में कतिपय ब्राह्मी अक्षर परिलक्षित होते हैं किन्तु चूने के लेपन और क्षरण के कारण उन्हें पढ़ पाना संभव नहीं हो पाता। इसी दिशा में आगे बढ़ने पर गुफा में पृथक से रखे गए शिवलिंग, आमलक युक्त लघु शिखर एवं हनुमान की लघुमूर्ति प्राप्त होते हैं। ईंटों की आधुनिक दीवार के पास के कोने में एक पृथक से रखा हुआ पाषाण खण्ड है जिस पर एक पुरुष आकृति उत्कीर्णित है। इस आकृति का बायाँ हाथ धड़ के समानांतर लटका हुआ है जबकि दायों हाथ दायें कान को स्पर्श करता हुआ लक्षित है।<sup>15</sup>

गर्भगृह के बायीं ओर 6'5''x 2' के आले में 5' 3'' की एक पुरुषाकृति उच्चित्रित है। पुरुषाकृति के चेहरे पर मंद स्मित हास है और दाढ़ी गले के हार के मध्य लटकती प्रदर्शित है। लंगोट अथवा धोती का पटका भी उकेरकर बनाया गया है। शीश पर शिरोभूषा भी परिलक्षित होती है। मूर्ति आजानुबाहु नहीं है, इसलिए इसे किसी लौकिक पुरुष का अंकन ही मानना चाहिए। हाथ के पंजे संभवतः टूट गए हैं, केवल भुजा-भाग ही अवशिष्ट है। मूर्ति के पैरों में अँगुलियों का अंकन नहीं है अतः पैरों में उपानह (जूते) धारण करने की संभावना भी प्रतीत होती है।



चित्र क्र. 18

**गुफा क्र. 6 (अ) :** ऊपर वर्णित पुरुष मूर्ति के बायीं ओर की दीवार (गुहा का दक्षिण-पूर्वी कोना) में उत्तराभिमुख एक छोटी सी गुफा है जो विहारगृह का स्वरूप उपस्थित करती है। गुहा के प्रवेश द्वार के नीचे एक सीढ़ी बनी है जिससे होकर गुहा की देहरी लांघकर गुहा में प्रवेश किया जा सकता है। गुहा का द्वार 2 मीटर ऊँचा और 90 से.मी. चौड़ा है जिसमें लकड़ी का दरवाजा रहा होगा।



चित्र क्र. 19

गुहा के अन्दर पूर्वी और पश्चिमी ओर एक-एक पाषाण पर्यंक निर्मित हैं जो साधुओं/श्रमणों (?)<sup>16</sup> द्वारा शयन हेतु प्रयुक्त किए जाते होंगे।

**गुफा क्र. 7 :** गुहा क्रमांक 6 से 100 मीटर उत्तर की ओर नदी तल से 3 मीटर 40 सेंटीमीटर की ऊंचाई पर इस गुफा का निर्माण हुआ है। ब्रिटिशकाल में इस गुफा को सीतामढ़ी गुफा कहा जाता था जो डॉ. हीरानंद शास्त्री और प्रो. डी. आर. भंडारकर के लेखों से प्रकट होता है। गुफा नदी तल से लगी हुई है। नदी तल से गुफाओं तक पहुंचने के लिए 7 सीढ़ियां बनी हुई हैं। बहुत संभव है कि प्राचीनकाल में इन गुफाओं के निवासी केवई नदी से जल लेने के लिए और स्नानादि के लिए इस सीढ़ियों का प्रयोग करते रहे होंगे। सम्प्रति गहरा पानी होने के कारण नदी की ओर से इस गुफा में गुफा क्रमांक 6 से सीधे पहुंचना सुगम नहीं है। गुफा क्रमांक 5 व 4 को पार करते हुए, गुफा क्रमांक 3 की सीढ़ियों से पहाड़ पर चढ़ने के पश्चात उत्तर दिशा की ओर चलकर गुफा क्रमांक 7 तक जाने की सीढ़ियों तक पहुँचा जा सकता है। गुफाओं की छत से नीचे की ओर 20 सीढ़ियां निर्मित हैं जिनसे उतरकर गुफा क्रमांक 7 में पहुँचा जा सकता है।



चित्र क्र. 20

उत्तर से दक्षिण की ओर इस गुफा की लंबाई 11 मीटर है। उत्तर की ओर गुफा की चौड़ाई 2 मीटर 90 सेंटीमीटर जबकि दक्षिण की ओर इसकी चौड़ाई 7 मीटर 80 सेंटीमीटर है। तल से छत तक की ऊँचाई 2 मीटर 40 सेंटीमीटर है। गुफा का उत्तरी भाग क्षतिग्रस्त हो चुका है ईंटों की दीवार बनाकर सुरक्षित किया गया है। यह गुफा की गुफाओं की तरह चट्टान को काटकर बनाई गई है। गुफा में बने स्तंभ भी शैलोत्कीर्णन का ही उत्तम उदाहरण हैं। इस गुफा में पांच स्तंभ निर्मित हैं। गुफा की ओर पूर्वी दिशा में देखने पर दर्शक को अपने बायीं ओर 1 सतम्भ और सम्मुख ओर 4 स्तम्भ दिखाई देते हैं। गुफा क्रमांक 6 की भांति ये स्तंभ भी आधार पर चतुष्कोणीय हैं। गुफा क्रमांक 6 में स्तंभों का ऊपरी भाग नष्ट हो जाने पर बाद के समय में उन्हें गोलाकार स्वरूप दिया गया है जबकि इस गुफा में

स्तंभों का प्राचीन स्वरूप ही सुरक्षित है। इस गुफा के स्तंभ आधार पर चतुष्कोणीय तथा उसके ऊपर अष्टकोणीय है। आधार से चतुष्कोणीय भाग क्यों ऊँचाई 1 मीटर 15 सेंटीमीटर और चतुष्कोणीय भाग से अष्टकोणीय भाग की छत तक की ऊँचाई 1 मीटर 10 सेंटीमीटर है। इस प्रकार संपूर्ण स्तंभ 2 मीटर 25 सेंटीमीटर ऊँचा है। एक नंबर से दूसरे स्तंभ के बीच की दूरी 2 मीटर 30 सेंटीमीटर है जबकि स्तंभ की परिधि 90 सेंटीमीटर की है। गुफा की भीतरी दीवार से लगी हुई उत्तर से दक्षिण की ओर 60 सेंटीमीटर ऊँची सपाट चौकी बनी हुई है जो 1 बैठने अथवा सामान रखने के काम में आती रही होगी।

**शिलालेख :** यह गुफा अत्यंत स्पष्ट अक्षरों में लिखें ब्राह्मी लेख की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। गुफा की पूर्वी दीवार पर एक ही पंक्ति में 3 मीटर 70 सेंटीमीटर लंबा प्रथम शताब्दी ईस्वी की ब्राह्मी लिपि में लिखा शिलालेख उत्कीर्ण है। ब्राह्मी अक्षर 2.5" के हैं जबकि संयुक्त अक्षर एवं मात्रा युक्त अक्षर 5" तक के हैं। लेख का पाठ निम्नानुसार है



चित्र क्र. 21-22

#### पाठ

1. सि वा नं दि प न ति के न सि व द त न ति के न सि व मि त पु ते न व छे न म (मो) ग लि पु ते न मु ल दे वे न अ (आ)( आं) म बि (बे) न सिला ग ह का रि ता

(सिवानंदि पनतिकेनसिवदतनतिकेनसिवमितपुतेनवछेनमोगलिपुतेनमुलदेवेन अ(आ)(आम)मबि(बे)न सिलागुहा कारिता)

गुहाभित्ति पर अंकित इस लेख से ज्ञात होता है कि शिवानंदी के परनाती सिवदत्त के नाती शिवमित के पुत्र वत्सगोत्र के मोगली (मौद्गली) के पुत्र मूलदेव के द्वारा (आम्र वन में या आराम के उद्देश्य से या अम्बा के द्वारा) शिलागृह का निर्माण कराया।

**तृतीय शताब्दी का ब्राह्मी लेख और शंख लिपि के लेख :** गुफा की दीवार पर अंकित लंबे ब्राह्मी लेख के अतिरिक्त भी इस गुफा में ब्राह्मी तथा शंख लिपि में लिखे लेख अंकित हैं। सम्मुख स्तंभ पंक्ति के दर्शक के दाहिनी ओर से द्वितीय स्तंभ पर तृतीय शताब्दी ईस्वी की ब्राह्मी लिपि में एक लघु लेख लिखित है जिसका पाठ निम्नानुसार है:

#### पाठ

1. यु व ति मा ले (युवति माले)<sup>17</sup>

यह एक संक्षिप्त लेख है। जिसका कोई निश्चित अर्थ प्रकट नहीं होता। हो सकता है यह स्थान को अभिव्यक्त करता हो। भंडारकर ने यह संभावना प्रकट की थी कि माले का अर्थ पर्वत होता है और यह पर्वत युवती पर्वत के नाम से कोई आमोद-प्रमोद के स्थल के रूप में प्रसिद्ध रहा हो। इसी गुफा की बाह्यभित्ति पर लिखे कतिपय अक्षरों को हीरानंद शास्त्री ने 'उदयतारा' पढ़ा था जिसे भंडारकर किसी स्त्री का नाम बताते हुए इस स्थल को नृत्य

गान अथवा आमोद-प्रमोद से जोड़ते हैं। इस लेख के ऊपर दो शंखों की आकृति के बीच कोई गोलाकार आकृति भी उकेरी गयी है।

इसी अभिलेख के नीचे स्तंभ पर शंख लिपि के अक्षर उत्कीर्णित है। शंख लिपि भारत के बहुत से प्राचीन स्थलों पर ब्राह्मी अभिलेखों के साथ प्राप्त होती है। राजगीर, एरण, उदयगिरि तथा देवगढ़ गुप्तकालीन अभिलेखों के साथ शंख लिपि के अभिलेख अंकित है। शंख लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है क्योंकि अक्षरों को लिखने के पश्चात इस लिपि में घुमावदार रेखाओं से उसे अलंकरण का स्वरूप दे दिया जाता है। तब भी इन अलंकरणों में छुपे ब्राह्मी अक्षरों को पढ़ने की चेष्टा पुरा लिपिविद् सदैव से करते रहे हैं। शिवलहरा कि इस गुफा क्रमांक 7 में स्तंभ के ऊपर तृतीय शताब्दी ईस्वी का लेख है और उसी के नीचे शंख लिपि में कुछ लिखा है। साथ ही एक उर्ध्वमुखी तीर भी शंख लिपि से ऊपरी ब्राह्मी लिपि को इंगित करता हुआ अंकित है। यह अत्यंत ही रोचक अंकन है।



चित्र क्र. 23

हीरानंद शास्त्री ने भी अपने लेख में इस की ओर संकेत किया है और संभावना प्रकट की है कि इस स्तंभ के लेख शंख लिपि के उद्घाटन में सहयोगी हो सकते हैं। सम्मुखवर्ती तृतीय स्तम्भ पर भी शंख लिपि में लेख अंकित है। साथ ही गुफा की दीवार पर भी शंख लिपि के अक्षर देखे जा सकते हैं जो चूने के लेपन से विकृत हो गए हैं। गुफा की दीवार पर ब्राह्मी लिपि के कुछ अक्षर भी चूने के लेपन से विकृत हुए हैं। ये संभवतः वही पंक्ति है जिसे इस गुफा के प्रति चित्रण से प्रो. भंडारकर ने 'सिवानंदिपनतिकेनसिवदत्त' पढ़ा है।<sup>18</sup> कुछ अन्य लेख भी चूने के लेपन के कारण अस्पष्ट हो गए हैं। शंख लिपि के साथ यहां एक अन्य रोचक अंकन भी है। गुफा से नदी तल की ओर की दूसरी सीढ़ी अत्यंत सुंदर शंख पंक्ति से अलंकृत है। शंख पंक्ति का यह अलंकरण प्रकट करता है कि अपने वैभवशाली दिनों में यह गुहा समूह अत्यंत सुंदर एवं अलंकृत रहा होगा।

**गुफा क्र. 7 (अ) :** गुफा क्रमांक 7 की दक्षिणी दीवार के पार्श्ववर्ती भाग में चट्टान खोदकर एक गुहा निर्मित है। गुफा का आकार 40 x 150 x 133 से.मी. की है। गुहा तल से 25 सेंटीमीटर की ऊंचाई पर दीवारों के निचले भागमें 40 सेंटीमीटर चौड़ी सपाट चौकी बनी हुई है जो सामान रखने अथवा बैठने के काम आती रही होगी। 230 x 63 x 120 से.मी. आकार का एक अधिष्ठान भी गुफा में बना है जिसे बाद के समय में सीमेंट से पुनर्निर्मित किया गया है। इस अधिष्ठान पर लगभग 11 वीं शताब्दी का प्रतिमा खंड रखा हुआ है जिसमें मुख्य प्रतिमा के केवल पैर दिखाई देते हैं शेष प्रतिमा खंडित है। परिचर में देवी, उपासिकाएँ, चामर धारिणी, वामन, बुद्ध, विष्णु एवं अन्य देवी देवता प्रदर्शित हैं। पैनल में दशावतारों का भी अंकन रहा होगा परन्तु वर्तमान में वामन और बुद्ध ही पहचाने जा सकते हैं। गुफा के द्वार अलंकृत है। चूने के लेपन के कारण उनका वास्तविक सौन्दर्य समाप्त हो गया है। द्वार के समीप जल निकासी हेतु एक नाली कटी हुई है। यह निश्चित करना कठिन है कि यह जल निकासी व्यवस्था मूल गुफा में रही थी अथवा बाद में संयोजित की गई है।



चित्र क्र. 24

इन गुफाओं के अतिरिक्त केवई नदी के पश्चिमी तट पर भी मानव निर्मित गुफा दिखाई देती है। यह गुफा खाली है। इसमें कोई अतिरिक्त कक्ष, अलंकरण अथवा शिलालेख प्राप्त नहीं हुए हैं। इसके अतिरिक्त पश्चिमी तट पर पाषाण को तराशकर बनाई गई सीढ़ियां भी आकर्षित करती हैं।

**शिवलहरा (सिलहरा) के शिलालेखों की विषय वस्तु का विवेचन :** इस शोधपत्र में शिवलहरा या सिलहरा की शैलकृत गुफाओं के प्रलेखीकरण के साथ गुफाओं में अभिलिखित ब्राह्मी लेखों का विवेचन करने का भी प्रयास किया गया है। आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की 1927-28 की वार्षिक रिपोर्ट में अभिलेख शास्त्री डॉ. हीरानंद शास्त्री के प्रतिवेदन से ज्ञात होता है कि ये गुफाएं उस समय सिलहरा के नाम से जानी जाती थीं। सिलहरा नाम वस्तुतः शिलागृह से व्युत्पन्न है जिसका उल्लेख यहाँ उत्कीर्णित शिलालेख में शिलागृह के रूप में हुआ है। सम्प्रति इस स्थान को शिवलहरा कहा जाता है जो सिलहरा से शिव के उपासना स्थल के रूप में शिवलहरा कहलाने लगा। इन गुफाओं में अंकित शिलालेख की छाप 1907-08 के आस-पास किसी विद्यालय के शिक्षक ने प्रसिद्ध पुराविद डॉ. रायबहादुर हीरालाल को दी थी।<sup>19</sup> उन्होंने शिलालेखों के प्रति चित्रण शासकीय अभिलेख शास्त्री डॉ. हीरानंद शास्त्री को इनकी जानकारी दी। जिन्होंने सिलहरा के शिलालेखों पर एक संक्षिप्त प्रतिवेदन आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की 1927-28 की वार्षिक रिपोर्ट में प्रकाशित किया।<sup>20</sup> प्रो. डी. आर. भंडारकर ने एपिग्राफिया इंडिका के खण्ड 22 में इन लेखों को संपादित किया।<sup>21</sup> पूर्ववर्ती अध्ययन केवल शिलालेखों की विषय वस्तुतः कही सीमित रहे। पूर्व के अध्येताओं ने इन गुहाओं को देखकर इनका लेखा जोखा प्रस्तुत करने या शिलालेखों के साथ इन शिलागृहों की संरचना को सम्बद्ध करने के प्रयास नहीं किए। हीरानंद शास्त्री यहां के शिलालेखों की ब्राह्मी लिपि द्वितीय शताब्दी ईस्वी की मानते हैं जबकि भंडारकर इन्हें प्रथम शताब्दी ईस्वी में रखते हैं। अक्षरों के विन्यास को देखते हुए यह शिलालेख प्रथम शताब्दी ईस्वी के ही प्रतीत होते हैं। शिलालेखों की भाषा प्राकृत है। विवेच्य काल के सभी अभिलेख शिलालेखी प्राकृत में ही प्राप्त होते हैं जो उस समय की जनभाषा के रूप में व्यवहृत थी। सीतामढ़ी, चेरी गोदड़ी और दुर्वासा गुहा में अंकित अभिलेख के मूलदेव को हीरानंद शास्त्री ने अमात्य माना है और इसका समर्थन भंडारकर ने भी किया है। निश्चित रूप से मूलदेव एक प्रतिष्ठित राज कर्मचारी था जिसने इन गुहाओं का निर्माण कराया था। गुहाओं की भित्तियों के उच्चित्रणों की तिथि निर्धारित करना कठिन है। परन्तु हाथी पर विराजमान, छत्र धारण करनेवाले, शिरोभूषा (मुकुट/पगड़ी) युक्त और आभूषणों से अलंकृत व्यक्तियों को प्रतिष्ठित राजकीय व्यक्ति मानना ही समीचीन है। क्षेत्र में रूप-कला के समुचित विकास न होने के कारण उच्चित्र रुढ़ शैली में दिखाई देते हैं और इन

पर लोककला की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। विदिशा और ग्वालियर क्षेत्र में मिलने वाली यक्ष मूर्तियों के समान ही यहाँ के उच्चित्रणों का डील-डौल दिखाई देता है। अभिलेखों से स्वामिदत्त के राज्य में सिवमित और मौद्गली के पुत्र वत्स गोत्र के मूलदेव द्वारा गुफाओं के निर्माण की जानकारी होती है। प्रथम शताब्दी ईस्वी का यह स्वामिदत्त कौन था, इसका परिज्ञान किसी अन्य अभिलेख या मुद्रा शास्त्रीय साक्ष्य से अब तक नहीं हुआ है। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में अवश्य कोटूर के स्वामिदत्त का नाम मिलता है। परन्तु वह चौथी शताब्दी का शासक है और इस स्वामिदत्त से भिन्न सिद्ध होता है। मूलदेव की वंशावली इन अभिलेखों में दी गयी है और उसे शिवानंदी का परनाती और सिवदत्त का नाती कहा गया है। यह उल्लेखनीय है कि इन अभिलेखों में प्रपौत्र और पौत्र शब्द प्रयुक्त नहीं हैं। बहुत संभव है कि मातृसत्तात्मक परम्परा में नानापक्ष का उल्लेख इन अभिलेखों में प्रमुखता से हुआ। अपनी माता मोगली (मौद्गली) का नामोल्लेख भी उसके अभिलेखों में है। कई क्षेत्रों में नाती और पोते (पौत्र) शब्दप्रायः पर्यायवाची के तरह प्रयुक्त होते हैं। अतः यहाँ भी प्रपौत्र और पौत्र के अर्थ का भी निषेध नहीं किया जा सकता है। सीतामढी गुफा के अभिलेख के अंत में या तो आप्रवन का उल्लेख है या आराम वन का। एक संभावित पाठ अमबेन भी है जो मूलदेव की पत्नी का उल्लेख हो सकता है।

यह गुफाएँ अपने उत्कीर्णन के समय किसी धर्म विशेष से सम्बंधित थी या नहीं, यह अभिलेखों की विषयवस्तु और प्राप्त उत्कीर्णनों से स्पष्ट नहीं हो पाता है। डॉ. भंडारकर केवल अभिलेखों के विवरण पर ही अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं और इन गुहाओं को मूलदेव द्वारा पर्वत पर एक आमोद-प्रमोद के स्थल के रूप में बनवाया गया मानते हैं। प्रतिचित्रण की अस्पष्टता के कारण उन्होंने 'आरामपवते' पढ़ा है और उसे मूलदेव के द्वारा आराम हेतु बनवाई गयी गुफाएँ बताते हैं। जबकि इन पंक्तियों के लेखक अभिलेख की उन पंक्तियों का पाठ 'पुराबुधवने' करते हैं। अपने मत के समर्थन में डॉ. भंडारकर बाद के अभिलेखों में अंकित युवतिमाले और उदयतारा का सन्दर्भ देते हुए इसे किसी नृत्य-गान के स्थल या युवतियों से मिलने के पर्वतीय स्थल के रूप में वर्णित करते हैं। परन्तु गुफाओं की संरचना और उनमें स्थित कक्षों की सामग्री की ओर ध्यान डॉ. शास्त्री और प्रो. भंडारकर दोनों ने ही नहीं दिया। उनका केन्द्रण शिलालेखों के पाठ पर ही रहा। इन गुफाओं की संरचना के प्रलेखीकरण का कार्य भी पूर्व में नहीं हुआ। गुफाओं की संरचना और परितः की सामग्री इन्हें किसी आमोद-प्रमोद का स्थल सिद्ध नहीं करती। गुफाओं में प्राप्त होने वाले पाषाण पर्यंक, आले और गवाक्ष इनके धार्मिक प्रयोजन, साधना और पूजा परम्परा की ओर इंगित करते हैं। गुफाओं में बने पाषाण पर्यंक बौद्ध विहार गुफाओं में प्रायः प्राप्त होते हैं। किन्तु शिवलहरा की गुफाओं से इन पाषाण पर्यकों के अतिरिक्त कोई अन्य प्रमाण नहीं मिले हैं जो इन गुफाओं को बौद्ध धर्म से सम्बंधित सिद्ध करें। गुफा क्र. 3 में चैत्य गवाक्ष अलंकरण युक्त एक बड़ा आला अवश्य देखने में आता है। परन्तु स्तूप, बुद्ध-प्रतीक चिह्न या अन्य बौद्ध प्रतीक यहाँ से अनुपलब्ध है। इसलिए निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि इन गुफाओं में रहनेवाले श्रमण थे अथवा किसी अन्य सम्प्रदाय के साधक। दुर्वासा गुहा में पुरा बुधवन में किसी रोपण का उल्लेख है जो अपने आप में प्रकट करता है कि प्रारम्भ में यहाँ बौद्ध प्रभाव था। बाद में शुंगकाल में हुए ब्राह्मण धर्म के उत्कर्षकाल में क्षेत्र के बौद्ध प्रभाव को समाप्त किया गया हो। शिलालेखों में मूलदेव को वत्स गौत्रीय कहा गया है जिससे वह ब्राह्मण सिद्ध होता है। बहुत संभव है कि उसने क्षेत्र में पूर्व प्रचलित बौद्ध धर्म के प्रभाव को समाप्त कर ब्राह्मण धर्म को प्रतिष्ठापित करने का कार्य किया हो। गुफा में उपलब्ध व्यक्तियों के नाम शिवानंदी, शिवदत्त, शिवमित और मूलदेव मिलते हैं जो शैवधर्म के प्रभाव की ओर इंगित करते हैं। गुफाओं के बाहर मार्ग में बनी शिवलिंगों की पंक्ति भी क्षेत्र में शैवधर्म के प्रचलन को प्रमाणित करती है।

**पुरातात्विक उत्खनन :** गुफाओं से दक्षिण दिशा में लगभग 1 किलोमीटर की दूरी पर केवई नदी के तट पर ही सर्वेक्षण के दौरान पुरावशेषों से परिपूर्ण सात बड़े टीले देखे गए थे। सतही सर्वेक्षण में तल से प्राप्त कुषाणकालीन आकारवाली ईटे तथा मृन्मय खोखले शंक्वाकार अलंकरण प्राप्त हुए। साथ ही मृद्भाण्डों के टुकड़े सभी टीलों पर बिखरे पड़े पाए गए। इन टीलों पर सिलबट्टे, कोड़ियाँ, सीप एवं राख इत्यादि की प्राप्ति भी हुई। सर्वेक्षण के उपरान्त सामग्रियों की लब्धि से उत्साहित होकर इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक के प्राचीन

भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग ने भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण से विधिवत अनुमति लेकर वाकणकर शोध संस्थान, भोपाल और राज्य पुरातत्त्व विभाग, भोपाल, मध्य प्रदेश के साथ मिलकर शिवलहरा की गुफाओं के निकट गम्भीर वाटोला नामक स्थल पर पुरातात्विक उत्खनन कार्य सत्र 2014-15 में किया। गम्भीखा टोला अनूपपुर जिले की अनूपपुर तहसील में अमरकंटक से लगभग 60 किलोमीटर की दूरी पर सोननदी की सहायक नदी कैवई नदी के किनारे ग्राम दारसागर में स्थित एक स्थल है। इस उत्खनन में चतुर्थ शती ईसा पूर्व से लेकर गुप्तकाल तक के पुरावशेष बड़ी मात्रा में प्राप्त हुए हैं। उत्खनन में आरंभिक ऐतिहासिक युगीन स्तरों से मण्डलकूप, ताम्र वस्तुएं, हाथी दांत, शंख, पत्थर, पकी मिट्टी और अस्थि पर निर्मित दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुएं, मृण्मूर्तियाँ, आहत सिक्के, पकी मिट्टी के बने बच्चों के खिलौने, मनके, शंख की चूड़ियाँ, ताम्बे की चूड़ियाँ, अंजन शलाकाएं, मनोरंजन की सामग्री, शंतरज के मोहरे, चौपड़ के पांसे, खिलौना गाड़ियों के पहिये, पत्थर के उपकरण, पकी मिट्टी की छोटी गोलियाँ, आभूषण और अस्त्र-शस्त्र प्राप्त हुए हैं जो तत्कालीन मानव जीवन के विविध पक्षों पर व्यापक प्रकाश डालते हैं। इस काल के निवासियों ने विविध मानव एवं पशु-पक्षियों की मृण्मूर्तियों का निर्माण किया जिनसे इस काल की कला की जानकारी भी प्राप्त होती है। यहाँ से समृद्ध व विकसित मृद्भाण्ड उद्योग प्राप्त हुआ है। मृद्भांडों पर विभिन्न आकृतियों के चित्रण अभिप्राय संजोए हुए प्राप्त हुए हैं।<sup>22</sup>

शिवलहरा की गुफाओं और उनमें पाए जानेवाले अभिलेखों के अध्ययन से इन गुफाओं का ऐतिहासिक और पुरातात्विक महत्व उद्घाटित होता है। शिवलहरा की गुफाएँ तथा कैवई नदी का तटवर्ती प्रदेश अत्यंत मनोहारी दृश्य उपस्थित करता है। महाशिवरात्रि के अवसर पर तो यहाँ विशाल मेला लगता है और हजारों की संख्या में श्रद्धालु यहां आते हैं। इसके अलावा भी बड़ी संख्या में पर्यटक तथा आसपास के निवासी आमोद-प्रमोद के लिए यहां आते रहते हैं। राष्ट्रीय स्मारक होने के बाद भी सुरक्षा की समुचित व्यवस्था ना होने के कारण यहां आने वाले लोगों द्वारा गुफाओं के भीतर तथा चट्टान अपने नाम और विभिन्न आकृतियां खोदकर इस अत्यंत महत्वपूर्ण प्राचीन स्थल को विरूपित किया जा रहा है। यह गुफाएँ मध्यप्रदेश ही नहीं अपितु संपूर्ण देश के गुहा वास्तु के विकास को समझने की दृष्टि से विशिष्ट स्थान रखती हैं। इनके बारे में अभी विद्वत जगत को भी अधिक जानकारी नहीं है। पर्यटन के नक्शे पर भी इन गुफाओं का उल्लेख अभी नहीं हो पाया है। असामाजिक तत्वों से और राष्ट्रीय धरोहर का महत्व न समझकर उसे विरूपित करने और नष्ट करने वाले तत्वों से इस विरासत की रक्षा करना आज समय की आवश्यकता है। पुरातात्विक धरोहरों के प्रति जनसामान्य में जागरूकता उत्पन्न कर तथा उनके महत्व को लोगों तक पहुंचाने से इनका संरक्षण संभव है। गुफाओं की भित्तियों पर ईस्वी सन् की आरंभिक शताब्दियों के शिलालेख लिखे होने के कारण यह गुफाएँ और भी महत्वपूर्ण हो गयी हैं। भारतीय पुरालिपि के विकास, प्राकृत भाषा के विकास और अभिलेख शास्त्र के मूलभूत तत्वों को समझने के लिए अनुसंधित्सुओं के लिए तो इन गुफाओं की महत्ता निर्विवाद है। शंख लिपि की पहेली को समझने का सूत्र इस गुहा समूह की एक गुफा के स्तंभ पर अंकित है। इसमें भी इस गुहा समूह का ऐतिहासिक और पुरातात्विक महत्व बहुत बढ़ जाता है। भारतीय इतिहास के अज्ञात पक्षों और इसकी टूटी हुई कड़ियों को जोड़ने में इन गुफाओं और अभिलेखों पर भविष्य में होने वाले शोध और अधिक प्रकाश डाल सकेंगे।

**आभार :** भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के प्रति हार्दिक आभार जिसने 2013-14 और 2014-15 में प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्त्व विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक के विभागाध्यक्ष प्रो. आलोक श्रोत्रिय को संपूर्ण अनूपपुर जिले के पुरातात्विक सर्वेक्षण तथा सत्र 2014-15 में गम्भीखा टोला के उत्खनन की अनुमति प्रदान की। लेखकगण क्षेत्र के पुरातात्विक महत्व के उद्घाटन के चरण में योगदान देने के लिए इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर शोध संस्थान, भोपाल तथा राज्य पुरातत्त्व विभाग, भोपाल के भी आभारी हैं। दारसागर तथा गम्भीखा टोला के निवासियों के प्रति भी लेखकगण धन्यवाद ज्ञापित करते हैं जिनका सहयोग सर्वेक्षण और बाद में उत्खनन कार्य के दौरान प्राप्त हुआ। लेखकगण

विशेष रूप से श्री सुरेंद्र कुमार के प्रति हृदय से आभारी हैं जिन्होंने शिवलहरा की गुफाओं और दारसागर के प्राचीन स्थलों की जानकारी प्रदान की।

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,  
इंदिरागांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,  
इंदिरागांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)

इतिहास विभाग शासकीय महाविद्यालय,  
राजनगर, जिला अनूपपुर (म.प्र.)

#### संदर्भ -

1. श्रोत्रिय, आलोक और मोहनलाल चट्टार (2017), 'अमरकंटक क्षेत्र के सर्वेक्षण व उत्खनन से प्राप्त पुरावशेषों का विश्लेषण', मध्यभारत की कला, संस्कृति एवं पुरातत्व (संपा. नागेश दुबे और मोहनलाल चट्टार), एस.एस.डी.एन. पब्लिशर्स, नईदिल्ली, पृ. 187-189
2. मालपानी, जे. एन. एवं नरेश कुमार पाठक (2009), अनूपपुर जिले का पुरातत्व, संचालनालय, पुरातत्व अभिलेखागार एवं संग्रहालय, मध्य प्रदेश, भोपाल, पृ. 39
3. <http://asijabalpur.gov.in/monuments-district/anuppur-3/index.html> पुनर्प्राप्ति 01.11.2022
4. द गजट ऑफ इंडिया, भाग 2 अनुभाग 3, 6 दिसंबर 1952, पृ. 1763
5. शर्मा, राजकुमार (संस्करण 2010), मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ. 236
6. वही
7. आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की एनुअल रिपोर्ट, 1927-28, पृ. 136-138
8. एपीग्राफिया इंडिका, खण्ड 22, पृ. 30-37
9. गोंड, हीरासिंह, 'शिवलहरा ; एक ऐतिहासिक धरोहर', भारतीय कला संस्कृति के नवीन आयाम (संपा. आलोक श्रोत्रिय और मोहनलाल चट्टार), एस. के बुक एजेंसी, नईदिल्ली, 2018, पृ. 205
10. यह पंक्ति घिसाव के कारण अस्पष्ट है। परन्तु गुहा समूह में उपलब्ध अन्य अभिलेखों की विषय-वस्तु के आधार पर यही पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है।
11. एपीग्राफिया इंडिका, खण्ड 22 पृ. 36
12. गोंड, हीरासिंह, पूर्वोक्त, पृ. 207
13. आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की एनुअल रिपोर्ट, 1927-28, पृ. 137-138 ; एपीग्राफिया इंडिका, खण्ड 22, पृ. 30-37
14. स्तंभों पर हनुमान का उच्चित्रण गुहा के उत्खनन काल से सम्बंधित न होकर बाद के हैं।
15. सम्प्रति इस मूर्ति को काला वस्त्र ओढ़ाकर शनि मूर्ति का रूप दे दिया गया है जिस पर लोगों द्वारा तेल चढ़ाया जाता है।
16. इस प्रकार के पाषाण पर्यंक बौद्ध विहार गुफाओं में प्रायः प्राप्त होते हैं।
17. हीरानंद शास्त्री इसे युवा निर्मलः पढ़ते हैं जबकि भंडारकर ने इसे युवतिमाले ही पढ़ा है।
18. एपीग्राफिया इंडिका, खण्ड 22, पृ. 36
19. आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की एनुअल रिपोर्ट, 1927-28, पृ. 137
20. वही, पृ. 137.138
21. एपीग्राफिया इंडिका, खण्ड 22, पृ. 30-38
22. श्रोत्रिय, आलोक और मोहनलाल चट्टार, पूर्वोक्त, पृ. 189-191

## ‘चाँद’ पत्रिका : स्त्री-मुक्ति के परिधान में राष्ट्र-मुक्ति का सारथी

रितु शर्मा

बीसवीं सदी, भारत में परतंत्रता की श्रृंखला से मुक्ति की कामना और संघर्ष का युग है। चहुँओर राष्ट्र को गुलामी की बेड़ियों से आजाद करने हेतु राजनेताओं, समाजसुधारकों, धर्मावलम्बियों, साहित्यकारों और सामान्य जनता द्वारा अथक प्रयास किये जा रहे थे। मुक्ति की कामना के प्रसार हेतु, नेतृत्वकर्ताओं द्वारा सामान्य जनता से संवाद स्थापित करने के सबसे उपयुक्त माध्यम के रूप में पत्र-पत्रिकाएं सामने आईं। नवजागरण की चेतना के प्रसार के समय से ही पत्रकारिता की उपयोगिता जगजाहिर हो चुकी थी, अतः बीसवीं सदी में मुक्ति की चेतना के प्रसार के लिए निर्विवादित रूप में पत्रकारिता को साधन के रूप में स्वीकारा गया। मुक्ति की इस राह में मात्र औपनिवेशिक परतंत्रता से मुक्ति का ही स्वर नहीं था, अपितु हमारे पुरखों ने ‘मुक्ति’ की अवधारणा को समाज, धर्म, संस्कृति और राष्ट्रमुक्ति के व्यापक फलक पर प्रतिष्ठित किया। “इस समय भारत की आत्मा जाग पड़ी है। लोग स्वतंत्रता के लिए पागल हो रहे हैं। उन्हें बंधन असह्य प्रतीत होने लगा है। परंतु हममें से अनेक की दृष्टि केवल राजनैतिक बंधन पर ही जाती है। उनका मत यह है कि राजनैतिक बंधन ही हमारी सारी कुरीतियों का मूल है और ज्यों ही हम उस बंधन से मुक्त हुए कि देश का उत्थान हुआ। यह उनकी भूल है। और इस भूल का कारण यह है कि स्वतंत्रता का उनका विचार मौलिक नहीं है, पश्चिम से लिया हुआ है।... अतः हमें समाज, धर्म और राजनीति को साथ-साथ लेकर चलना है।”<sup>1</sup>

मुक्ति की बहुआयामी सरिता में स्त्रीमुक्ति की धारा प्रवल वेग से प्रवाहित हो रही थी। स्त्रीमुक्ति के नारे की लोकप्रियता निरर्थक नहीं थी। आधे देश की चेतना अर्थात् स्त्रियों की चेतना जाग्रत किए बिना देश को आजाद कराने का स्वप्न केवल ‘फंतासी’ बनकर ही रह जाता। अतः राष्ट्र उद्धारकों ने राष्ट्रमुक्ति और स्त्रीमुक्ति के संघर्ष को अंतरसम्बद्ध करके मुक्ति के व्यापक लक्ष्य की ओर कदम बढ़ाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न स्त्री-केन्द्रित पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हुआ। नवम्बर, 1922 ई. में प्रकाशित ‘चाँद’ पत्रिका इसी क्रम में अस्तित्व में आई।

प्रयाग से प्रकाशित ‘चाँद’ पत्रिका के स्त्रीमुक्ति- संघर्ष में योगदान से अधिकांश सामाजिक भलीभाँति परिचित हैं। यद्यपि स्त्रीमुक्ति की मशाल लेकर समाज को उन्नति की राह दिखाने वाली पत्रिका ‘चाँद’ के राष्ट्रमुक्ति के लिए किए गए प्रयासों से हिन्दी जनमानस उतना परिचित नहीं है, तथापि ‘फाँसी अंक’ की लोकप्रियता ने ‘चाँद’ के इस आयाम पर विचार-विमर्श के लिए सहृदयों को विवश किया है। राष्ट्रीय आंदोलन के बढ़ते प्रभाव के कारण तत्कालीन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत विशेषांक आये, परन्तु ‘फाँसी अंक’ का प्रभाव सर्वाधिक रहा।

‘चाँद’ का ‘फाँसी अंक’ नवंबर, 1928 को आचार्य चतुरसेन शास्त्री के संपादन में निकला। इसकी चर्चा किए बिना चाँद के राष्ट्रीय स्वतंत्रता में दिए गए योगदान को चिन्हित नहीं किया जा सकता। इस अंक में राष्ट्र की

स्वाधीनता के लिए प्रयासरत क्रांतिकारियों की रचनाओं को छद्म नामों से प्रकाशित किया गया। इसमें विविध विधाओं जैसे- नाटक, कविता, संस्मरण, आलेख आदि वीरों को समर्पित थे। 'चाँद' के इस अंक में आज़ादी के लिए प्राणों की आहुति देने वाले भारत माँ के वीर सपूतों को स्मरण करते हुए, अंग्रेजों द्वारा दी गयी फाँसी की सज़ा को अमानवीय और अनुचित कृत्य ठहराया गया है। अंग्रेजी शासन द्वारा प्राणदंड जैसी अमानुषिक दंड प्रक्रिया का प्रयोग, लोगों में खौफ पैदा कर विद्रोह की चेतना को बाँधने के लिए था, परंतु 'फाँसीअंक' ने देश के लिए प्राणाहुति को सर्वोच्च बलिदान की तरह वर्णित किया। इस अंक में 1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में ब्रिटिश सरकार की क्रूरता तले कुचल दिये गए निर्दोष लोगों के संस्मरणों को जगह दी गयी। भारत की स्वाधीनता के लिए संघर्षरत योद्धाओं ने शहीद हुए क्रांतिकारियों का परिचय उपलब्ध करवाया, इन्हें छद्म नामों से 'चाँद' में छापा गया। भगतसिंह की रचनाएं 'बलवंत' जैसे छद्म नाम से 'फाँसी अंक' में प्रकाशित हुई। इस अंक में सिर्फ भारत में स्वाधीनता के लिए चल रहे विद्रोहों और 1857 ई. की क्रांति ही नहीं, बल्कि विभिन्न देशों के क्रांतिकारियों की कथाओं और उनका जीवन विवरण देकर भारतीयों को क्रांति की मशाल जलाने के लिए प्रेरित किया गया। साथ ही देश के लिए शहीद हुए वीरों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की गई और क्रांति के बीज लोगों के बीच बिखरने का प्रयत्न किया गया। इस संदर्भ में नरेशचंद्र चतुर्वेदी का कथन उल्लेखनीय है, "यों तो 'चाँद' अपनी विचारोत्तेजक शैली एवं नए भावबोध के कारण सभी से अलग विशिष्ट प्रकार का मासिक पत्र था। देश की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक सभी प्रकार की सामग्री को इसमें प्रकाशित किया जाता था। अंग्रेजी राज के विरुद्ध भी उसका दृष्टिकोण बहुत साफ था और मैं समझता हूँ 'फाँसीअंक' उसी की चरम परिणति था। 'चाँद' का 'फाँसीअंक' जैसे प्रसिद्ध हुआ था उसी प्रकार 'चाँद' का 'मारवाड़ी अंक' भी बड़ा प्रसिद्ध हुआ था, परंतु तब अपने ही भाइयों के एक वर्ग और जाति के विरुद्ध सामग्री होने के कारण उसको वह स्थान नहीं मिल पाया जो 'फाँसी' अंक को मिला।"<sup>2</sup>

'फाँसी अंक' के इतर, 'चाँद' अपने प्रकाशन अर्थात् 1922 ई. से ही राष्ट्र के लिए समर्पित रहा है। बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में चल रहे स्वाधीनता के महायज्ञ में देश के अनगिनत लोगों ने अपने-अपने तरीके से आहुति दी। इसमें विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ भी सहभागी रही हैं। 'चाँद' की विशेषता इस तथ्य में निहित है कि इसने देश की आधी आबादी अर्थात् स्त्रियों के अंतर में स्थित ऊर्जा को संगठित और संवर्धितकर, उन्हें राष्ट्रमुक्ति के संघर्ष का साथी बनाया। 1920 ई. के असहयोग आंदोलन और लगातार धार पकड़ती बेड़ियों से मुक्ति की आकांक्षा को लक्ष्य कर 'चाँद' ने अपने जन्म के साथ ही स्त्रियों के बहाने से, राष्ट्र के प्रति दायित्व के निर्वहन का बीड़ा उठाया।

'चाँद' के पहले अंक यानि नवंबर, 1922 ई. के अंक में मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशित चित्र पर गौर करने पर ही 'चाँद' की राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्धता स्पष्ट हो जाती है। चित्र में भारत के नक्शे में पूर्व की ओर विराजमान 'भारतमाता' चाँद की ओर इशारा कर रही हैं। प्रतीकार्थ स्पष्ट है कि राष्ट्रोन्नति के लिए 'चाँद' पत्रिका स्त्रियों को रौशनी देगी। संपादक रामकृष्ण मुकुंद लघाटेबी. ए. पत्रिका का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, हमारा उद्देश्य 'न्याय मतका प्रसार' है। साथ ही वे पत्रिका के प्रकाशन की शुरुआत में आई अड़चनों के विषय में भी पाठकों से चर्चा करते हैं। वे कहते हैं कि शासन को पत्रिका के राजनीतिक विषयों से दूर रहने का आश्वासन देने के बावजूद उन्हें पत्रिका के प्रकाशन के लिए जमानत की मोटी रकम जमा करनी पड़ी। जाहिर है कि भारत में स्वतंत्रता आंदोलन के विस्तार से भयभीत ब्रिटिश सरकार प्रेस कानूनों की आड़ में विद्रोही स्वरो को दबाना चाहती थी। अतः 'चाँद' ने रणनीतिक तरीके से राजनीतिक विषयों को, सामाजिक विषयों की आड़ में जनता तक पहुँचाया। इसके लिए 'चाँद' ने देश की आधी आबादी अर्थात् स्त्रियों में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का बीड़ा उठाया। हालांकि इसका मतलब यह नहीं कि 'चाँद' ने स्त्रियों की मुक्ति को नजरअंदाज कर राष्ट्र-मुक्ति की राह चुनी, बल्कि उसने स्त्री-मुक्ति को राष्ट्र-मुक्ति के लिए अनिवार्य मानकर स्त्री-मुक्ति संघर्ष के पथ पर कदम बढ़ाए।

'चाँद' ने भले ही सरकार को मात्र सामाजिक विषयों पर ही सामग्री प्रकाशित करने का आश्वासन दिया हो, मगर अप्रत्यक्ष रूप से उसने सदैव ही स्वाधीनता आंदोलन के एक सक्रिय कार्यकर्ता की भूमिका निभाई।

सामाजिक मसलों को ढाल बनाकर वह स्त्रियों में राष्ट्रीय चेतना के बीज अंकुरित करता रहा। उसका उद्देश्य हमेशा ही स्पष्ट रहा कि अंग्रेजों को देश से भगाना है, अतः प्रत्येक सामाजिक समस्या की जड़ में विदेशी सरकार को जिम्मेदार ठहराते हुए स्वराज्य की स्थापना को ही इन समस्याओं के निवारण के रूप में दर्शाया। स्त्रियों पर हो रहे अमानुषिक अत्याचारों, अन्यायपूर्ण न्याय व्यवस्था, आर्थिक बदहाली और जनता के कष्टों की मूल वजह भारतीयों के हाथों में सरकारी नियंत्रण का न होना दिखाया। भारतेन्दु युग की राजभक्ति की मजबूरी से इस युग के संपादक मुक्त रहे और निर्भयता पूर्वक अंग्रेजी राज का विरोध किया। खामियों के लिए औपनिवेशिक सत्ता को जिम्मेदार ठहराते इस युग के राजनेताओं, पत्रकारों और साहित्यकारों ने अंग्रेजी राज की सीधे मुखालफत की।

‘चाँद’ के पहले संपादकीय में ‘राष्ट्रीय जीवन में स्त्री का महत्व’ शीर्षक में इसी उद्देश्य को मद्देनजर रखते हुए विचार अभिव्यक्त किए गए। इसमें प्राचीन भारत में स्त्रियों के प्रति समाज के सम्मानित और पूजनीय स्थान का उदाहरण देते हुए, स्त्रियों की वर्तमान दुर्दशा का कारण ‘पाश्चात्य सभ्यता के नकली प्रकाश’ को बताया गया। राष्ट्र-निर्माण में स्त्रियों की विभिन्न भूमिकाओं का जिक्र करते हुए, वीर सपूतों की जननी और पालनकर्ता स्त्री के सशक्तिकरण का पुरजोर समर्थन किया। इसी अंक में ‘चाँद’ की व्यवस्थापिका और लेखिका विद्यावती सहगल ‘सामाजिक सुधारों की आवश्यकता’ आलेख में लिखती हैं कि घर-परिवार, समाज की सबसे महत्वपूर्ण इकाई है। घर-परिवार की व्यवस्थापक और संचालक स्त्री ही है, अतः समाज-सुधार तभी सफल होगा, जब स्त्रियाँ सशक्त होंगी। ‘चाँद’ ने सामाजिक समस्याओं की जड़ में भी विदेशी पराधीनता को कारण बताकर परोक्ष तौर पर स्वाधीनता आंदोलन को गति देने का प्रयास किया ताकि जनता स्वाधीन होने के फायदों से आकर्षित होकर आज़ादी के लिए संघर्ष करे। “हमारे नहीं सुधरने का मुख्य कारण यही है कि हम पराधीन हैं, हमारे शासन की बागडोर हमारे हाथ नहीं, बल्कि सात समुद्र पार एक विदेशी जाति वालों के हाथ में है। हम अपनी इच्छानुसार कानून बनाकर अपनी कुरीतियों को दूर करने में सर्वथा असमर्थ हैं।”<sup>3</sup>

‘चाँद’ के प्रसिद्ध संपादक रामरख सिंह सहगल ने बार-बार इस बात पर विद्वानों का ध्यानाकर्षण करना चाहा कि स्वाधीनता की राह में स्त्री-मुक्ति सबसे ज्यादा कारगर साबित होगी। नवंबर, 1923 के विशेषांक में सहगल ने रोमन साम्राज्य, सीरिया, फ्रनोशिया, चीन, जापान, अरब, स्पार्टा, ईरान, एथिन्स, इंग्लैंड आदि देशों में स्त्रियों की दोगम दर्जे की स्थिति और उनके प्रति प्रचलित अमानवीय और अन्यायपूर्ण रिवाजों का ब्योरा दिया है। इनमें से जिन देशों की प्रशासनिक व्यवस्था और शिक्षा का विकास हुआ और स्त्रियों की दशा में सुधार हुआ। स्त्रियों की स्थिति सुधरने से ही उन देशों की स्थिति भी सुदृढ़ हुई। वे लिखते हैं- “ज्यों-ज्यों समाज और राजकीय व्यवस्था में सुधार होता गया त्यों-त्यों स्त्रियाँ दासत्व से मुक्त होती गईं, और स्त्रियों के सुखी होने पर तथा उनकी आत्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति की ओर जब उचित ध्यान दिया गया तब वे ही माताएँ अच्छे, दृढ़, बलवान और बुद्धिमान प्रजा उत्पन्न करने में समर्थ हुईं और तभी उस देश अथवा राष्ट्र का उत्थान हो सका।”<sup>4</sup>

विदेशी शासन से मुक्ति के युग में अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए ‘चाँद’ ने मुक्ति के व्यापक अर्थ को भी स्पष्ट किया कि मात्र पराधीनता से मुक्त होकर ही राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। ‘चाँद’ के राष्ट्र प्रेम में स्थूलता की अपेक्षा परिपक्वता का समावेश मिलता है। उसने स्त्रियों के सर्वांगीण विकास और रूढ़ियों से मुक्ति को राष्ट्र मुक्ति से जोड़ा। किसी स्वप्न में गोता लगाने से पहले यथार्थ की ठोस जमीन तैयार करने की प्रेरणा दी। “इस संग्राम में स्त्रियाँ जितना अधिक पुरुषों का सहयोग करेंगी, स्वतंत्रता के राजप्रासाद का मार्ग हम उतना ही अधिक शीघ्र तय कर पावेंगे। किन्तु स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र यहीं तक परिमित नहीं है। हमारा जीवन इससे कहीं अधिक विशाल है। संभव है, कुछ वर्षों के अथक आंदोलन और निरंतर बलिदान के पश्चात देश पूर्ण तथा स्वतंत्र हो जाय, किन्तु हमारा कर्तव्य तो उसके बाद भी शेष न होगा। हमारे सामने एक नवीन राज्य है, जिस पर हमें शासन करना है। उस शासन में सुव्यवस्था, शांति और सुराज्य स्थापित करने के लिए अनेक सुदृढ़ किलों पर हमें आक्रमण करना होगा, उन्हें नष्ट करना होगा। तब कहीं विजय मिलेगी, तब कहीं हमारे दैनंदिन जीवन में सुख और संतोष की रवि-रश्मि फूट उठेगी।”<sup>5</sup>

गोरी नस्लों के नस्तीय भेदभावपूर्ण रवैये से पूरी दुनिया वाकिफ है। औपनिवेशिक भारत में भी यह भेदभाव बड़े पैमाने पर देखने मिलता है। सत्ता पर काबिज अंग्रेजों ने मनमाने नियम बनाए और उन्हें अपने फायदों के लिए भारत में लागू किया। इन नियमों के बंधन से उन्होंने अपनी नस्ल को दूर रखा। भारतीयों को जहाँ उन्होंने मात्र अपना 'क्लर्क' बनाकर रखना चाहा, तो वहीं पक्षपातपूर्ण कानून बनाकर अंग्रेजों को विभिन्न अपराधों से बचाने के इंतजाम किए। यहाँ तक कि भारतीय स्त्रियों को अधिकार दिलाने के दावे करने वाले अंग्रेजों ने, बलात्कार जैसे जघन्य मामलों में भी खुद को मामूली दंड पाकर बरी हो जाने की व्यवस्थाएँ कर लीं। अंग्रेजों के गुलाम बने भारतीय दिमागों ने इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था को सफल बनाने में अंग्रेजों का पूरा साथ दिया। बलात्कार के मामलों में भी अंग्रेजों पर सख्ती नहीं की जाती थी, इसी भेदभावपूर्ण और अन्यायी व्यवहार पर 'चाँद' ने रौशनी डाली। संपादक रामरख सिंह सहगल ने इस पक्षपात से अवगत कराते हुए भारतीयों में चेतना जागृत करने की चेष्टा की। वे लिखते हैं, "हमारी कौम में सबसे लज्जापूर्ण दोष है, वह यह है कि हम में राष्ट्रीयता के भाव छू भी नहीं गए हैं। हम अपनी और दूसरों की माँ बहिनों को एक दृष्टि से नहीं देखते। और मान सम्मान और इज्जत आबरू के मामलों में भी भेद भाव से काम लेते हैं।"<sup>6</sup>

भारत में नाममात्र के लिए प्रचलित सती प्रथा की क्रूरताओं को दुनियाभर में प्रचारित कर, भारतीय समाज की अंधविश्वासी जनता का मजाक बनाने वाले 'महान ब्रिटेन' के काले इतिहास में 'बिचहर्टिंग' जैसा बदनुमा दाग है, जिसमें सैकड़ों बेकसूर स्त्रियों को जिंदा जला देने जैसी अमानवीयता शामिल है। यह कुप्रथा 16-17 वीं सदी के यूरोप में व्यापक पैमाने पर प्रचलित रही। एशिया के समाजों को असभ्य और बर्बर ठहराने वाली गोरी नस्लों ने अपने काले इतिहास पर हमेशा पर्दा डाले रखा। फ्रांस की योद्धा जॉन ऑफ आर्क के वीरतापूर्ण जीवन चरित और त्याग की गाथा का गुणगान कर भारतीय स्त्रियों के मन में देश के प्रति समर्पण और प्रेम जगाने की कोशिश की। सैनिक जॉन की फ्रांस के प्रति निष्ठा और बलिदान ने ही अंग्रेजों की गुलामी से देश को आजाद कराया। साथ ही अंग्रेजों के दमन और क्रूरताओं का काला चिट्ठा जनता के सामने प्रस्तुत किया। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार द्वारा सोये हुए भारत में नवजागरण लाने का दंभ भरने वाली 'औपनिवेशिक दृष्टि' पर यह एक गहरी चोट है कि लेख के साथ चौराहे पर जिंदा जला दी गई जॉन ऑफ आर्क का चित्र भी प्रकाशित किया गया है। "जलती हुई देवी जॉन का चित्र 'चाँद' के मुख्य पृष्ठ पर दिया जा रहा है हमें आशा है हमारी पाठिकाएँ देवी जॉन की पवित्रता, स्वावलम्बन, सचरित्रता, स्वार्थत्याग और स्वदेश प्रेम से शिक्षा ग्रहण करेंगी। आज हमारे देश में भी ऐसी ही देवियों की आवश्यकता है!"<sup>7</sup>

इस लेख में दुनियाभर में सभ्यता की दुहाई देकर साम्राज्य का विस्तार करने वाले अंग्रेजों की बर्बरता को नग्न रूप में परोसा गया है, कि कैसे एक योद्धा को अंग्रेजों द्वारा 'डायन' करार देकर जिंदा जला दिया गया। "इस रमणीरत्न को यदि चाहते तो अंगरेज लोग प्रतिष्ठापूर्वक आमरण कैद रख सकते थे किन्तु न्याय का प्रहसन कर ऐसे सत्यवादिनी वीर नारी को पाशविक प्राण दंड देकर उन्होंने केवल अपनी जाति की नीचता और निष्ठुरता दिखलाई। अस्तु।"<sup>8</sup>

शिक्षा ही ऐसा साधन है जिससे जनसामान्य में चेतना जाग्रत कर उन्हें शोषण की जंजीरों से मुक्ति के लिए तैयार किया जा सकता है। अंग्रेज, शिक्षा की इस ताकत से पूरी तरह वाकिफ थे, इसलिए उन्होंने भारतीय दिमागों को गुलाम बनाने के लिए अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली को भारत में लागू किया। लेकिन उनकी यह चाल बहुत दिनों तक छुपी नहीं रह सकी। शिक्षा की ताकत को पहचानते हुए भारतीय विद्वानों ने भी आज़ादी के स्वप्न को पूरा करने के लिए लोगों को शिक्षित करने की मुहिम चलाई। तत्कालीन भारतीय जनसंख्या का आधा हिस्सा अर्थात् स्त्रियाँ शिक्षा से वंचित थीं। अतः समाज सुधारकों और राजनेताओं ने स्त्री-शिक्षा पर विशेष बल दिया। चूंकि पत्रकारिता के द्वारा स्त्री-शिक्षा का प्रचार-प्रसार सुगमतापूर्वक किया जा सकता था, इसलिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय से संबंधित नियमित स्तम्भ, आलेख और टिप्पणियाँ प्रकाशित होने लगे। 'चाँद' ने भी इस मुहिम को आगे बढ़ाने के लिए नियमित सामग्री प्रकाशित की। स्त्री-केन्द्रित विभिन्न विशेषांकों में स्त्री-शिक्षा के पुरजोर समर्थन के अलावा

अगस्त, 1923 में ‘शिक्षा अंक’ भी प्रकाशित किया गया। इस विशेषांक की शुरुआत आज़ादी के आंदोलन के जननेता महात्मा गाँधी के वक्तव्य से की गई- “यदि हम अपने को पूर्ण स्वराज्य के योग्य बनाना चाहते हैं तो हमें उचित है कि हम स्त्रियों की अवस्था सुधारें, उनका आदर तथा सम्मान करें।... बिना स्त्रियों का सुधार किए तथा उन्हें उचित शिक्षा दिए न तो आज तक किसी देश का उद्धार हुआ है और न होगा। मैं स्त्रियों की अधिक से अधिक स्वतंत्रता का पक्षपाती हूँ।”<sup>9</sup> इस विशेषांक के संपादक रामरख सिंह सहगल स्त्री-शिक्षा के विशेष हिमायती थे। उन्होंने किसी भी जाति के उत्थान और पतन में शिक्षा को महत्वपूर्ण घटक बताते हुए, यूनानी दार्शनिक प्लेटो की भाँति स्त्री शिक्षा को सशक्त राष्ट्र के निर्माण के लिए सर्वोपरी माना। वे लिखते हैं- “समाज शास्त्रज्ञ और राष्ट्रीयता को पैदा करने वाले लोग स्त्री-शिक्षा को बहुत ज्यादा महत्व देते हैं। उनका विचार है कि अशिक्षित, कुशिक्षित, अज्ञान और अंधविश्वास पूर्ण माता की गोद में पला हुआ बालक बड़ा होकर-संस्कृत-आदर्श-सर्वांग-पूर्ण वीर विदुषी माताओं की गोद में पले हुए बालकों का मुकाबिला नहीं कर सकता। जिस राष्ट्र के लड़के चार पाँच वर्ष की अवस्था तक एक ऐसे व्यक्ति के संसर्ग और प्रभाव में रहें जो पशु से किसी कदर ही बुद्धि में उच्च कही जा सकती है, वह राष्ट्र, देशभक्त वीर विदुषी स्त्रियों की गोद में पले हुए बालकों से अस्तित्व के संग्राम में कैसे मुकाबिला कर सकता है? स्त्री-शिक्षा इसलिए विशेष महत्व की समझी जाती है।”<sup>10</sup>

‘चाँद’ ने सविनय अवज्ञा आंदोलन में जनसमूह को जागृत और संगठित करने के लिए सिलसिलेवार ढंग से बायकाँट का महत्व, स्वदेशी की उपयोगिता और असहयोग के दूरगामी परिणामों पर आधारित लेखों और सामग्री का सम्पादन किया। स्वदेशी के प्रचार-प्रसार में संलग्न नेत्रियों, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती कस्तूरबा गाँधी आदि तथा नेताओं, गोपाल कृष्ण गोखले, लालालाजपत राय, महात्मा गाँधी, श्री जी. एस. खापर्डे, श्री वी. कृष्णस्वामी ऐयर आदि के वक्तव्यों, विचारों और कार्यों को जन-जन तक प्रसारित किया। भारत में स्वाधीनता आंदोलन जोर पकड़ रहा था और महात्मा गाँधी की नेतृत्व में विशाल जनसमूह ने मार्च, 1930 में दांडी मार्च के द्वारा नमक कानून तोड़ा। इसी के साथ देश में सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत भी होती है। इन आंदोलनों और विरोध-प्रदर्शन से बौखलाई अंग्रेज़ सरकार ने 1910 ई. के प्रेस एक्ट की धाराओं और भी कठोर रूप में लागू कर दिया। इस एक्ट के अनुसार, सम्राट के खिलाफ या जनता को सरकार के खिलाफ लामबंद करने वाले किसी भी शब्द, चिन्ह, चित्र आदि किसी भी सामग्री के समाचारपत्र, पुस्तक या लेखादि में प्रकाशित करने पर जमानत जब्त या प्रेस को जब्त किया जा सकता था। ब्रिटिश हुकूमत के सरताज जानते थे कि भारत की जनता को एकजुट कर विद्रोही बनाने में प्रेस की अग्रणी भूमिका है। अतः उन्होंने जनता और आंदोलन के नेताओं के बीच के संपर्क को तोड़ने के लिए प्रेस पर पारबंदियों की घोषणा की। कानून के पुनर्जीवित होते ही राजधानी के कई राष्ट्रीय समाचार पत्रों की जमानत जब्त कर ली गई और संपादकों पर कठोर कार्रवाई की गई। ‘चाँद’ पत्रिका के संपादक रामरख सिंह सहगल, अंग्रेजों की इस कूटनीति से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने जून, 1930 ई. के अंक में, इस काले कानून का खुलकर विरोध करते हुए संपादकीय स्तम्भ को खाली रखा। साथ ही प्रेस एक्ट की तानाशाही का पर्दाफाश किया। ‘चाँद’ के संपादकीय में लिखा गया, “वर्तमान परिस्थिति- दुर्भाग्य से ऐसी दारुण परिस्थिति है, जिसमें अपने देश का शुभचिंतक राजविद्रोही करार दिया जाता है और अन्याय का विरोध करने को ही ‘अराजकता’ कहा जाता है। अतः इस अनावश्यक और अनर्थकारी कानून के विरोध में हम इस मास के अंक से ‘संपादकीय विचार’ तथा ‘रंगभूमि’ आदि संपादकीय टिप्पणियाँ लिखना तब तक के लिए बंद करते हैं, जब तक इस विषय में कोई उचित निर्णय न हो जाय।”<sup>11</sup>

राष्ट्र सेवा में समर्पित ‘चाँद’ की निर्भीकता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि अंग्रेजों के दमनपूर्ण प्रेस कानून की परवाह न करते हुए, इसी अंक में श्रीमती कस्तूरबा गाँधी के नेतृत्व में शराब और विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार के लिए आन्दोलनरत स्त्रियों, नमक कानून तोड़ती स्त्रियों, विदेशी शासन का विरोध में आयोजित सभा को संबोधित करती स्त्रियों आदि के चित्र प्रकाशित किये गए। जबकि पुनर्स्थापित प्रेस कानून में

अंग्रेजी शासन के प्रति प्रतिरोध को राजद्रोह मानकर कड़ी कार्रवाई के निर्देश दिए गए थे। पत्रकारिता के दायित्वों को दोहराते हुए 'चाँद' ने कहा- "एक ओर है प्रेस की स्वाधीनता का ऐसा रोमांचकारी अपहरण और दूसरी ओर है शासक वर्ग तथा पुलिस की दिनोंदिन बढ़ती हुई अमानुषिक बर्बरता तथा धींगा-धींगी।...आम को आम और जामुन को जामुन कहना 'चाँद' की निश्चित-नीति है, अतएव वर्तमान परिस्थिति में भारतीय महिलाओं और बच्चों पर किए जाने वाले अपमान और अत्याचार को आँखें बंद करके सह लेना- हम अस्वीकार करते हैं, हमारी शक्ति के बाहर की बात है। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि संसार की किसी भी महत्वपूर्ण घटना पर निष्पक्ष और निडर टिप्पणी न करना, अपने पढ़ने वालों तथा अपनी आत्मा के साथ विश्वासघात करना है।"<sup>12</sup>

स्वाधीनता आंदोलन में संघर्षरत स्त्रियों को आदर्श बनाकर 'चाँद' ने अन्य महिलाओं को भी इस अनुष्ठान में अपनी आहुति देने के लिए प्रेरित किया। 'स्वाधीनता के महायुद्ध में स्त्रियों का भाग' शीर्षक के अंतर्गत राष्ट्रीय आंदोलन में सहभागिता कर जेल जाने वाली वीरांगनाओं का विवरण देकर 'चाँद' ने अपनी शक्ति का प्रयोग राष्ट्रहित में स्त्रियों को संगठित और प्रेरित करने के लिए किया। "हमें हर्ष है कि कुछ बहिनों ने स्वाधीनता के इस महायुद्ध में जो उज्ज्वल आत्म-बलिदान किया है उससे हम स्त्रियों का मस्तक गौरव से उन्नत हो गया है। और भी कितनी ही बहिनंज विदेशी कपड़े की दूकानों पर धरना देकर देश-भक्ति के साथ ही साथ स्त्री जाति के जागरण की सूचना दे रही हैं। परंतु ये सब बातें तो छणिक हैं। हमें इस आंदोलन के भीतर छिपे हुए कुछ स्थायी सिद्धांतों की ओर भी ध्यान देना होगा। स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार तथा राष्ट्रीय शिल्प को प्रोत्साहन देने का भार सबसे अधिक शायद स्त्रियों पर ही है। अतः इस ओर हमें विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।"<sup>13</sup>

'चाँद' के लेखों और संपादकीय ही नहीं, रचनात्मक साहित्य में भी देशप्रेम और राष्ट्रोन्नति का लक्ष्य स्पष्ट मुखरित होता था। प्रेमचंद की कहानी 'आहुति' का सर्वप्रथम प्रकाशन भी 'चाँद' में हुआ, जिसमें प्रेमचंद ने परतंत्रता की बेड़ियों के साथ ही देश की नींव में घुन की तरह लगे स्वदेशी बेईमान लोगों के प्रति सतर्क रहने के लिए संकेत किया, ताकि देशवासी आज़ादी के क्षद्वं दिखावों में उलझकर, गुलामी की नई जंजीरों का वरण न कर लें। क्योंकि आज़ादी अपनी दुर्बलताओं पर भी विजय प्राप्त करना है, देश के अंदर बैठे देश के दुश्मनों को पहचानना है।

'चाँद' के संपादकों की नज़र भारत ही नहीं विश्व के विभिन्न देशों में चल रहे स्वाधीनता के संघर्ष पर भी थी। अन्य देशों की सफलताओं से ऊर्जा का रसम्रोत ग्रहण कर वे भारतवासियों में नई ऊर्जा का प्रवाह करना चाहते थे। तत्कालीन वैश्विक धरातल पर उपनिवेशवाद के खिलाफ चल रहे साझा संघर्ष में गुलाम देशों ने एक-दूसरे के संघर्षों से ऊर्जा ग्रहण की। 'स्पेन में प्रजातन्त्र की विजय' शीर्षक संपादकीय में श्री त्रिवेणी प्रसाद वी. ए. लिखते हैं- "न्याय एवं अत्याचार की भित्ति पर टिका हुआ शासन एक अनिश्चित काल तक देश-वासियों को त्रस्त भले ही करे; किन्तु अंत में उसका करुणाजनक विनाश अवश्यभावी है, इसमें संदेश नहीं। सारे ब्रह्मांड का इतिहास हमारी इस धरणा का पोषक है।... विगत 12 वर्षों के भीतर कितने ही शासकों के राजमुकुट प्रजा द्वारा छीने और ठुकराए जा चुके हैं।...वर्तमान युग बहुमत और प्रजातन्त्र का महान युग है। सम्राटों और पूंजीवादियों के लिए आज संसार में कोई विशेष स्थान नहीं दिखाई देता।"<sup>14</sup>

'चाँद' ने स्वाधीनता प्राप्त कर चुके देशों की व्यवस्था का हवाला देते हुए, गुलामी की जंजीरों में जकड़ी भारतीय जनता की चेतना को जगाने का प्रयास किया। उन्होंने इन उदाहरणों से जनता को आश्वस्त करना चाहा कि स्वाधीनता पश्चात स्वतंत्र निर्णय द्वारा, सामाजिक कुरीतियों के निवारण हेतु कानून बनाकर उन्नति का रास्ता चुना जा सकता है। नवस्वतंत्र देशों में लोकतंत्रात्मक शासन की स्थापना से जनता की सरकार द्वारा शासन संचालन का विकल्प लोगों को अधिक समतापूर्वक प्रतीत हुआ। इस पत्रिका में राष्ट्रवासियों को लोकतंत्र की स्थापना के फायदों और तानाशाही सरकारों के विषय में अवगत कराते विस्तृत व्योरे भी प्रकाशित किए गए। 'एशिया में राष्ट्रीयता का विकास' लेख में श्री शंकर दयालु श्रीवास्तव लिखते हैं, "एक देश को दूसरे देश पर, एक जाति को दूसरी जाति पर तथा एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के ऊपर, उसकी इच्छा के प्रतिकूल अपने स्वार्थ के लिए, शासन

करना, नैसर्गिक सिद्धांतों तथा मानव-जाति के जन्म-जात अधिकारों के नितांत प्रतिकूल है। इस दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि एशिया में यूरोपीय शक्तियों का प्रभुत्व, एशिया-निवासियों की इच्छा के विरुद्ध न्याय-संगत नहीं, वरन् अन्यायपूर्ण है।”<sup>15</sup>

स्वाधीनता के संघर्ष में जेल गई नारियों के प्रति ‘चाँद’ विशेष रूप से कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उनके परिचय एवं चित्रों को प्रकाशित करता था। पंजाब की स्त्रियाँ, कुमारी श्यामा, जुतशीएम. ए., कुमारी जानकी, जुतशीएम. ए. और कुमारी मनमोहिनी, जो गांधी-इरविन समझौते के समय जेल गईं, उनके चित्रों को ‘चाँद’ ने आदरपूर्वक प्रकाशित किया।

‘चाँद’, राष्ट्रीय पत्रकारिता का धर्म निभाते हुए इस देश की स्वतन्त्रता और विकास के लिए सदैव सजग सैनिक की तरह तैनात रही। इसने राष्ट्र के लिए खतरा लगने वाली आंतरिक बुराइयों के खिलाफ और राष्ट्र को सुदृढ़ करने वाली ताकतों के समर्थन में शब्दों की तलवार बुलंद रखी। स्त्री-मुक्ति के झंडे तले राष्ट्र-मुक्ति की लौ को हमेशा जलाए रखा। शुरुआती अंकों में ‘चाँद’ द्वारा स्त्री-केन्द्रित विशेषांकों का लगातार प्रकाशन और प्रत्यक्ष रूप से “स्त्रियों के स्वत्वों की रक्षा करना तथा सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध क्रांति उत्पन्न करना ही पत्रिका का उद्देश्य है”<sup>16</sup> को प्रकाशित किया जाता था। ‘चाँद’ के स्त्री-मुक्ति के लिए प्रत्यक्ष समर्पण पर मुग्ध और परोक्ष रूप से राष्ट्रमुक्ति के लिए अग्रसर ‘चाँद’ से अनभिज्ञ अंग्रेज सरकार ने पंजाब, मध्य प्रांत, बेरार, संयुक्त प्रांत और कश्मीर राज्य आदि राज्यों के सार्वजनिक शिक्षा निदेशकों को विद्यालयों और पुस्तकालयों में ‘चाँद’ पत्रिका के उपयोग की सिफारिश की थी। इस सिफारिश को ‘चाँद’ ने मुख्य पृष्ठ पर इस प्रकार प्रकाशित किया, “highly appreciated for use in schools by directors of public instruction, Punjab, behar, central provinces and berar, united provinces and Kashmir state etc., etc.”<sup>17</sup>

स्त्रीमुक्ति के लिए सराहना के बाद, राष्ट्र के प्रति वफादारी का दंड भी ‘चाँद’ को भुगतना पड़ा। राष्ट्रीय आन्दोलनों की तेज़ होती धार के साथ जब ‘चाँद’ ने भी राष्ट्र के प्रति सक्रियता बढ़ाई और नवंबर, 1928 ई. में ‘फॉर्सी’ जैसा क्रांतिकारी विशेषांक प्रकाशित किया, तो इस अंक को अंग्रेज सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया। साथ ही, ‘चाँद’ कार्यालय से प्रकाशित पुस्तक ‘भारत में अंग्रेजी राज’ पर भी मार्च, 1929 में प्रतिबंध लगा दिया गया। ‘चाँद’ के इन क्रांतिकारी कदमों से बौखलाई सरकार द्वारा विभिन्न राज्यों के निदेशकों को दी गई, ‘चाँद’ पत्रिका के सार्वजनिक शिक्षा में उपयोग संबंधी सिफारिश को भी रद्द कर दिया गया। “C P and berar government have also deleted from the approved list and is no longer approved by the U. P. government and should not be purchased by any recognised institution of these provinces. No such news from Punjab yet.”<sup>18</sup>

अंग्रेजी सरकार के इस रवैये के बाद भी ‘चाँद’ के राष्ट्र-मुक्ति के तेवर में नरमी नहीं आई। बल्कि पलटवार करते हुए ‘चाँद’ ने प्रत्यक्ष रूप से मुख्य पृष्ठ पर पत्रिका का मुख्य उद्देश्य लिखना शुरू किया, “आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।”<sup>19</sup>

‘चाँद’ के निर्भीक, दृढ़, सशक्त और सुनियोजित प्रयत्नों और मार्गदर्शन से स्त्री-मुक्ति के साथ-साथ राष्ट्रमुक्ति के आंदोलनों को भरपूर सहयोग और समर्थन प्राप्त हुआ। इस पत्रिका ने राष्ट्र निर्माण में स्त्रियों की सहभागिता को सुनिश्चित कर राष्ट्रीय चेतना से विहीन भारत के अर्धभाग को सक्रिय बनाने में सारथी की भूमिका अदा की। इसने केवल भारत ही नहीं, वैश्विक धरातल पर उपनिवेशवाद के खिलाफ चल रहे राष्ट्रमुक्ति-संघर्षों पर पैनी नजर रखी और उनसे ऊर्जा ग्रहण की। सरकारी निज़ामों की कार्रवाई और लगातार थोपे जा रहे प्रतिबंधों के फलस्वरूप, ‘चाँद’ को आर्थिक और कानूनी मुश्किलों का सामना करना पड़ा। बावजूद इसके, ‘चाँद’ के क्रांतिकारी स्वरूप में कोई बदलाव नहीं आया। पत्रिका ने 1930 ई. में सरकार द्वारा लगाए गए ‘प्रेस एक्ट’ की तानाशाही का खुलकर विरोध किया। ‘चाँद’ की राष्ट्र के प्रति यह सक्रियता कई वर्षों तक बनी रही। राष्ट्रमुक्ति के लिए ‘चाँद’ के

प्रयत्नों की श्रृंखला, उद्धृत सामग्री की तुलना में बेहद विस्तृत और समृद्ध है। केवल स्त्री-केन्द्रित पत्रिका के रूप में 'चाँद' को उद्धृत किया जाना, इसके राष्ट्रीय अवदान को नज़र अंदाज़ करना होगा।

---

हिन्दी विभाग  
पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय  
भटिंडा - 151401

**संदर्भ -**

1. प्रेम, धनीराम, "समाज-सुधार तथा चाँद", चाँद, अगस्त- सितंबर 1930 ई., पृ. 390
2. चतुर्वेदी, नरेशचन्द्र, भूमिका, 'फाँसीअंक', चाँद, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1988 ई., पहला पुस्तकाकार संस्करण, 1997 द्वितीय आवृत्ति
3. सहगल, रामरख सिंह, "बलात्कार पर स्वीकृति बिल", चाँद, जून 1924, पृ. 98
4. सहगल, रामरख सिंह, "स्त्रियों का निरादर", चाँद, नवंबर 1923, पृ. 6-7
5. गंगोला, गंगादेवी, "देशव्यापी क्रांति में स्त्रियों का भाग", चाँद, जुलाई 1930, पृ. 295
6. सहगल, रामरख सिंह, "स्त्रियाँ और सरकार", चाँद, जून 1924, पृ. 106
7. सहगल, श्रीमती विद्यावती, "देवी जॉन", चाँद, जून 1924, पृ. 126
8. वही, पृ. 125
9. सहगल, रामरख सिंह, 'शिक्षा अंक', चाँद, अगस्त 1923, मुख्य पृष्ठ
10. वही, "शिक्षा का महत्व", चाँद, अगस्त, 1923, पृ. 205
11. वही, जून 1930, पृ. 127
12. वही, पृ. 127
13. गंगोला, गंगादेवी, "देशव्यापी क्रांति में स्त्रियों का भाग", चाँद, जुलाई 1930, पृ. 297
14. प्रसाद, त्रिवेणी, "स्पेन में प्रजातन्त्र की विजय", चाँद, मई 1931, पृ. 1
15. श्रीवास्तव, शंकर दयालु, "एशिया में राष्ट्रीयता का विकास", चाँद, मई 1931, पृ. 25
16. सहगल, रामरख सिंह, 'शिक्षा अंक', चाँद, अगस्त 1923, पृ. 203
17. वही, 'विशेषांक', चाँद, नवंबर 1923, पृ. 1
18. वही, दिसंबर 1929, पृ. 409
19. वही, "मारवाड़ी अंक", चाँद, नवंबर 1929, मुख्य पृष्ठ

## देशज शिक्षा प्रणाली : परंपरागत भारत की नैतिक व्यवस्था

*अनुराग कुमार पाण्डेय, मिथिलेश कुमार तिवारी*

हम संसार के किसी भी भाग में विचरण कर इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि प्रत्येक स्थान, संस्कृति, सभ्यता, जीवनशैली, विचार व्यवहार की एक विशिष्टता होती है उनके प्रतिमान अलग होते हैं। संभव है कि उनके प्रतिमान किसी दूसरी संस्कृति अथवा सभ्यता आदि से मिलते जुलते हों, परंतु उनका इतिहास तथा परंपरा निःसन्देह उन्हें अन्य से एक अलग पहचान प्रदान करेंगे। संसार में अनेक सारी भावनाएँ, इच्छाएँ, विचार, तरीके आदि देखने को मिलते हैं तथा सभी के लिए कुछ नियोजित प्रारूप भी दिखाई देते हैं। ये नियोजित प्रारूप संबंधित संस्कृति अथवा समाज के लिए पहचान निर्मित करते हैं।

भारतीय समाज तथा संस्कृति भी ठीक इसी प्रकार विविधता से भरा हुआ है। यहाँ अनेक धर्म, संप्रदाय, पंत, विचारधाराएँ देखने को मिलती हैं। प्रत्येक सांस्कृतिक विविधता तथा पृथक अस्तित्व रखने वाले समूह अथवा समाज की अपनी देशजता है तथा उसी देशजता के आधार पर वे अपनी पहचान को बनाए रखते हैं। प्रत्येक समाज अथवा समूह की देशजता उसके लिए एक विज्ञान है, उसका विश्वास है, उसकी पहचान है, उसका आत्मसम्मान है। सभी के पास अपनी एक विशिष्टता है तथा इसके साथ ही उनकी ऐतिहासिकता भी जुड़ी हुई है। समान्यतः भारतीय संस्कृति के रूप में सनातन संस्कृति का ही उल्लेख किया जाता है तथा इस अध्ययन में भी सनातन धर्म (हिंदू धर्म) के आधार पर ही भारतीय देशजता को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। भारतीय देशज शिक्षा अर्थात् गुरुकुल व्यवस्था पर विश्लेषण करने से पूर्व देशज तथा शिक्षा व्यवस्था के बारे में व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा।

इस शोध आलेख में दो मुख्य पदों का प्रयोग किया गया है पहला, देशज तथा दूसरा, शिक्षा प्रणाली। इस सम्पूर्ण लेखन को व्यवस्थित ढंग से सारगर्भित करने के प्रयोजन को पूर्ण करने हेतु यह नितांत आवश्यक है कि उक्त दोनों पदों के बारे में अच्छे से संज्ञान प्राप्त कर लिया जाय।

देशज शब्द को सही तरीके से समझने के लिए इसके इतिहास को भी जान लेना आवश्यक है। 20वीं सदी के अंत में देशज शब्द राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय कानून के तहत निर्मित देशज इंडिजिनस कानून के रूप में वैध तरीके से प्रयोग किया जाने लगा। यह कानून उपनिवेश की वजह से सांस्कृतिक रूप से पृथक समूहों हेतु बनाया गया था।<sup>1</sup> देशज शब्द अंग्रेजी के 'इंडिजिनस' शब्द का भावानुवाद है, जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द 'इंडिजिना' से हुई है तथा इसका अर्थ 'जन्म लेने वाला' होता है।<sup>2</sup> इस प्रकार से देशज को हम एक ऐसे नृजातीय समूह अथवा समुदाय के रूप में समझ सकते हैं जिनका संबंध किसी क्षेत्र विशेष अथवा स्थान से होता है तथा वे उस स्थान को अपना पारंपरिक मूलनिवास मानते हैं।<sup>3</sup> 19वीं शताब्दी में मेरियम वेबस्टर शब्दकोश ने देशज (इंडिजिनस) लोगों को परिभाषित किया। शब्दकोश के अनुसार वह व्यक्ति जिनकी एक सामान्य संस्कृति, परंपरा अथवा नातेदारी हो,

जिनकी विशिष्ट रूप से एक सामान्य भाषा, संस्थाएं, विश्वास हों और साथ ही जो राजनीतिक रूप से संयुक्त समूह का निर्माण करते हों, को हम इंडिजिनस व्यक्ति के रूप में समझ सकते हैं।<sup>1</sup> अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के सम्मेलन के अनुच्छेद 1 (b) देशज (इंडिजिनस) तथा जनजातीय लोगों को परिभाषित किया गया। देशज लोग वे होते हैं, जिनका ऐतिहासिक अस्तित्व और पहचान अन्य समाजों से पृथक् तथा स्वतंत्र होता है। उनका निवास स्थान एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र से संबंधित रहता है तथा वे अपनी पहचान और इतिहास को उसी के आधार पर स्पष्ट करते हैं।<sup>2</sup>

समाजशास्त्रीय संदर्भ में देशज समुदाय, व्यक्ति तथा राष्ट्र वे हैं, जिनके पास पूर्व औपनिवेशिक समाजों के साथ एक ऐतिहासिक निरंतरता है तथा इसका विकास उन्होंने अपने भू भाग के आधार पर स्वयं को अन्य समाजों से पृथक् रखते हुये किया है। वर्तमान समय में उन्हें संरक्षित, पूर्वज अथवा नृजातीय पहचान के रूप में व्याख्यायित किया जाता है। साथ ही तथाकथित आधुनिक और विकसित समाजों द्वारा उनकी विभिन्नता (जैसे विशिष्ट सांस्कृतिक प्रतिमान, सामाजिक संस्थाएं तथा कानून व्यवस्था) को बनाए रखते हुये विकसित करने की बात की जाती है। भारतीय संदर्भ में इंडिजिनस लोगों को अनुसूचित जनजातियों के रूप में समझा जाता है। संयुक्त रूप से आदिवासियों तथा जनजातीय लोगों की संख्या भारत में लगभग 20 करोड़ है।

‘देशज’ को कई संदर्भों में ‘स्वदेशी’ के रूप में भी विश्लेषित किया जाता है, तथा इनकी व्याख्या ‘आदिम’ के रूप में की जाती है जिसमें नकारात्मक संदर्भ निहित है। हालांकि अंग्रेजी पदावली में प्रयुक्त इंडिजिनस शब्द के सम्पूर्ण अर्थ की व्याख्या देशज शब्द से नहीं स्पष्ट हो पाती है। इंडिजिनस से तात्पर्य उस व्यक्ति की नृजातीय सांस्कृतिक घटना से है जिसमें वह अपने मूलनिवास से कभी प्रवासित नहीं हुआ है।

प्रत्येक देशज संस्कृति अपने आप में अलग तथा विशिष्ट होती है। अनेक व्यक्तियों के दृष्टिकोण समान हो सकते हैं, परंतु एक सामान्य देशज पहचान तथा संस्कृति की आधारशिला एक विशिष्ट इतिहास, पर्यावरण तथा संरचित आत्मा से ही जुड़ी रहती है। देशज ज्ञान तथा प्रयास हजारों सालों से जीवत हैं तथा इसका कारण उनकी उपयोगिता ही है। देशज परंपरा तथा ज्ञान उनके सिद्धांतों में पूर्ण रूप से शामिल रहते हैं जो सामाजिक सांस्कृतिक तथा आर्थिक प्रारूप को तैयार करने में मदद करते हैं। ये प्रारूप न केवल देशज संस्कृति अथवा समाज तक सीमित होते हैं, अपितु इस धरोहर को संरक्षित कर इसका प्रयोग वैश्विक स्तर पर भी किया जा सकता है।

देशज का अभिप्राय उन सभी मूलनिवासियों से है जिनकी एक विशिष्ट संस्कृति, परंपरा, ज्ञान, पहचान होती है तथा वे इस पृथक्ता को बनाए रखने हेतु सजग भी रहते हैं। साथ ही यह पृथक्ता अन्य समाजों व संस्कृतियों को महसूस भी होती है। प्रत्येक देशज समूह अथवा समाज की एक विशिष्ट परंपरा तथा ज्ञान प्रणाली होती है। वे अपने समाज का संचालन इसी के आधार पर करते हैं। समान्यतः इसके लिए कोई स्पष्ट लिखित दस्तावेज़ नहीं रहता है। यह ज्ञान तथा परंपरा मौखिक रूप में ही पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती है। हालांकि हम कुछ समाजों में इसके लिखित स्वरूप के होने को भी नकार नहीं सकते हैं।

इस अध्ययन का दूसरा मुख्य पद है शिक्षा प्रणाली। संभवतः शिक्षा व्यवस्था से हम सभी चीर परिचित हैं, परंतु फिर भी संक्षिप्त रूप में इसकी रूपरेखा प्रस्तुत करना इस अध्ययन की सैद्धांतिकता तथा व्यावहारिकता को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। हमारी मनोवृत्ति का निर्माण हमारे जीवन, आचरण, व्यवहार आदि से होता है तथा जीवन, आचरण और व्यवहार का मूल शिक्षा में ही होता है। शिक्षा एक विशिष्ट प्रकार का साधन है जो हमारे ज्ञान को संवर्धित करता है, हमारे चरित्र को निर्मित करता है, हमारे विचार को परिष्कृत करता है, हमारी क्षमता को मजबूती देता है, हमारे व्यक्तित्व को विकसित करता है। मानव विकास का मापदंड ज्ञान है तथा ज्ञान से बुद्धि प्रशिक्षित होती है और मस्तिष्क में नवीन विचारों का जन्म होता है। ये विचार ही व्यक्ति की सफलता/असफलता का मार्गदर्शक होते हैं। ज्ञान सदैव से ही शक्ति को प्राप्त करने का माध्यम रहा है तथा इसने सामाजिक परिवर्तन में महती भूमिका निभाई है। अर्थात् शिक्षा व्यवस्था द्वारा प्राप्त शिक्षा ही यह निर्धारित करती है कि किसी व्यक्ति का जीवन स्तर, आचरण, चरित्र आदि किस प्रकार का होगा। किसी भी व्यक्ति के सामाजिक, मानसिक तथा बौद्धिक

स्तर को प्रत्यक्ष तौर पर शिक्षा प्रभावित करती है, जबकि अप्रत्यक्ष तौर पर इसका प्रभाव आर्थिक, राजनैतिक आदि क्षेत्रों में भी देखने को मिलता है।

बहरहाल, वर्तमान शिक्षा व्यवस्था ने सम्पूर्ण शिक्षा के विमर्श तथा अपनी पहचान को ही परिवर्तित कर दिया है। शिक्षा के इस बदलते हुये स्वरूप ने तो शिक्षा की उपयोगिता को ही परिवर्तित कर दिया है। वास्तव में शिक्षा व्यवस्था की मानव जीवन में क्या उपयोगिता है? क्या इसका ध्येय मात्र परीक्षा पास कर नौकरी प्राप्त करना है? नहीं, बिल्कुल नहीं। वास्तव में शिक्षा का उद्देश्य किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास करना तथा उसे एक स्वस्थ आचरण प्रदान करना होता है। शिक्षा का कार्य व्यक्ति को अनुशासित बनाना होता है। एक समृद्ध शिक्षा व्यवस्था में अधोलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए

❖ शिक्षा व्यवस्था के तहत प्रदान की जाने वाली शिक्षा का महत्व दैनिक तथा सामाजिक जीवन में होना चाहिए। यदि शिक्षा की उपयोगिता व्यक्ति के जीवन में रहेगी, तब इससे व्यक्ति का आचरण, व्यवहार व जीवन निर्वाह भी प्रभावित रहेगा।

❖ शिक्षा व्यवस्था में शारीरिक श्रम को भी महत्व दिया जाना चाहिए, ताकि प्रत्येक वर्ग, जाति आदि समूहों से संबंधित व्यक्ति को प्रत्येक प्रकार की शिक्षा प्राप्त हो सके। इससे शिक्षा व्यवस्था के तहत विविधता भी बनी रहेगी तथा सभी प्रकार की शिक्षा को प्राप्त करने से समाज में समानता स्थापित होने की संभावनाएँ भी बनी रहेंगी।

❖ जहां तक संभव हो सके शिक्षा संबंधित क्षेत्र की स्थानीय भाषा में दी जानी चाहिए, ताकि स्थानीय लोगों को समझने और सीखने में सहायता मिल सके।

❖ शिक्षा व्यवस्था में आचरण तथा व्यक्तित्व विकास संबंधी बातों का भी समावेश किया जाना चाहिए। इसकी व्यावहारिक उपयोगिता के रूप में समाज संतुलित तथा व्यवस्थित हो सकेगा।

❖ आचरण तथा व्यक्तित्वको विकसित करने के साथ ही शिक्षा व्यवस्था का यह ध्येय भी होना चाहिए कि विद्यार्थियों में आध्यात्मिक शिक्षा को भी प्रसारित करें। आध्यात्मिक शिक्षा से व्यक्ति में दूसरों के लिए सम्मान तथा आदर की भावना विकसित होगी, इससे समाज में बंधुत्व की भावना का विकास होगा। साथ ही आध्यात्मिक शिक्षा से दया तथा करुणा के भाव की प्रस्फुटित होंगे।

भारतीय समाज की देशजता को ध्यानपूर्वक अवलोकित किया जाए, तो इसमें वे सभी परंपरागत चीजें परिलक्षित होंगी, जिनका संबंध वैदिक साहित्यों से है। वैदिक चिकित्सा पद्धति, नक्षत्र शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, हस्तरखा ज्ञान, यंत्र विज्ञान, आयुर्वेद, गुरुकुल व्यवस्था, वर्णाश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ तथा धर्म कर्म की धारणा, संस्कार, ज्ञान विज्ञान आदि को हम भारतीय संदर्भ में इंडिजिनस के रूप में समझ सकते हैं। ये सभी हिंदू संस्कृति तथा सभ्यता के लिए एक विशिष्ट पहचान का सृजन करते हैं और साथ ही हमारा इतिहास भी इन संदर्शों से परिभाषित होता है। इनके अलावा वैदिक साहित्यों (वेद, पुराण, उपनिषद, ग्रंथ महाग्रंथ आदि) ने भी हिंदू संस्कृति की पहचान को स्थापित और बनाए रखने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है।

भारत की प्राचीन शिक्षा का आधार आध्यात्मिकता था। शिक्षा का संबंध धर्म से था तथा इसका प्रयोग मुक्ति और आत्मबोध के साधन के रूप में किया जाता था। प्राचीन समय में शिक्षा को काफी महत्व दिया जाता था तथा यही कारण था कि एक समृद्ध शिक्षा व्यवस्था होने के कारण भारत को 'विश्वगुरु' कहा जाता था। विद्वानों को ज्ञानचक्षु, अंतर्ज्योति, प्रकाशस्रोत आदि नामों की उपमाएँ दी जाती थी। प्राचीन समय में यह मान्यता थी कि जिस प्रकार से अंधकार को दूर करने के लिए प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है, ठीक उसी प्रकार से व्यक्ति के भ्रम, संशय तथा अज्ञानता को दूर करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। लोगों का मत था कि शिक्षा व्यक्ति को जीवन का यथार्थ दर्शन कराने का एक मात्र साधन है। प्रचिंभारत में तीन प्रकार की शिक्षा संस्थाएँ विद्यमान थीं गुरुकुल, परिषद तथा तपस्थली। गुरुकुल में विद्यार्थी गुरु के निवास स्थान पर रहते हुए शिक्षा ग्रहण करते थे, परिषद में विशेषज्ञों द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती थी तथा तपस्थली में सम्मेलन हुआ करते थे तथा वहाँ होने वाले प्रवचन व सभाओं के मध्यान से ज्ञानार्जन किया जाता था।

भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति का प्रारंभिक रूप ऋग्वेद में देखने को मिलता है। ब्रह्मचर्य, तप तथा योगाभ्यास ऋग्वेद युग की शिक्षा का प्रमुख ध्येय था। विद्यालय को 'गुरुकुल', 'आचार्यकुल', 'गुरुगृह' आदि नामों से जाना जाता था। गुरुकुल का तात्पर्य उस स्थान से है, जहां गुरु का कुल अर्थात् परिवार निवास करता था। प्राचीन भारत में शिक्षक को गुरु की संज्ञा दी जाती थी तथा उसका परिवार उसके यहाँ शिक्षा ग्रहण करने वाले शिक्षार्थियों से ही पूर्ण होता था। विद्यार्थी गुरुकुल में निवास करता था तथा गुरुसेवा, ब्रह्मचर्य, व्रतों आदि का पालन करते हुए वेदों का अध्ययन करता था। विद्यार्थी को व्रतधारी, अंतःवासी, ब्रह्मचारी आदि नामों से जाना जाता था। विद्यार्थी गुरु के उपदेशों के अनुरूप रहते थे तथा वेदमंत्रों को सुनकर कंठस्थ करते थे। ब्रह्मचर्य का पालन करना सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य था। ब्रह्मचर्य का पालन जो विद्यार्थी आजीवन करता था उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा ऐसी विद्यार्थिनी को ब्रह्मवादिनी की संज्ञा प्रदान की जाती थी।

यज्ञों के अनुष्ठान विधिपूर्वक हो सकें, अतः विद्यार्थियों को वेद, दर्शन, उपनिषद, कल्प, व्याकरण, छंद, ज्योतिष, शस्त्रविद्या आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी। बालक की शिक्षा का आरंभ पाँच वर्ष की आयु में कर दिया जाता था। गुरुकुल में रहते हुये शिक्षा प्राप्त करने की योग्यता उपनयन संस्कार के द्वारा प्राप्त होती थी। ब्राह्मणों में 8वें वर्ष में, क्षत्रियों में 11वें वर्ष में तथा वैश्यों में 12वें वर्ष में उपनयन संस्कार किए जाने का प्रावधान है तथा अधिक से अधिक यह संस्कार क्रमशः 16, 22 तथा 24 वर्ष की आयु तक संपन्न कर दिये जाने चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये विद्यार्थी 12 वर्षों तक वेदों का अध्ययन करते हैं तथा इसके पश्चात वे स्नातक कहलाते हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मवादिनी जीवनपर्यंत अध्ययन कार्य करते थे। प्राचीन भारत की शिक्षा व्यवस्था में कोई परीक्षा नहीं होती थी तथा ना ही किसी उपाधि दिये जाने की प्रथा थी। आचार्य द्वारा ही विद्यार्थी का मूल्यांकन किया जाता था अथवा विद्वान किसी वाद विवाद तथा शास्त्रार्थ में शामिल होकर अपनी योग्यता का प्रमाण देते थे। समावर्तन के तहत गुरुदक्षिणा देने का प्रावधान था।

प्राचीन शिक्षा पद्धति में गुरु का बहुत गौरवपूर्ण स्थान था तथा वे सभी से सम्मान व आदर पाते थे। गुरु धर्मबुद्धि से निःशुल्क शिक्षा प्रदान करते थे। गुरु पारंपरिक विद्वान, निराभिमान, सदाचारी होते थे तथा विद्यार्थियों के कल्याण हेतु सदा प्रतिबद्ध रहते थे। गुरु की महिमा, उपयोगिता तथा स्थान की स्पष्टता के संदर्भ में हमें श्लोक भी देखने को मिलता है

‘गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुसाक्षात् परंब्रह्मा, तस्मै श्रीगुरवे नमः६’

इस श्लोक का तात्पर्य है कि गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है और गुरु ही शंकर है, गुरु साक्षात् परंब्रह्म है, ऐसे गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ। यहाँ गुरु को ईश्वर के समकक्ष बताया गया है। इस श्लोक के आधार पर हम प्राचीन भारत में गुरु के महत्व को रेखांकित कर सकते हैं।

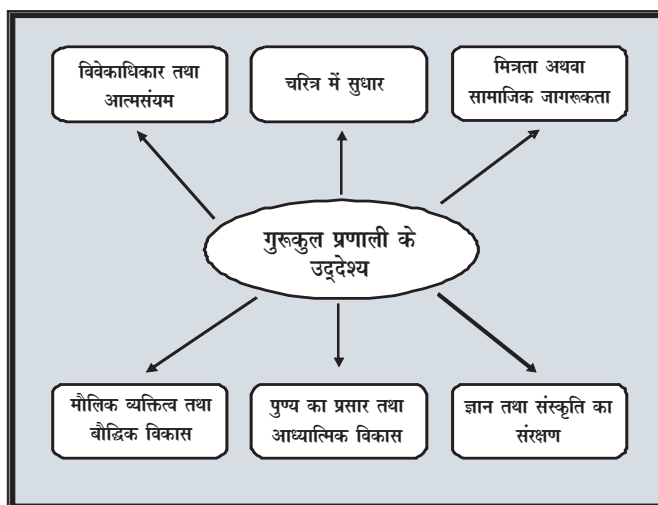
गुरुकुल व्यवस्था में स्त्री पुरुष का कोई भेद नहीं था। सभी को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान किए गए थे। उत्तररामचरित में वाल्मीकि के आश्रम में लव कुश के साथ आत्रेयी नाम की कन्या के पढ़ने का भी उल्लेख मिलता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं, जो यह स्पष्ट करते हैं कि स्त्री अथवा पुरुष दोनों को गुरुकुल व्यवस्था में समान महत्व दिया जाता था। ऋग्वेद में एक मंत्र है तथा यह मंत्र यजुर्वेद में कर्मकांड विषय के तहत पुरुषसूक्त में भी देखने को मिलता है

‘ब्राह्मणस्य मुखमासीद, बाहु राजन्य कृतः। उरु तदस्य यद्वैश्यः, पद्भ्याम् शूद्रो अजायत’<sup>6</sup>

इस मंत्र के दो अर्थ बताए जाते हैं। पहला अर्थ यह है कि ब्राह्मण यज्ञ करने हेतु, क्षत्रिय युद्ध हेतु, वैश्य व्यापार हेतु तथा शूद्र सेवाकार्य हेतु होते हैं। जबकि ऋग्वेद में एक स्थान पर यह भी कहा गया है कि एक व्यक्ति कहता है कि मैं एक कवि हूँ, मेरे पिता एक वैद्य हैं, मेरी माता चक्की चलाती हैं तथा अनेक व्यवसायों में रहते हुये हम एक साथ उसी प्रकार रहते हैं, जिस प्रकार से अपने बाड़े में अनेक पशु रहते हैं। बहरहाल, उपर्युक्त प्रस्तुत मंत्र का दूसरा अर्थ यह बताया जाता है कि ब्रह्म का मुख ब्रह्मा है, भुजा क्षत्रिय है, उदर वैश्य है तथा पैर शूद्र हैं। सभी एक ही शरीर के अंग हैं। जब हमें किसी का आदर सम्मान करना होता है, तो हम उसके पैर (शूद्र) छूते हैं। पैर छूने के लिए

निर्देश मस्तिष्क (ब्राह्मण) देता है, तथा छूने का कार्य भुजाएँ (क्षत्रिय) करती हैं। भारत की देशज व्यवस्था सदैव से ही समायोजन और संतुलन के रूप में स्थापित रही है। इसके अलावा प्राचीन समय में वर्ण व्यवस्था विद्यमान थी, जो कर्म आधारित थी न कि जन्म आधारित। इस प्रकार से हम प्रत्यक्ष रूप से कह सकते हैं कि गुरुकुल व्यवस्था में सभी के प्रवेश तथा शिक्षा ग्रहण का विधान था।

गुरुकुल व्यवस्था में विद्यार्थी प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त में उठ शौच आदि क्रियाओं से निवृत्त होकर तांबे के पात्र में जलपान करते थे (यह वैज्ञानिक तौर पर प्रमाणित है कि तांबा जल को स्वच्छ एवं बैक्टीरिया रहित रखने में सहायक होता है<sup>7</sup>)। इसके पश्चात व्यायाम, स्नान, प्राणायाम, यज्ञ आदि पूर्ण करने के बाद भोजन ग्रहण करते थे। भोजन के उपरांत अध्ययन करते थे तथा अध्ययन प्राकृतिक वातावरण में वृक्षों के नीचे किया जाता था (प्राकृतिक वातावरण चौतन्यता, शांति तथा मानसिक स्वच्छंदता को बनाए रखता है)। सूर्यास्त के समय विद्यार्थी यज्ञ आदि से निवृत्त होकर रात्री का भोजन कर विश्राम करते थे। गुरुकुल व्यवस्था में भोजन मात्र दो बार ही मिलता था (मनुष्य को दीर्घायु बनाए रखने हेतु दो समय का भोजन लाभकारी होता है)। शिक्षा व्यवस्था का मूल अनुशासन बनाए रखने में है तथा गुरुकुल व्यवस्था में पूरी दिनचर्या के तहत इसका कठोरता से अनुपालन किया जाता था। गुरुकुल व्यवस्था के प्रमुख उद्देश्यों को हम इस प्रकार से समझ सकते हैं।



जाहिर है कि समग्र शिक्षा प्रक्रिया में बुनियादी परिवर्तन की आवश्यकता है। यह तभी संभव है, जब पाठ्यक्रम और शिक्षण प्रक्रिया के चुनाव में विद्यार्थियों की आवश्यकता, रुचि, परिस्थिति आदि को केंद्रीय महत्व मिले तथा उसके क्रियान्वयन में उनकी सक्रिय सहभागिता भी हो। शिक्षा को अपनी प्रक्रिया और मूल्यांकन में सफलता और प्रतिस्पर्धा के बजाय सहभागिता, सार्थकता एवं आत्मावलोकन को महत्व मिले। यह तब तक नहीं हो सकता जब तक ज्ञान को उपयोगी अनुपयोगी के ढाँचे में विभक्त करके देखा जाता रहेगा। आज ऐसे तरीकों को खोजना होगा जो शिक्षक विद्यार्थी को प्रतिस्पर्धा के बजाए पूरक बनायें। इसके लिए जरूरी है कि सभी स्तरों पर शिक्षा की प्रक्रिया को खुलेपन, समानता एवं सहयोग की भावना से विकसित किया जाए।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली का विकास तकनीकी और डिजिटल युग के रूप में हुआ है तथा इसपर पश्चिमी शिक्षा प्रणाली की स्पष्ट छाप भी प्रत्यक्ष तौर पर देखी जा सकती है। लगातार अनुसंधान और विकास के आधार पर इस शिक्षा प्रणाली को बेहतर और सुगम्य बनाने का प्रयास किया जा रहा है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली प्रभावपूर्ण तथा विकसित है, परंतु इसमें सैद्धांतिकता को अधिक महत्व दिया जाता है तथा व्यावहारिकता को यथोचित महत्व नहीं दिया जाता। यदि दोनों शिक्षा प्रणालियों (इंडिजिनस तथा आधुनिक) को

एकीकृत कर दिया जाय, तो संभवतः एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का निर्माण हो सकेगा, जो व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक दोनों ही पक्षों में मजबूत होगी। इसमें तार्किक वैज्ञानिकता के साथ साथ आध्यात्मिक वैज्ञानिकता के संपुट भी शामिल हो सकेंगे, यह डिजिटल दुनिया के आभासी (virtual) यथार्थ से लेकर पारंपरिक समाज की नैतिक व्यवस्था तक प्रसारित हो सकेगी, इसमें ज्ञान के शासन के साथ अनुशासन की संकल्पना भी सार्थक हो सकेगी।

---

समाजशास्त्र विभाग,  
जे. एस. हिंदू पी. जी. महाविद्यालय, अमरोहा (उ.प्र.)  
पिन - 244221

वर्धा समाज कार्य संस्थान,  
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,  
क्षेत्रीय केन्द्र प्रयागराज  
6-1/3, झुंसी प्रोजेक्ट-3  
प्रयागराज पिन - 211019

#### संदर्भ -

1. हीचकॉक, आर. के. एवं वाईडिंग, डी. (2004). 'इंडिजिनस पीपल्स' राइट्स इन साउदर्न अफ्रीका. द इंटरनेशनल वर्क ग्रुप फॉर इंडिजिनस अफेयर्स. पृ. 8.  
([https://www.iwgia.org/images/publications/Southern\\_Africa\\_Doc\\_Intro-pdf](https://www.iwgia.org/images/publications/Southern_Africa_Doc_Intro-pdf))
2. "इंडिजिन". (सितंबर, 2016). ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी ऑनलाइन. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
3. ब्लेजर, एम., फीट, एच. ए. एवं मैकरे, जी. (2004). इन द वे ऑफ डेवेलपमेंट : इंडिजिनस पीपल्स, लाइफ प्रोजेक्ट्स एण्ड ग्लोबलाइजेशन. इंटरनेशनल डेवेलपमेंट रिसर्च सेंटर. पृ. 53.  
(<https://www-idrc-ca/en/book/way-development-indigenous-peoples-life-projects-and-globalization>)
4. लेविन्स्की, वी. एस. (2004). इंडिजिनस हेरिटेज एंड इंटेलेक्चुवल प्रॉपर्टी : जेनेटिक रिसोर्सेज, ट्रेडीशनल नॉलेज, एंड फोकलोर. क्लूवर लॉ इंटरनेशनल. पृ. 130-31.
5. <https://www-ilo-org/dyn/normlex/en/f?p=NORMLEXPUB:12100:0::NO:12100:P12100-INSTRUMENT-ID:312314:NO>
6. ऋग्वेद संहिता, मण्डल 10, सूक्त 90, ऋचा 12.
7. पाण्डेय, ए. के. एवं उपाध्याय, ए. के. (2018). मिथक, प्रतीक और पर्यावरण. पर्यावरण की अवधारणा एवं चेतना (संपा. जी, के, पासवान एवं आर, रौशन). वाराणसी : स्काइलार्क पब्लिकेशन. पृ. 100-108.

## पंडित दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिंतन

गुंजेश गौतम

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का स्थान भारतीय चिंतन परंपरा में बहुत महत्वपूर्ण है। वे गहन दार्शनिक, समाजशास्त्री, अर्थवेत्ता, पत्रकार और प्रख्यात राजनीतिज्ञ थे। जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जिसे उन्होंने अपने चिंतन के दायरे में शामिल ना किया हो। वे वर्तमान तकनीकी एवं अकादमिक शब्दावली के सीमित-संकीर्ण अर्थों में अर्थशास्त्री तो नहीं थे, पर उनका एक विशिष्ट आलथक चिंतन था। उनके चिंतन में हमें सूक्ष्म आर्थिक अवधारणाएँ भी मिलती हैं, किंतु मुख्यतः देश और विश्व की समस्याओं के समाधान का प्रयास अधिक दिखता है। दीनदयाल उपाध्याय का विचार, उनकी सैद्धांतिक भूमिकाएँ तथा उनका व्यवहारिक जीवन भारतीयता से अभिभूत रहा है। अर्थ के सम्बन्ध में भी वे भारतीय दर्शन एवं मान्यताओं के आधार पर ही अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं।

देश के निर्धनतम व्यक्ति के हित का विचार दीनदयाल उपाध्याय के सोच की आधारशिला रही। अर्थशास्त्र पर उनकी अच्छी पकड़ थी। इसके सूक्ष्मतर सिद्धांत से लेकर व्यवहारिक अर्थशास्त्र पर उन्होंने गहन चिंतन-मनन किया। भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पक्षों पर उन्होंने पर्याप्त रोशनी डाला। भारत के आर्थिक विकास की एक स्पष्ट दृष्टि उनके चिंतन में थी। भारतीय कृषि, उद्योग, नियोजन, यंत्रीकरण, विदेशी पूँजी, भूमि सुधार, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, जनसंख्या का प्रश्न, सामाजिक सुरक्षा आदि जैसे अनेक विषयों पर उन्होंने अपना मत व्यक्त किया। उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए सांसद एन.जी. रंगा ने कहा था- “दीनदयाल उपाध्याय जी एक विद्वान अर्थशास्त्री थे। उनके साथ भारत के आर्थिक उत्थान का स्वप्नद्रष्टा चला गया।”<sup>1</sup>

दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक विचारों के संबंध में उनकी लिखित तीन पुस्तकें-भारतीय अर्थ नीति : विकास की एक दिशा, The Two Plans : Promises, Performances and Prospects तथा Devaluation : A Great Fall महत्वपूर्ण स्थान रखती है। ये पुस्तकें तथा समय-समय पर आर्थिक विषयों पर उनके द्वारा लिखे गए लेख उनके समर्थ आर्थिक चिंतक होने का प्रमाण है। उनके आर्थिक विचारों का अध्ययन हम निम्न शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं-

### अर्थनीति का भारतीयकरण

भौतिक विकास किसी भी राष्ट्र की अर्थनीति का स्वाभाविक लक्ष्य होता है। दीनदयाल उपाध्याय विकास के पाश्चात्य मॉडल को मानवीय एकात्मता के लिए अहितकर मानते थे, अतः उन्होंने अर्थनीति के भारतीयकरण का आह्वान किया। उनका आग्रह स्वदेशी, स्वावलंबी तथा विकेंद्रीकृत अर्थतंत्र एवं उत्पादन तंत्र अपनाने पर था। उनकी दृष्टि में स्वदेशी और स्वावलंबन अन्योन्याश्रित है। राष्ट्र को स्वावलंबी बनाए बिना न हम राजनीतिक स्वतंत्रता का संरक्षण कर सकते हैं और न स्वप्रभुता को ही कायम रख सकते हैं। स्वावलंबन के लिए स्वदेशी की भावना को जगाना जरूरी है।

दीनदयाल उपाध्याय का स्पष्ट मत था कि हमें अपने देश और अपनी परिस्थितियों के अनुकूल ही समाधान के मार्ग तलाशने होंगे। वे कहते हैं कि- “हमें इस प्रकार के अर्थ-तंत्र एवं उत्पादन-तंत्र की रचना करनी होगी, जिसमें स्थानीय संसाधनों, स्थानीय कौशल और स्थानीय श्रम के आधार पर स्थानीय आवश्यकताओं की अधिकाधिक पूर्ति की जा सके। हमें विदेशी पूँजी, विदेशी टेक्नालॉजी एवं विदेशी माल कम-से-कम और बहुत अनिवार्य होने पर ही प्रयोग करना चाहिए। अपना विकास अपने बलबूते करने की दिशा में ही आगे बढ़ना चाहिए, तभी हम स्वदेशी-स्वावलंबी अर्थतंत्र खड़ा कर पाएँगे।”<sup>2</sup> यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या हम अपनी पुरानी तकनीक तथा उत्पादन पद्धति से ही चिपके रहकर विदेशी पूँजी एवं विदेशी तकनीक को पूर्णतया नकार दें अथवा अंधानुकरण कर पूर्णतया स्वीकार कर लें? इस संबंध में दीनदयाल उपाध्याय ने एक व्यवहारिक मार्गदर्शन दिया है।

उनके अनुसार- “जो अपना है अर्थात् अपनी पद्धति, कार्यशैली, तकनीक, जीवनशैली आदि उसे युगानुकूल बनाकर और जो पराया/विदेशी है यानी विदेशी पद्धति, तकनीक आदि उसे देशानुकूल बनाकर अपनाना चाहिए।”<sup>3</sup> दीनदयाल उपाध्याय स्वदेशी और स्वावलंबन के प्रबल समर्थक थे, लेकिन इसका ये आशय नहीं है कि वे विदेशी सहायता के बिल्कुल विरोधी थे, उनका बस इतना आग्रह था कि हम नितांत आवश्यक होने पर ही विदेशी सहायता लें और जितनी आवश्यक हो, उतनी ही सहायता लें। यह सहायता मजबूरी के कारण नहीं होना चाहिए, अपनी मजबूती के लिए होना चाहिए।

### संयमित उपभोग

दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार अधिकाधिक उपभोग का सिद्धांत ही मनुष्य के दुःखों का कारण है। लोगों की आवश्यकता की तो पूर्ति की जा सकती है, लेकिन लोगों के उपभोग की इच्छा को कभी भी तृप्त नहीं किया जा सकता। वर्ग-संघर्ष जिसके ऊपर समूचा साम्यवाद खड़ा है, ऐसे उपभोग के कारण ही उत्पन्न होता है। वे कहते हैं- “पश्चिम का अर्थशास्त्र उपभोग की सतत वर्धमान आकांक्षा व लालसा को पूरा करने के लिए अमर्यादित उत्पादन वृद्धि पर जोर देता है। इससे भी आगे बढ़कर पहले तरह-तरह की वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है और फिर उसे खपाने के लिए इच्छाएँ पैदा करना और बाजार तलाशने का काम किया जाता है। इसके लिए तमाम उत्तेजक, माँग परिवर्तक एवं प्रतियोगी भ्रमात्मक विज्ञापनों, आकर्षक पैकेजिंग तथा विक्रय संवर्धन के विभिन्न तौर तरीकों का प्रयोग किया जाता है। .....इस प्रकार अब उपभोग के लिए उत्पादन से भी आगे बढ़कर उत्पादन के लिए उपभोग का अर्थशास्त्र चल पड़ा है। यह विनाशोन्मुख, घातक एवं संसाधनों की फिजूलखर्ची करने वाला अर्थशास्त्र एवं अर्थव्यवस्था है। इसे बदलकर आवश्यकताओं की समुचित पूर्ति के लिए संसाधनों की मितव्ययी उत्पादन-प्रक्रिया को अपनाया जाना चाहिए।”<sup>4</sup>

उत्पादन तथा उपभोग के बीच संयम और देशहित का ध्यान रखना आवश्यक है। देश संयमित उपभोग की नीति पर चलकर ही आत्मनिर्भर बन सकता है। अविकसित या अर्ध विकसित देश इस बात की उपेक्षा करने के कारण ही ऋण के चक्र में फँसते हैं। 18 जून 1959 के दिए गए अपने भाषण में दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि- “लोगों के सम्मुख यदि उपभोग पर संयम की कल्पना न हो, तो वह अधिकाधिक वस्तुएँ प्राप्त कर भी उनसे सुख और संतोष प्राप्त नहीं कर पाएगा। भोग में संयम रहे, तभी सुख मिलता है। आय 100 रुपये की हो और आवश्यकताएँ 125 रुपये की हो, तो 25 रुपये का दुःख ही हाथ लगेगा। आय 150 रुपये तक बढ़ जाए और इसी बीच उपभोग 200 रुपये तक चला जाए, तब भी जीवन में दुःख ही दुःख होंगे। अतः आय और आवश्यकताओं के बीच अंतर कम करना आवश्यक है।”<sup>5</sup>

संपूर्ण साम्यवाद वर्ग-संघर्ष पर आधारित है। यह वर्ग-संघर्ष असीम उपभोग के कारण ही उत्पन्न होता है। भारतीय तत्वज्ञान जब वर्ग-संघर्ष का खंडन करता है, तब उसका तात्पर्य ही होता है कि उसने अधिकाधिक उपभोग को नियंत्रित कर लिया है तथा अधिकाधिक उपभोग के बजाय न्यूनतम उपभोग को अपना आदर्श बनाया है। दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार- “मनुष्य की प्रकृत भावनाओं का संस्कार करके उसमें अधिकाधिक उत्पादन, समान वितरण तथा संयमित उपयोग की प्रवृत्ति पैदा करना ही आलथक क्षेत्र में संस्कृति का कार्य है। इसमें ही तीनों

का संतुलन है।”<sup>6</sup> इसके साथ ही दीनदयाल उपाध्याय कहा करते थे- “यदि समाज को सुखी और संतुष्ट रखना है, तो पर्याप्त मात्रा में वितरणोन्मुखी उत्पादन होना चाहिए। ग्राहकोन्मुखी वितरण व्यवस्था होनी चाहिए। यह तभी संभव है जब सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही उत्पादन का उद्देश्य हो।”<sup>7</sup>

### पूँजीवाद और समाजवाद का निषेध

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का मानना था कि कोई भी दर्शन तभी चिरंजीवी हो सकता है, जब वह मानवता का समग्रता से विचार करे। पश्चिम प्रेरित अर्थशास्त्र अधिकाधिक धन उत्पादन और अधिकाधिक उपभोग के एक वर्तुल चक्र में ही घूमता रहता है, अतः यह अधूरा एवं भोगवादी चिंतन है। पूँजीवाद और समाजवाद दोनों ही आर्थिक प्रणालियाँ उपभोग-प्रधान हैं, क्योंकि दोनों ही अर्थ और काम को ही मानव जीवन का लक्ष्य मानती हैं। दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार यह अप्राकृतिक एवं अमर्यादित आर्थिक व्यवस्था है। दीनदयाल उपाध्याय पूँजीवाद और मार्क्सवाद को एक ही सिक्के के दो पहलू मानते थे। उनका मानना था कि इन दोनों चिंतन में कोई मौलिक अंतर नहीं है। मोटे तौर पर दोनों दर्शन मनुष्य को एक आर्थिक प्राणी मानकर चलते हैं और मानते हैं कि यदि उसकी भौतिक आवश्यकताएँ पूरी हो जाए, तो वह सुखी हो सकता है। पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनों की परिणति संपत्ति के विशाल केंद्रीकरण एवं एकाधिकार में हो जाती है। पूँजीवाद के शोषण की प्रतिक्रियास्वरूप मार्क्स ने साम्यवादी व्यवस्था दी, किंतु उसकी भी विश्व दृष्टि वही थी। दोनों दर्शनों में केवल एक ही मुद्दे को लेकर विवाद है कि संपत्ति पर नियंत्रण किसका हो- व्यक्ति का या राज्य का? साम्यवाद राज्य का नियंत्रण चाहता है और पूँजीवाद व्यक्ति का नियंत्रण चाहता है। इसलिए अपने मौलिक रूप में ये दोनों विचारधाराएँ भौतिकवादी हैं। इन दोनों ही व्यवस्थाओं में व्यक्ति की उपेक्षा होती है।

पूँजीवाद एवं साम्यवाद दोनों ने केवल ‘आर्थिक मनुष्य’ (Economic Man) का विचार अपने सामने रखकर नीतियाँ निर्धारित की हैं, जो अर्थ और काम को ही जीवन का एकमात्र पुरुषार्थ मानती हैं। वहीं दीनदयाल उपाध्याय अपनी अर्थनीति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों को महत्व देते थे। वे ‘संपूर्ण मानव’ (Whole Man) को इकाई मानकर चलते थे। उनके अनुसार- “जब तक एक-एक व्यक्ति की विशिष्टता-विविधता को ध्यान में रखकर हम उसके विकास की चिंता नहीं करेंगे, तब तक मानवता की सच्ची सेवा नहीं हो सकती। समाजवाद और पूँजीवाद दोनों ने मनुष्य को व्यवस्था के निर्जीव यंत्र का एक पुर्जा मात्र बना डाला। एक स्वतंत्र जुलाहे को समाप्त कर उसे विशाल कारखाने का मजदूर बना दिया गया। दर्जी के स्थान पर रेडीमेड कपड़ा ला कर रख दिया गया। मनुष्य अर्थात् एक जंतु जो 8 घंटे यंत्रवत मजदूरी करें और 16 घंटे खाए। इस प्रकार कार्य और मजदूरी के बीच एक दीवार खड़ी कर दी गई।”<sup>8</sup> यही मनुष्य का अमानवीकरण है। दीनदयाल उपाध्याय इस व्यवस्था के खिलाफ थे। वे आलथक लोकतंत्र तथा विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था के पक्षधर थे।

### आर्थिक-लोकतंत्र

पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारतीय जनमानस के पारखी थे। वे जानते थे कि भारतवासी आत्मा की स्वतंत्रता में विश्वास करते हैं, इसलिए वे इसे हर कीमत पर अक्षुण्ण रखना चाहते थे। अतः उन्होंने भारत के श्रेष्ठतम विकास के प्रयास में अर्थव्यवस्था के लिए आर्थिक-लोकतंत्र का आदर्श प्रस्तुत किया। दीनदयाल उपाध्याय लोकतंत्र को केवल राजनीतिक जीवन का आयाम नहीं मानते। उनका मत है ‘प्रत्येक को वोट’ जैसे राजनीतिक प्रजातंत्र का निष्कर्ष है, वैसे ही ‘प्रत्येक को काम’ यह आर्थिक प्रजातंत्र का मापदंड है।”<sup>9</sup> वे कहते हैं, हमारा आर्थिक कार्यक्रम प्रजातंत्र का संरक्षक और पोषक होना चाहिए। राष्ट्र की शासन व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को सहभागी बनाना ही प्रजातंत्र का उद्देश्य है, किंतु राजनीतिक-प्रजातंत्र बिना आर्थिक-प्रजातंत्र के नहीं चल सकता। जो अर्थ की दृष्टि से स्वतंत्र है, वही राजनीतिक दृष्टि से अपना मत स्वतंत्रता पूर्वक अभिव्यक्त कर सकेगा। भीष्म पितामह जैसे व्यक्ति को भी आर्थिक परतंत्रता के कारण ही आपने राजनीतिक विचारों पर प्रतिबंध लगाना पड़ा तथा वे सभा में अन्याय का प्रतिकार न कर सके। उन्होंने स्वीकार किया है कि व्यक्ति अर्थ का दास होता है-अर्थस्य पुरुषो दासः। अतः अर्थ की स्वतंत्रता आवश्यक है।

प्रत्येक को काम के अधिकार की व्याख्या करते हुए दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं- “काम प्रथम तो जीवकोपार्जनीय हो तथा दूसरे व्यक्ति को उसे चुनने की स्वतंत्रता हो। यदि काम के बदले में राष्ट्रीय आय का न्यायोचित भाग उसे नहीं मिलता हो, तो उसके काम की गिनती ‘बेगार’ में होगी। इस दृष्टि से न्यूनतम वेतन, न्यायोचित वितरण तथा किसी न किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था आवश्यक हो जाती है।”<sup>10</sup>

इस प्रकार आर्थिक लोकतंत्र का आशय है- हर व्यक्ति को उसकी क्षमता और रुचि के अनुरूप कार्यावसर। किसी भी अर्थव्यवस्था के अच्छे होने का मापदंड है कि वह अपने आने वाली पीढ़ियों को कार्यावसर देती है या नहीं। दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि- “मानव को पेट और हाथ दोनों मिले हुए हैं। यदि हाथों को काम न मिले और पेट को खाना मिलता रहे, तो भी मनुष्य सुखी नहीं रहेगा। अतः प्रत्येक को काम अर्थव्यवस्था का आधारभूत लक्ष्य होना चाहिए।”<sup>11</sup> अर्थव्यवस्था में सब प्रकार की बेरोजगारी- अल्प बेरोजगारी, अदृश्य बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी समाप्त होकर देश के प्रत्येक क्षमतावान व्यक्ति को रोजगार के अवसर उपलब्ध होने चाहिए। इस प्रकार दीनदयाल उपाध्याय का जोर पूर्ण-रोजगार अथवा हर हाथ को काम देने वाली अर्थव्यवस्था बनाने पर था।

### विकेंद्रित अर्थव्यवस्था

विकेंद्रित अर्थव्यवस्था आर्थिक-लोकतंत्र का अनिवार्य परिणाम है। दीनदयाल उपाध्याय विकेंद्रीकरण को अर्थव्यवस्था का केंद्रीय मुद्दा मानते हैं। वह बड़ी-बड़ी उत्पादन इकाइयों एवं बड़े बड़े उद्योगों के सहारे ही अर्थव्यवस्था चलाने के पक्षधर नहल थे, क्योंकि इससे देश में केंद्रीकरण पनपता है, जो विषमता और बेरोजगारी को बढ़ाता है। उनके अनुसार- “हमें व्यक्ति और परिवार आधारित लघुयंत्राधिष्ठित (कुटीर और छोटे-छोटे उद्योग आधारित) आर्थिक विकेंद्रीकरण की प्रणाली विकसित करने पर जोर देना चाहिए और श्रम-प्रधान विकेंद्रित ग्रामोद्योगों को सुदृढ़ करना चाहिए।”<sup>12</sup>

दीनदयाल उपाध्याय समर्थ व स्वावलंबी ग्राम पंचायतों व जनपद व्यवस्था के पक्षधर हैं। वे ऐसी अर्थव्यवस्था चाहते हैं, जिसका आधार ग्राम तथा जनपद हो। वे मानते हैं कि ग्रामों को उजाड़ने वाले आर्थिक नियोजन अंततः भारत को उजाड़ने वाले सिद्ध होंगे। गाँवों और शहरों का विषम विकास भारत की अखंडता के लिए भी घातक होगा। अतः वे कहते हैं- “हमें विकेंद्रित अर्थव्यवस्था चाहिए। इसके लिए स्वयंसेवी क्षेत्र (Self Employed Sector) को खड़ा करना होगा। स्वयंसेवी क्षेत्र जितना बड़ा होगा, उतना ही मनुष्य आगे बढ़ सकेगा, मनुष्यता का विकास हो सकेगा, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का विचार कर सकेगा। प्रत्येक मनुष्य की व्यक्तिशः आवश्यकताओं और विशेषताओं का विचार करके उसे काम देने पर उसके गुणों का विकास हो सकता है। यह विकेंद्रित अर्थव्यवस्था भारत ही संसार को दे सकता है। वे आगे कहते हैं आर्थिक क्षेत्र में स्वतंत्रता समाप्त हुई तो राजनीतिक क्षेत्र में भी समाप्त हो जाती है। समाजवाद और प्रजातंत्र साथ-साथ नहीं चल सकते। सच्चे प्रजातंत्र का आधार आर्थिक विकेंद्रीकरण ही हो सकता है। अतः सिद्धांततः हमें छोटे-छोटे उद्योगों को ही अपनाना चाहिए।”<sup>13</sup>

दीनदयाल उपाध्याय ऐसे विकेंद्रित उद्योगों की स्थापना करना चाहते हैं, जिसकी देश की कृषि से लयबद्धता हो सके, जो कृषि के साथ सुसंबद्ध हो सके तथा कृषि से जनसंख्या का भार कम कर सके। दीनदयाल उपाध्याय पश्चिमी देशों का अनुसरण करते हुए प्रारंभ में ही बड़े उद्योग स्थापित करने के विरुद्ध हैं। उनका मानना है कि हमारे यहाँ पूँजी की कमी है, जबकि श्रम बहुतायत में उपलब्ध है। अतः थोड़े लोगों तथा सरल औजारों के साथ छोटी-छोटी इकाइयाँ ही आज की परिस्थिति में हमारे लिए सर्वोत्तम हैं अर्थात् कृषि तथा कृषि आधारित उद्योगों के साथ-साथ देश में जो कुटीर एवं छोटे-छोटे उद्योग चल रहे हैं तथा जो कारीगर उन में काम कर रहे हैं, उन्हें आधार बनाकर विकास की व्यवस्था करनी चाहिए। प्रारंभ में ही बड़े उद्योग हमारे देश का विकास नहीं कर पाएँगे।

दीनदयाल उपाध्याय सीधे बड़े उद्योगों के बजाय जापान की तरह छोटे उद्योगों के माध्यम से क्रमशः बड़े उद्योगों की ओर देश का विकास करना चाहते हैं। जापान का उदाहरण देते हुए वे कहते हैं- “औद्योगिकीकरण के जापान और यूरोप में पाए जाने वाले स्वरूपों में पर्याप्त भिन्नता है। जापान ने लघु उद्योगों, कुटीर उद्योगों तथा लघुयंत्राधिष्ठित मध्यम उद्योगों की विकेंद्रित प्रणाली द्वारा ग्रामीण अंचल में रचना की। जापान में जनसंख्या पर्याप्त

है, उसने भारी यंत्रों का आयात करने के स्थान पर श्रम शक्ति का उचित उपयोग कर पूँजी संचय किया, उत्पादन बढ़ाया और बेकारी भी दूर की। जापान ने यूरोप की तरह आर्थिक विकास के लिए बड़ी संख्या में किसानों को गाँव और खेतों से दूर नहीं हटाया, बल्कि अपने सामाजिक जीवन की परिधि में ही आलथक नई रचना पर बल दिया। भारतीय परिस्थितियाँ भी जापान के समान हैं।”<sup>14</sup> जापान से बढ़कर हमारे पास अपना स्वयं का कच्चा माल, खनिज संसाधन और विश्व का सबसे बड़ा बाजार उपलब्ध है। अतः छोटे उद्योगों के माध्यम से विकास करना ज्यादा उचित है।

ऐसा नहीं है कि दीनदयाल उपाध्याय गाँधीजी की तरह बड़े उद्योगों का घोर विरोध करते हैं। वे बड़े उद्योगों की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं, किंतु छोटे उद्योगों के पूरक के रूप में, भक्षक के रूप में नहीं। उनका मत है कि उत्पादक वस्तुओं के लिए बड़े कारखाने उचित हैं, किंतु उपभोक्ता वस्तुएँ छोटे कारखानों में ही बननी चाहिए। इस प्रकार वे विकेंद्रीकरण के लिए बड़े उद्योगों का सर्वथा विरोध नहीं करते, बल्कि बड़े उद्योगों को छोटे उद्योगों पर अवलंबित करना चाहते हैं। इस प्रकार वे छोटे और बड़े उद्योगों में समन्वय करना चाहते हैं, जिसमें दोनों और से योगदान हो। इस तरह हम देखते हैं कि भारी एवं आरोपित औद्योगिकीकरण के विरुद्ध होते हुए भी दीनदयाल उपाध्याय स्वस्थ औद्योगिक विकास के समर्थक हैं।

### लघु एवं कुटीर उद्योगों में विश्वास

पंडित दीनदयाल उपाध्याय देश की मानवीय शक्ति और बेकारी देखकर लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के पक्षपाती थे। वे बड़ी-बड़ी उत्पादन इकाइयों एवं बड़े-बड़े उद्योगों के सहारे ही अर्थव्यवस्था चलाने के पक्षधर नहीं थे। वो ऐसी औद्योगिक व्यवस्था के पक्षधर थे, जो कृषि के साथ सुसंबद्ध हो सके और कृषि से जनसंख्या का भार कम कर सके। उनका मानना था कि बढ़ती जनसंख्या का खेती पर से भार घटाने, कृषि से उत्पन्न कच्चे माल का उपयोग करने और कृषि को आवश्यक साधन सामग्री, यंत्र औजार प्रदान करने, रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने, देश की निर्यात क्षमता बढ़ाने, स्वावलंबन आदि कई दृष्टियों से औद्योगिकीकरण अत्यंत आवश्यक है, किंतु वे कुछ विशेष क्षेत्रों एवं विशेष वस्तुओं के उत्पादन को छोड़कर शेष सबके लिए बड़े उद्योगों के स्थान पर श्रम-प्रधान लघु एवं कुटीर उद्योगों के अधिक पक्षधर थे।

दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं- “राजनीति में व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को जिस प्रकार तानाशाही नष्ट करती है, उसी प्रकार अर्थनीति में व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को भारी पैमाने पर किया गया औद्योगिकीकरण नष्ट करता है। ऐसे उद्योगों में व्यक्ति स्वयं भी मशीन का एक पुर्जा बनकर रह जाता है। इसलिए तानाशाही की भाँति ऐसा औद्योगिकीकरण भी वर्जनीय है।”<sup>15</sup>

आर्थिक क्षेत्र में व्यक्ति की यह रचना शक्ति तभी प्रकट हो सकती है, जब विकेंद्रीकरण के आधार पर उद्योगों की व्यवस्था हो। विकेंद्रीकरण का तात्पर्य मशीनों का परित्याग नहीं है, वरन उन मशीनों का प्रयोग है जो मनुष्य को बेकार न कर दे। लघु उद्योगों के विकास से बेकारी की समस्या का समाधान होगा, गाँव अधिकाधिक स्वावलंबी होंगे तथा व्यक्ति की प्रेरणा मिलने के कारण वस्तु के गुण तथा उत्पादन दोनों में वृद्धि होगी। लघु एवं कुटीर उद्योगों के समर्थक होने का तात्पर्य यह नहीं है कि दीनदयाल उपाध्याय भारी उद्योगों के प्रतिकूल नहीं थे, पर वे उन्हीं भारी उद्योगों को चाहते थे, जो लघु-उद्योगों को चलाने के लिए आवश्यक है या सुरक्षा-संबंधी है।

उद्योगों के क्षेत्र में उन्होंने ‘अपरमात्रिक उद्योग नीति’ की संकल्पना दी थी। अपरमात्रिक उद्योग नीति वास्तव में उत्पादन संबंधी एक मार्गदर्शक सिद्धांत है। अपरमात्रिक का अर्थ है- स्वावलंबन से कुछ अधिक उत्पादन करने वाली उद्योग नीति। दीनदयाल उपाध्याय देश में ऐसा औद्योगिक ढांचा बनाना चाहते थे जिसके द्वारा आवश्यक वस्तुओं के मामले में देश स्वावलंबी बन सके और अंतरराष्ट्रीय गुणवत्ता स्तर की वस्तुओं का निर्यात करके देश के लिए आवश्यक वस्तुओं का आयात करने की क्षमता निर्मित कर सके। प्रो. विश्वेश्वरैया को उद्धृत करते हुए दीनदयाल उपाध्याय ने कहा था कि “औद्योगिक नीति का विचार करते समय हमें सात बातों पर ध्यान देना चाहिए- मनुष्य, माल, मुद्रा, मशीनरी, प्रबंध, शक्ति और बाजार। वास्तव में यह सातों परस्पर निर्भर एवं परस्पर पूरक हैं। अतः इनके बीच योग्य संतुलन बनाकर ही हम समुचित औद्योगिक विकास कर सकते हैं।”

### अत्यधिक यांत्रिकीकरण का विरोध

पंडित दीनदयाल उपाध्याय अत्यधिक यांत्रिकीकरण के विरोधी थे। मशीन के संदर्भ में उनका ऋचतन मानवीय दृष्टिकोण और भारतीय परिस्थितियों पर आधारित है। वह मशीन संबंधी निर्णय मानव को केंद्र में रखकर करते हैं। वे मानते हैं कि मशीन मनुष्य की सुविधा के लिए है, उसका स्थान लेने के लिए नहीं। वे कहते हैं- “हमें मनुष्यत्व का संरक्षण करना हो तो उसे सबसे पहले यंत्र की दासता से मुक्त कराना होगा। आज मनुष्य यंत्रों पर शासन नहीं कर रहा, यंत्र उस पर शासन कर रहे हैं। यंत्र के इस मोह के पीछे पड़ जाने के कारण मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को अधिकतम बढ़ाने तथा तृप्त करने के लिए दौड़-धूप करता है। इसलिए संपूर्ण मानव-जीवन का विचार करते समय हमें उत्पादन, वितरण तथा उपभोग तीनों का एकत्रित विचार करना होगा। उत्पादन तथा उपभोग दोनों को, सार्थक जीवन जीते हुए प्राप्त कर सकें, ऐसी अर्थव्यवस्था हमें विकसित करनी होगी।”<sup>16</sup>

दीनदयाल उपाध्याय का मानना था कि मनुष्य केवल हाथ-पैरों से उत्पादक नहीं बनता, उत्पादन के लिए औजार तथा मशीन आवश्यक है। किंतु मशीन का चुनाव बहुत ही सावधानीपूर्वक होना चाहिए। वह देश के प्रौद्योगिकीय स्तर से भिन्न नहीं होना चाहिए। मशीन के चुनाव का परिणाम सभी को प्रभावित करता है। यदि योग्य मशीन रही तो हम श्रमिक को उत्पादक बना सकते हैं अथवा वह केवल उपभोक्ता बनकर रह जाएगा। अतः वे कहते हैं कि “मशीन देश-काल-परिस्थिति निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष होना चाहिए। मशीन विज्ञान की आधुनिक प्रगति की उपज है, किंतु प्रतिनिधि नहीं। ज्ञान किसी देश-विदेश की बपौती नहीं, किंतु उसका प्रयोग प्रत्येक देश अपनी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार करता है। अतः हमारी मशीन हमारी आवश्यकताओं के अनुकूल ही होनी चाहिए। वह हमारे सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन मूल्यों की पोषक नहीं, तो कम से कम अवरोधी अवश्य होनी चाहिए।”<sup>17</sup>

दीनदयाल उपाध्याय यंत्रारोपण के बजाय यंत्रों के स्वदेशानुकूल विकास के पक्षपाती थे। वे छोटे व कुटीर उद्योगों के संचालन तथा कारीगरों के सहयोग के लिए आधुनिकतम सुलभ यंत्र चाहते थे। उनका मानना था कि पूँजीपतियों को उत्पादन का एकाधिकारी बनाने वाले यंत्र हमारी अर्थव्यवस्था के शत्रु हैं। वे लिखते हैं- “हम अपने देश में उपलब्ध उत्पादन उपकरणों के साथ मेल खाने वाली मशीन का प्रयोग करें। श्रम और शक्ति, पूँजी और प्रबंध, माल और माँग- ये सब मशीन के स्वरूप को निश्चित करने वाले होने चाहिए। ...किंतु आज कुछ ऐसा हो रहा है कि हम मशीन को ध्रुव मानकर उसके अनुसार शेष सबको बदलने का विचार करते हैं। मशीन के लिए मनुष्य को बदलने पर विवश कर रहे हैं। संपूर्ण उत्पादन प्रणाली एक मशीन पर केंद्रित हो गई है। ....आज देश में जहाँ एक ओर मशीन के श्रेष्ठालु भक्त हैं, तो दूसरी ओर कट्टर दुश्मन भी मौजूद हैं। ....वास्तव में मशीन ना तो मनुष्य की शत्रु है, ना मित्र। वे एक साधन हैं तथा उनकी उपादेयता समाज की अनेक शक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया पर निर्भर करती है।”<sup>18</sup>

दीनदयाल उपाध्याय न तो मशीन के भक्त हैं और न विरोधी, किंतु वे मशीन को समाज की व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था पर हावी नहीं होने देना चाहते। जब समाज एवं अर्थव्यवस्था पर मशीन हावी हो जाती है, तो उसमें केंद्रीकरण का दोष आता है। केंद्रीकरण से पूँजीवाद और समाजवाद की दोषपूर्ण क्रिया प्रतिक्रिया होती है। अतः एक तनावपूर्ण और सहज प्रक्रिया से विवेकपूर्वक बचने के लिए दीनदयाल उपाध्याय पुरजोर आग्रह करते हैं। वे कहते हैं- “मशीन पूँजी का अत्यंत महत्वपूर्ण स्वरूप है। मानव के श्रम को सुखकर बनाने तथा उसकी उत्पादकता एवं क्षमता को बढ़ाने के लिए ही यंत्र का आविष्कार हुआ है। यंत्र मानव का सहायक है, प्रतिस्पर्धा नहीं, किंतु जहाँ मानव श्रम को एक विनिमय की वस्तु समझकर उसका मूल्यांकन रूपों में होने लगा, वहाँ मशीन मानव की प्रतिस्पर्धा बन गई। यह पूँजीवादी दृष्टिकोण का दोष है। यदि मशीन मानव का स्थान लेकर उसे भूखा मारे, तो वह उन उद्देश्यों के विपरीत होगा जिसकी सिद्धि के लिए यंत्र का आविष्कार हुआ। जड़ मशीन इसके लिए दोषी नहीं। यह बुराई उस अर्थव्यवस्था की है जिसमें साध्य-साधन विवेक लुप्त हो जाता है।”<sup>19</sup> तात्पर्य यह है कि मशीन साधन मात्र ही है। पर जब हम उसे साध्य समझने की भूल करते हैं, तो उससे मानव का अहित होता है। मशीन मानव की सहायिका है, उसका स्थानापन्न नहीं। मनुष्य और मशीन के कार्यों में सहयोग और सामंजस्य होना चाहिए, विरोध नहीं।

इन सबके सिवा दीनदयाल उपाध्याय ने आर्थिक दृष्टि से एक और परिकल्पना (Concept) की है, वह

है 'अर्थायाम'। यह अर्थायाम क्या है? इस संबंध में उन्होंने कहा है कि अर्थायाम समाज की ऐसी अर्थ रचना है, जिसमें ना अर्थ का अभाव हो और ना ही प्रभाव हो। उत्पादन, वितरण और उपभोग इन तीनों के बीच संतुलन बिठाने वाली अर्थ-रचना को उन्होंने अर्थायाम कहा है। यदि दीनदयाल उपाध्याय के अर्थचिंतन को सरल भाषा में कहना हो तो तीन डायरेक्शन निकलते हैं- हर पेट को रोटी, हर हाथ को काम और हर खेत को पानी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वदेशी भावना, स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता, हर हाथ को काम- हर खेत को पानी, व्यक्ति के न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति, न्यूनतम जीवन स्तर की प्रत्याभूति (गारंटी), सक्षम एवं निराश्रित लोगों को सामाजिक सुरक्षा जैसे मूलभूत उद्देश्य पंडित दीनदयाल उपाध्याय के आलथक चिंतन के प्रमुख बिंदु हैं। ये विषय आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने तब थे।

राजनीति विज्ञान विभाग,  
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,  
वाराणसी-221005

#### सन्दर्भ -

1. त्रिपाठी, नरेश चन्द्र (नवंबर- 2015) 'राष्ट्रधर्म' (पं. दीनदयाल उपाध्याय : चिंतन विशेषांक), संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ, पृष्ठ. 69
2. उपाध्याय, दीनदयाल (2009) 'भारतीय अर्थ-नीति विकास की एक दिशा', लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ. 121
3. शर्मा, महेशचंद्र (2014), 'आधुनिक भारत के निर्माता : पंडित दीनदयाल उपाध्याय', प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ. 123
4. अग्रवाल, डॉ. रवींद्र (2018) 'पं. दीनदयाल जी प्रेरक विचार' (संपादित), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. 123-124
5. मालवीय चिंतामणि (2018) 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय : दर्शन और दार्शनिक', मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृष्ठ. 126
6. उपाध्याय, दीनदयाल (2014) 'राष्ट्र चिन्तन', लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ. 72
7. त्रिवेदी, अशोक (2016) 'मृग मरीचिका : धारणक्षम अर्थनीति की खोज', ग्राहक सेवा प्रतिष्ठान, इन्दौर, पृष्ठ. 96
8. उपाध्याय, दीनदयाल (2014) 'राष्ट्र चिन्तन', लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ. 79
9. शर्मा, महेशचंद्र (2015) 'दीनदयाल उपाध्याय कर्तृत्व एवं विचार', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. 247
10. शर्मा, महेशचंद्र (2014), 'आधुनिक भारत के निर्माता : पंडित दीनदयाल उपाध्याय', प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ. 94
11. गुप्ता, डॉ. बजरंगलाल (2018) 'हिन्दू अर्थ-चिंतन : दृष्टि एवं दिशा', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. 75
12. उपाध्याय, दीनदयाल (2010) 'राष्ट्र जीवन की दिशा', लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ. 128
13. उपाध्याय, दीनदयाल (2014) 'राष्ट्र चिन्तन', लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ. 80
14. मालवीय, चिंतामणि (2018) 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय : दर्शन और दार्शनिक', मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृष्ठ. 115-116
15. उपाध्याय, दीनदयाल (2014) 'राष्ट्र चिन्तन', लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ. 73
16. केलकर, भालचन्द्र कृष्णाजी (2014) 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड-3', सुरुचि प्रकाशन, नई-दिल्ली, पृष्ठ. 69
17. उपाध्याय, दीनदयाल (2012) 'एकात्म मानववाद', भारतीय जनता पार्टी, नई दिल्ली, पृष्ठ. 60
18. उपाध्याय, दीनदयाल (2009) 'भारतीय अर्थ-नीति विकास की एक दिशा', लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ. 80-84
19. उपाध्याय, दीनदयाल (2012) 'एकात्म मानववाद', भारतीय जनता पार्टी, नई दिल्ली, पृष्ठ. 59

## कबीर का सामाजिक-राजनैतिक दर्शन : बेगमपुरा या 'अमर देसवा'

आफरीन खान

भारतीय चिंतन 'अनेकता में एकता' के सिद्धांत को साकार रूप प्रदान करता है। वैदिक विश्व-दृष्टि, उपनिषदों का दर्शन, बौद्ध, जैन, सिख, इस्लाम एवं ईसाई धर्मों का सम्मिश्रण इसका उदहारण है। प्राचीन, मध्ययुगीन एवं आधुनिक भारत में अनेक भिन्नताओं के होते हुए भी व्यवहार, दायित्व, जाति, लौकिक-प्रक्रिया, न्याय तथा राज्य के सिद्धांतों में पर्याप्त समानता और निरंतरता पाई जाती है। इस्लाम के आगमन से भिन्नताएं एवं विरोधाभास उत्पन्न हुए किन्तु मध्यकाल के भक्तिकालीन कवियों व संतों तथा सूफी विचारकों ने सूफी एवं भक्ति परम्पराओं द्वारा समन्वय, सहयोग व एकीकरण के प्रयास किये जिसके फलस्वरूप एक समन्वयवादी हिन्दुस्तानी संस्कृति का विकास हुआ। चाहे वे चिश्ती, अल्वी, बेक्ताशी की सूफी परम्परा हो या उत्तर में रामानंद, नानक, रविदास, सूरदास, कबीर और दक्षिण में अन्नमाचार्य, त्यागराज इत्यादि की भक्ति परम्परा, सभी ने रूढ़ियों, अंधविश्वासों और जात-पात के भेद भुलाकर समाज के नवनिर्माण का सन्देश दिया।

इन मध्यकालीन विचारकों में कबीर का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कबीर न केवल एक संत और समाज सुधारक के रूप में बल्कि एक राजनीतिक चिंतक के रूप में भी हमारे सामने आते हैं। कबीर ने न केवल अपने युग के लोगों को प्रभावित किया बल्कि आज भी उनका प्रभाव हमें स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अपने समकालीन एवं आधुनिक युग के विभिन्न विचारकों पर इनका प्रभाव पड़ा। डॉ. आंबेडकर ने अपने तीन गुरु माने थे, जिनमें कबीर उनके पहले गुरु हैं, बुद्ध और फुले उनके अन्य गुरु। स्पष्ट है कि कबीर ने उनको गहराई से प्रभावित किया था।<sup>1</sup> भारतीय गंगा जमुनी तहजीब जो हिंदुस्तान की पहचान बन कर हमारे सामने आती है उसके निर्माण में कबीर और उनके समकालीन भक्ति संतों तथा सूफी संतों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। कबीर ने तत्कालिक समाज को आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं साधना के स्तर पर जीवन के समन्वय का संदेश दिया।

'समन्वय और समरसता का संदेश' कबीर के व्यक्तित्व का सार्थक पर्याय हैं। अपनी इसी विशिष्टता की वजह से वह सहस्राब्दी के प्रथम संक्रांति पर्व के नायक बने। कबीर के समन्वय का ढंग भी उनकी तरह निराला था। उन्होंने कभी भी किसी पक्ष के दोषों-दुर्गुणों को, उसके अवगुणों या कमियों को छिपाने के बजाय बेबाक फक्कड़पन से इन सबको तार-तार कर दिया। रूई की तरह समाज के सभी वर्गों को धुनकर, एक सच्चे जुलाहे की भाँति गुणों के धागोंको उकेरा-निकाला और फिर अपनी अद्भुत रीति से समन्वय-सद्भाव की चादर बुन डाली।<sup>2</sup> कबीर ने न केवल जीवन के आध्यात्मिक व दार्शनिक स्तर पर ही नहीं बल्कि जीवन के व्यावहारिक स्तर पर भी अंतर्विरोधों को मिटाने वाला समन्वयवादी दृष्टिकोण प्रदान किया। एक ओर सत्तालोलुप और भोगविलास में लिप्त सुल्तान, राणाओं सहित सभी कुलीन वर्गीय राजाधिकारियों को दंभ व दमन से हटकर दीन-दुखियों के प्रति दयालु रहने का सन्देश दिया तो दूसरी ओर पीड़ित-शोषित, निर्धन जनमानस को भी कर्म, भक्ति तथा सत्संग का निर्भीक रास्ता दिखाया।

आमतौर से कबीर पर कवियों और कुछ मध्यकालीन इतिहासकारों ने थोड़ा बहुत लिखा है, किन्तु उनका लेखन ऐतिहासिक, धार्मिक अथवा साहित्यिक दृष्टीकोण पर आधारित है। कबीर के राजनीतिक दृष्टीकोण पर ज्यादा नहीं लिखा गया है। परन्तु कवियों के भी अपने राजनीतिक विचार होते हैं और उस समय के कवियों के भी अपने राजनीतिक विचार थे। उस समय भी शंकरदेव, बासप्पा, बस्वन्ना, दादू, नानक, रजब, तुलसी और कबीर जैसे संत, कवि और समाज सुधारक थे जिन्होंने तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक मुद्दों पर गहन चिंतन किया, परन्तु उनके विचारों के इस पहलू पर बहुत ध्यान नहीं दिया गया। अतः इन संतो-दर्शनिकों के विचारों के इस पक्ष का अध्ययन अत्यंत रोचक और लाभदायक सिद्ध होगा, खासकर कबीर के विचारों का जिसमें बहुत ही प्रगतिशील चिंतन का दर्शन होता है। मध्यकालीन युग में कबीर का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि उन्होंने जिस प्रकार की कविता की और जिस तरीके से वह सबको साथ लेकर चलने की, विशेषकर जो गरीब बहुजन समाज की सोच को आवाज दी, उससे समाज परिवर्तन का एक नया दृष्टीकोण दिया जिसे आज सबाल्टर्न विचारधारा कहते हैं। कबीर इसी सबाल्टर्न विचारधारा के प्रवर्तक के रूप में सामने आते हैं। मध्ययुगीन काल में कबीर एक ऐसे समतावादी समाज की बात करते हैं जहाँ आर्थिक समानता होगी, करमुक्त व्यवस्था होगी। कबीर का राज्यविहीन-वर्गविहीन-जातिविहीन आदर्श समाज, जिसे वो बेगमपुरा या 'अमर-देसवा' या अमरापुर की संज्ञा देते हैं, रामराज्य या आदर्श राज्य की ही संकल्पना है। वास्तव में ये विचार अत्यंत ही प्रगतिशील और आधुनिक हैं और वे जाति या धर्म से ऊपर उठकर एक समतावादी और समन्वयवादी आदर्श समाज की परंपरा को आगे ले जाने का प्रयास कर रहे थे। कबीर ने मजहब, जाति या वर्ग पर आधारित भेद-भाव और ऊँच-नीच का पूर्ण विरोध करते हुए, बाह्य आडम्बरों को समूल उखाड़ फेंकने का सन्देश दिया। राजकीय सत्ता, अर्थिक संपन्नता, सामाजिक प्रतिष्ठा एवं धार्मिक रिवाजों को तुच्छ समझते हुए व्यक्ति को आत्मीय चेतना और आन्तरिक ब्रह्म को पहचानने के लिए प्रेरित किया, जिससे मानवीय समानता एकता एवं प्रतिष्ठा को कायम किया जा सके। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कबीर ने भक्ति, प्रेम और सदाचरण से युक्त निर्भीक सत्संगी संगठन का रास्ता दिखाया। अतः कबीर के सामाजिक और राजनीतिक विचारों की चर्चा करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

कबीर के समय-काल में सत्ता के दो केन्द्र थे एक मुल्ला और दूसरा पंडित। दोनों ही अपने-अपने समुदाय के निर्विवाद धर्मगुरु थे। उनके विरुद्ध बोलने या उनसे सवाल करने का साहस किसी में नहीं था। कबीर देख रहे थे कि पंडित और मुल्ला किस तरह धर्म के नाम पर वर्णव्यवस्था, अस्पृश्यता, हज, पूजा, नमाज, तीर्थ और परलोक का पाखंड लोगों में भर रहे थे, तथा इसकी आड़ में सामंत, साहूकार और व्यापारी उनका आर्थिक शोषण करके उनका जीवन नर्क बनाये हुए थे। कबीर साफ-साफ देख रहे थे कि मुल्ला-पंडित समाज की सत्ताधारी भौतिक शक्ति के साथ-साथ जनता की बौद्धिक शक्ति भी थे। इसलिए कबीर ने इस बात को अच्छी तरह समझ लिया था कि जनता के बौद्धिक नेतृत्व के लिए एक तीसरी बौद्धिक धारा को प्रवाहित करना होगा। यह तीसरी धारा आँखों देखी थी। कबीर ने दोनों से संवाद किया, पर उनका संवाद न मुल्ला को पसंद आया और न पंडित को। इसीलिए कबीर ने 'न-हिन्दू-न-मुसलमान' के सिद्धांत को अपनाया और मुल्ला-पंडित को नकारते हुए जनता का क्रान्तिकारी नेतृत्व किया। कबीर ने वेद-पुराण और कुरआन के विरुद्ध समाज को देखने और धर्म के मूल्यांकन का अपना अलग ही सौंदर्यशास्त्र विकसित किया। उन्होंने कहा था 'हमरा झगरा रहा न कोऊ, पंडित मुल्ला छोड़े दोऊ'।<sup>१</sup> कबीरदास निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उनका मार्ग, ज्ञान मार्ग था जिसमें गुरु का महत्व सर्वोपरि होता है।

कबीर एक स्वच्छंद विचारक थे। कबीरदास ने अपना सारा जीवन-ज्ञान देशाटन और साधु संगति से प्राप्त किया। ये पढ़े-लिखे नहीं थे परन्तु दूर-दूर के प्रदेशों की यात्रा कर साधु-संतों की संगति में बैठकर सम्पूर्ण धर्मों तथा समाज का गहरा अध्ययन किया। अपने इस अनुभव को इन्होंने मौखिक रूप से कविता में लोगों को सुनाया। कबीरदास का जन्म ऐसे समय में हुआ था जब हमारे देश में चारों तरफ अशांति और अव्यवस्था का बोलबाला था। विदेशी आक्रमणों से देश की जनता पस्त थी। अनेक धर्म और मत-मतान्तर समाज में प्रचलित थे। आर्थिक दशा

बड़ी दयनीय थी। ऐसे कठिन समय में जन्म लेकर इस युग दृष्टा महान संत ने देश की जनता को एक नया ज्ञान का ज्योतिर्मय मार्ग दिखाया।

### कबीर का राजनीतिक दर्शन- बेगमपुरा या अमर देसवा

कबीर के राजनीतिक चिंतन पर चर्चा 15वीं शताब्दी के बनारस की पृष्ठभूमि में ही होना चाहिये, जो कुलीन व उच्च वर्गीय प्राधान्य की संस्कृति एवं विचारधारा से संचालित था। इस चर्चा का केंद्र इसके राज्य की संरचना, कराधान पद्धति, अभिजात्य वर्गीय प्रभुत्व, इसकी जाति, वर्ग, धर्म एवं लैंगिक विशेषताओं तथा विभिन्न सबाल्टर्न समूहों के विरोध आंदोलनों में स्थित होना चाहिये। यद्यपि उस समय अभिजात्य वर्ग द्वारा सबाल्टर्न सामाजिक समूहों के उर्ध्ववाधर-एवं क्षैतिज गतिशीलता के खिलाफ प्रतिक्रिया व्यक्त की गई।<sup>1</sup> परन्तु कबीर ने सामंतवादी प्रतिक्रिया और अभिजात्यवर्ग द्वारा किये जाने वाले भेदभाव की कठोर निंदा की। वस्तुतः कबीर का समग्र साहित्य, समग्र जीवन दर्शन भारत की एकता, अखंडता, प्रगति, जातीय समरसता, सर्व-धर्म समन्वय, सामाजिक न्याय और नवीन मानव मूल्यों के प्रतिपादन का अद्वितीय दस्तावेज है। कबीर की वाणी सामाजिक क्रांति का आह्वान है।<sup>2</sup> रामविलास शर्मा लिखते हैं कि कबीर और तुलसी दोनों ने जाति की संरचना को पार करके वर्गीय संरचना पर ध्यान केन्द्रित किया है, जो उनकी रचनाओं एवं लेखन में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।<sup>3</sup>

कबीर के समकालीन समाज में इस्लामी सभ्यता का प्रभाव बहुत सशक्त था। स्वतंत्र सुल्तानों ने अपनी शक्ति का अच्छा विकास कर लिया था। उदाहरण के लिए, जौनपुर में फिरोज तुगलक, मालवा में खिलजी अमीर हुसंगशाह, गुजरात में सूबेदार शाह जफर खां, अहमदाबाद में अहमद शाह, दक्षिण में दौलताबाद में हसन गंगू और बंगाल में फकरुद्दीन आदि ने अपने स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना कर ली थी। तैमूर के आक्रमण के उपरांत दिल्ली का शासन लोदी वंश के हाथ में चला गया। बहलोल खां लोदी ने देश को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया। किंतु इस समय मेवाड़ के राणा सहित राजपूतों के गढ़, बहमनी राज्य, गुजरात, मालवा, जौनपुर और बंगाल के बीच शक्ति संघर्ष एवं युद्ध काफी बढ़ गये थे।<sup>4</sup> ऐसा प्रतीत होता है कि बाबर के द्वारा मुगल साम्राज्य की स्थापना (1530) के पूर्व, संघर्ष और उथल-पुथल की पृष्ठभूमि में अपने विचार दे रहे थे। इसी पृष्ठभूमि में इस्लामी एवं ब्रम्हाणी रूढ़िवादियों ने कबीर का खंडन एवं अवहेलना की किंतु कबीर आम लोगों में लोकप्रिय रहे। कुछ लोगों ने उन्हें सूफी भक्ति परंपरा के हिंदू सुधारक के रूप में स्वीकार किया तो कुछ समीक्षकों ने मुस्लिम प्रतिक्रियावादी के रूप में तथापि उपमहाद्वीप के नवीन मुस्लिम राज्य ने उन्हें कभी आत्मसात नहीं किया।

राजनीतिक दृष्टि से कबीर का युग अस्थिरता और अशांति का युग था। बादशाह, सामंत, राजकीय कर्मचारी वर्ग, सत्ता का प्रयोग अपने ऐशो आराम और प्रजा को सताने के लिये करते थे। यह युग शासक और शासित, पोषक और पोषित, धनी व निर्धन के मध्य विभक्त था। कबीर ने इन असमानताओं एवं शोषण का खुलकर विरोध किया जिसकी वजह से कई बार उन्हें सत्ता का विरोध झेलना पड़ा। कबीर के लिए मौजूदा सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के विरोध के लिए भक्ति एक विकल्प और एक तकनीक थी, भक्ति इससे बचने का एक मार्ग भी था। कबीर अपने विचार में एक भक्त, एक जुलाहा और एक विद्रोही बने रहे।

कबीर एक समतामूलक समाज के निर्माण की मांग करते हैं और इस मांग को करते-करते मौजूदा राज्य व्यवस्था से उनका मोहभंग हो जाता है और वह अपना एक अलग ही “राजनीतिक स्वप्नलोक (यूटोपिया)” बनाते हैं, जिसे वे कई बार बेगमपुरा कह कर पुकारते हैं” -

अवधू बेगम देस हमारा।

राजा-रंक-फकीर-बादसा सबसे कहैं पुकारा।

जो तुम चाहो परमपद को, बसिहो देस हमारा॥

जो तुम आये झीने होके, तजो मनकी भारा।

धरन-अकास-गगन कछु नाहीं, नहीं चंद्रन हितारा॥

**सत्त-धर्म की हैं महताबें, साहेब के दरबारा ।**

**कहैं कबीर सुनो हो प्यारे, सत्त-धर्म है सारा**

अर्थात्, कबीर कहते हैं कि अवधू, हमारा देश वह है जहाँ कोई गम नहीं है। यह बात हम राजा और भिखारी, फकीर और बादशाह सबसे पुकार-पुकार कर कह रहे हैं। अगर तुम परम पद को पाना चाहते हो तो हमारे देश में आकर बस जाओ। अगर तुम थककर चूर हो गए हो तो यहाँ मन का बोझ हलका कर लो। इस जगह जमीन, आसमान, चाँद-तारे कुछ भी नहीं। प्रभु के दरबार में सत्य और धर्म की महताबें जगमगा रही हैं। प्यारे भाई सुनो, कबीर कहते हैं कि सत्य-धर्म ही सब कुछ है और बाकी कुछ नहीं।<sup>9</sup>

कई बार अपने स्वप्नदेश को अमरदेस अथवा अमरापुर कहते हैं -

**जहवां से आयो अमर वह देसवा ।**

**पानी न पान धरती अकसवा, चाँद न सूर न रैन दिवसवा ।**

**बाम्हन छत्री न सूद्र बैसवा, मुगल पठान न सैयद सेखवा**

**आदि जोत, नहीं गौर गनेसवा, ब्रह्म विसनु महेस न सेसवा ।**

**जोगी न जंगम मुनि दुरबेसवा आदि न अनं न काल कलेसवा ।**

**दास कबीर के आए संदेसवा, सार सबद गहि चलौ वहि देसवा**

अर्थात्, कबीर स्वयं भी यही कहते हैं कि उनके सारे शब्दों का एक ही सार, एक ही उद्देश्य है, एक समतामूलक समाज। कबीर की कविता सपना देखती है ऐसे अमरलोक का जिसमें मनुष्य की मनुष्यता ही महत्वपूर्ण है। कबीर के देखे सपने में ना ब्राह्मण है न क्षत्रिय, न सैयद है न शेख, न शूद्र हैं न वैश्य, कबीर का सपना न तो सिर्फ सामाजिक मुक्ति तक सीमित है ना सिर्फ आध्यात्मिक मुक्ति तक। उनके सपने में यह दोनों मुक्तियाँ एक दूसरे का विरोध नहीं, पोषण करती हैं।<sup>10</sup>

और कई दफा अपने यूटोपिया को प्रेमनगर कहकर पुकारते हैं-

**प्रेम नगर में रहिनी हमारी, भलि बलि आई सबूरी में ।**

**हाथ में कूंडी, बगल में सोटा, चारो दिशा जगीरी में । ६**

**मन लागो मेरो यार फकीरी में ।<sup>11</sup> ६**

अर्थात्, हम तो प्रेम नगर के निवासी हैं, संतोष के कारण हमारा जीवन ठीक चल रहा है। हमारे हाथ में तो कुंडी, सोटा रहता है, चारों दिशाओं में जाग्रति है। मित्रों, मेरा मन तो ईश्वर की भक्ति में लीन हो गया है।

हालाँकि, कई विद्वान बेगमपुरा को संत रविदास के साथ जोड़ते हैं। रविदास ने एक प्रसिद्ध पद में अपने जन्मस्थान को 'बेगमपुरा' कहा है। किंवदंती है कि यह पद रविदास ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में गुरु नानकदेव से गोष्ठी के बाद गुनगुनाने लगे थे। निःसंदेह यह पद रविदास के समतामूलक स्वप्न का साकार रूप था। गुरुग्रंथ साहिब में यह पद यहीं से शुरू होता है-

**बेगमपुरा सहर को नाऊँ ।**

**दुरूख अंदेश नहीं तिहिं ढाऊँ ।।**

**अब हम खूब वतन घर पाया ।**

**ऊँचा खेर सदा मन भाया ।।<sup>12</sup>**

कबीर और रविदास समकालिक थे, दोनों ही काशी में थे, तो एक दूसरे से प्रभावित होना स्वाभाविक था। फिर दोनों संतो का सपना तो एक ही था- एक समतामूलक समाज, और दोनों अपने-अपने यूटोपिया निर्मित करते हैं।

वस्तुतः यूटोपिया अनुमानित दर्शन हैं, जिसकी कल्पना कभी-कभी अतीत में की जाती है तो कभी-कभी एक अलग दुनिया में इसे स्थित किया जाता है, और कभी-कभी ये भविष्य की संभावना में वर्णित होती है। लेकिन वे सभी किसी न किसी वास्तविकता या संभव होने वाली वास्तविकता का दावा करते हैं, और ऐसा करने से सामाजिक

परिवर्तन के प्रयासों के लिए एक प्रेरणा प्रदान करते हैं। 'स्वर्गीय शहर' या धार्मिक परंपराओं में प्रस्तुत गौरवशाली जीवन को पृथ्वी पर उतारा जाता है और उत्पीड़ित मनुष्यों के सामने जीने और संभावित कार्रवाई के लिए प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। वे परमानंद और तर्क के संयोजन का प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि वे विपुलता और आनंद के समाज की कल्पना करते हैं, और साथ ही इतिहास की समझ और तर्क-निर्देशित कार्रवाई के माध्यम से ऐसे समाज को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

कार्ल मैनेहम ने विचारधारा और यूटोपिया (1936) में लिखा है कि परिवर्तन की ओर ले जाने वाली कार्रवाई के लिए यूटोपियनवाद आवश्यक है; यदि यूटोपियनवाद खो जाता है, तो "मनुष्य इतिहास को आकार देने की इच्छा और उसे समझने की अपनी क्षमता खो देगा"। यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि भारत में हम यूटोपिया का उदय लगभग उसी समय देख सकते हैं जब यह यूरोप में हुआ था। लेकिन भारत में यूरोपियन उच्च बौद्धिक दर्शन (जैसा कि, थॉमस मोर आदि के लेखन में) के विपरीत ये समाज के निचले स्तर पर पाए गये। इसी तरह के यूटोपिया को ईसाई, इस्लाम और बौद्ध धर्म जैसे सार्वभौमिक धर्मों में प्रस्तुत किया गया था। इन धर्मों ने एक 'ईश्वर के राज्य' की परिकल्पना की थी, जो एक 'स्वर्गीय शहर' था जिसे दुनिया से परे रखा गया था। यूटोपिया संस्कृत दर्शन में उपलब्ध नहीं थे। बल्कि वे पंद्रहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के रेडिकल भक्ति आंदोलन के दलित-बहुजन बुद्धिजीवियों के दर्शन में पाए जाते हैं।<sup>13</sup>

प्रारंभिक आधुनिक काल में, रेडिकल भक्ति संतों के लिए, यह स्वप्नलोक इतना पूरी तरह से विकसित नहीं हुआ था; हालांकि, कई सबाल्टर्न बुद्धिजीवियों ने अपने यूटोपिया रचे, जैसे रविदास ने 'बेगमपुरा' शहर की परिकल्पना की जहाँ बिना किसी दुख के, बिना करों या परिश्रम के, वह अपने दोस्तों के साथ स्वतंत्र रूप से घूम सके- ऐसा कुछ जो एक दलित वास्तविक बनारस में कभी नहीं कर सकता था। उसी तरह तुकाराम ने 'पंढरपुर' को उस शहर के रूप में बताया जहाँ मुखिया को भी मेहनत करनी पड़ती थी, जहाँ समय और मृत्यु का 'कोई प्रवेश नहीं' था, जहाँ लोग एक-दूसरे के साथ मिलकर नाचते थे। और इन सबसे बढ़कर कबीर ने दुःख और गम से मुक्त 'बेगम-पुरा', अमरता की नगरी 'अमरापुर' अथवा 'अमरदेश' या प्रेम की नगरी 'प्रेमनगर' का गीत गाया। ये पूर्वाभास थे; प्रारंभिक आधुनिक काल के दौरान इन सबाल्टर्न बुद्धिजीवियों ने यूटोपिया के उनके 'परमानंद' की परिकल्पना किसी कालातीत स्थान पर की थी। इसको 'ईश्वर के राज्य' के रूप में भी समझा जा सकता है।

बेगमपुरा की अवधारणा कबीर की चेतना और विद्रोही विचारों का एक प्रतिबिम्ब थी। बेगमपुरा ऐसे सार्वभौम समाज की अवधारणा पर आधारित था जहाँ पर किसी भी प्रकार की राजनीतिक, आर्थिक व मौलिक विभेद की गुंजाइश नहीं होगी। जो गरीबों एवं शोषितों के कल्याण पर आधारित होगा। कबीर और उनके भक्त इस काल्पनिक बेगमपुरा का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्रोही थे जो उनकी वास्तविक इच्छा का प्रतिरूप था। अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था को चुनौती देने वाली कबीर की विचारधारा सर्वाधिक उग्र परिवर्तन की वैकल्पिक समाज व्यवस्था थी। बेगमपुरा कबीर के विचारों का एक उपयुक्त आदर्श और लोकप्रिय या सामान्य इच्छा का प्रतिबिम्ब था।<sup>14</sup>

उनका राजनीतिक आदर्श, बेगमपुरा, ईश्वर का राज्य था। दुखों और कष्टों से मुक्त, निजी संपत्ति, कराधान, राजशाही और सामाजिक पदानुक्रम से रहित एक आदर्श ग्राम समाज था। यह बिना किसी डर, लालच, मेहरबानी, अपराध एवं आभाव व कमी के संतों की भूमि था। बेगमपुरा में जाति, धर्म और लिंग पर आधारित किसी प्रकार का शोषण और भेदभाव नहीं होगा। यह एक तार्किकता एवं मानवता पर आधारित समाज होगा। इसका अर्थ यह है की इस राज्य में जन संप्रभुता एवं नागरिकों के बीच समानता होगी, जो सभी के लिए स्वतंत्रता के आदर्श में परिणित होगी।<sup>15</sup> बेगमपुरा का काल्पनिक आदर्श राज्य भक्ति के माध्यम से निर्मित होगा। भक्ति का अर्थ है सामूहिक भागीदारी और सांझेदारी, उस युग के सामाजिक विभाजन का अंत करने की यह सात्विक विधि थी। अतः इस आदर्श राज्य में निर्णय निर्माण एवं राजनीतिक एवं सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए जनता की सामूहिक भागीदारी

होगी और यह आवश्यक रूप से प्रचलित सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को पूरी तरह बदल देगी। एकेश्वरवाद के विचार ने इस अवस्था को पूर्वनिर्धारण किया जो सामाजिक परिवर्तन के वैचारिक अग्रदूत होगा और उसके मानने वाले विश्वासी भक्त बेगमपुरा के अग्रगामी रक्षक होंगे। इस आदर्श राज्य में बिना किसी धार्मिक विभाजन और आंतरिक सोपानीय व्यवस्था के सभी को समान रूप से धर्मिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता उपलब्ध होगी। यह खुद कबीर द्वारा व्यक्त समरूपता, समन्वय और भक्त के धर्म निरपेक्ष स्वरूप में प्रकट होती है।<sup>16</sup>

कबीर की बेगमपुरा की अवधारणा का उदभव उनके द्वारा तत्कालीन समाज, राज्य की संरचना, पुरोहित वर्ग और अभिजात्य वर्ग के साथ उनके सम्बन्धों तथा निजी सम्पत्ति और आर्थिक सम्बन्धों व सामाजिक विभाजन के गहन अवलोकन से जन्मा था। जिसका दर्शन हमें कबीर के राजस्व व्यवस्था, न्यायिक प्रशासन एवं शासन की आलोचनाओं में परिलक्षित होता है। राजस्व व्यवस्था की आलोचना करते हुए कबीर कहते हैं-

गाऊँ कु ठाकुरखेत कुनापै, काईथ खरच न पोर।

जोरि जेवरी खेति पसरै, सब मिलि मोकों मारे हो राम।

खोटो महतो विकट बलाही, सिरकस दम का पारे।

बुरै दिवान दादि नहिं लागै, इकि बांधौ इक मारे हो राम।<sup>17</sup>

इसी प्रकार न्यायाधीशों की आलोचना करते हुए कहते हैं-

काजी तुम्हारे मन को राजसी बातें ही भाति हैं,

ईश्वर ने कभी अत्याचार की आज्ञा नहिं दी,

तू दीन से सहानुभूति नहिं रखता।<sup>18</sup>

इन दोनों ही मामलों में राज्य द्वारा गरीबों का उत्पीड़न और उनके शोषण तथा अभिजात्य वर्ग से राज्य के सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है। यह प्रजा की असहाय स्थिति को भी दर्शाता है। कबीर उनकी रक्षा के लिए ईश्वर का आह्वान करते हैं। उनका बेगमपुरा एक काल्पनिक, आदर्श राजनीति और ईश्वरीय शासन है, जो राज्यविहीन है, जहाँ कोई अभिजात्य नहीं, कोई भ्रष्टाचार नहीं और कोई अधिशेष निकासी नहीं है। इसका आधार है- न्याय, समानता और स्वतंत्रता।<sup>19</sup>

सामाजिक और परम्परा के क्षेत्र में, इसका अर्थ था- मूर्ति पूजा और अवतारवाद के विचारों का खंडन करना। इसका तात्पर्य एकेश्वरवाद अथवा विभिन्न धार्मिक विभाजनों से परे एक ईश्वर का विचार भी था। कबीर ने जीवन की चार अवस्था (आश्रम व्यवस्था) और छः सिद्धांतों के विचार को भी नकारते हैं। यहाँ तक कि तप, उपवास, या उपादान भी अस्वीकार कर दिया था। उनके लिए केवल ईश्वर ही इस 'साम्राज्य का शाश्वत सम्राट' था जिसे उन्होंने एक प्राचीन ऋषि के साथ समरूप कर दिया। इसका अर्थ था राजाओं के दैवीय अवतार के रूप और साथ ही सामाजिक सोपानीयकरण को भी नकारना था। संक्षेप में, यह एक साधारण प्रजा के द्वारा सांस्कृतिक-संरचनात्मक प्रभुत्व के खिलाफ एक उपक्रम था। खुले विद्रोह के विपरीत ये रोजमर्रा के जीवन में किये जाने वाला एक गैर संस्थागत, अस्थिर और असंगठित विरोध था।

निश्चित रूप से कबीर का क्षेत्र राजनीति नहीं था और इतने छोटे तबके के व्यक्ति के लिए तत्कालीन राजनीति में प्रवेश करने के लिए कोई अवकाश भी नहीं था। फिर भी आसपास के वातावरण में जो कुछ घट रहा था कबीर उससे चिंतित एवं परेशान अवश्य थे। यद्यपि उन्होंने इस बात की चिंता नहीं की थी कि कौन सुल्तान है और कौन वजीर है, किंतु इस बात के लिए सचेत आवश्यक है कि इन लोगों का आचरण कैसा है, उनकी नीति का प्रजा पर क्या प्रभाव पड़ रहा है और इन लोगों के कारण समाज गिर रहा है या उठ रहा है।<sup>20</sup> संभवतः कबीर के समय की राजसत्ता को प्रजा के कल्याण की चिंता नहीं थी।

वस्तुतः कबीर का राजनीतिक चिंतन लोककल्याण की भावना पर आधारित था। कबीर भ्रष्टाचारमुक्त, समानता पर आधारित एक न्यायपूर्ण एवं स्वतंत्र समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसकी रूपरेखा बेगमपुरा की अवधारणा में उन्होंने प्रस्तुत की।

### समन्वय, सामाजिक न्याय व समरसता के पैरोकार के रूप में कबीर

कबीर के समय (15वीं शताब्दी में) भारत में इस्लाम और हिंदू धर्म के बीच संघर्ष चल रहा था। दोनों जातियों के मतों में सैद्धांतिक भेद लक्षित होता था और दोनों के वद्धाचरणों में आकाश पाताल का अंतर दिखता था। उक्त प्रकार का धार्मिक मतभेद केवल हिंदुओं और मुसलमानों की मूल विचारधाराओं तक ही सीमित नहीं था बल्कि उनके भीतर विभिन्न प्रकार के संप्रदायों एवं 'फिरकों' की भी प्रवृत्तियां काम कर रही थीं। इन सभी के बीच ऐसी खाइयां बनती जा रही थी जिनका दिनोंदिन चौड़ी होती जाना अनिवार्य सा प्रतीत होता था। इसी प्रकार मुसलमानों के भीतर भी कई प्रकार के पारस्परिक भेद बढ़ते जा रहे थे। उनके धर्म प्रचारक संतो, पीरों, औलियाओं आदि का देहांत होते ही उनके सम्मान में मेले और उत्सव होने लगते और उनके नाम पर विभिन्न फिरकों की परंपरा चल पड़ती। ऐसे में विभिन्न मतों व पंथों के बीच कटुता और धर्मांधता की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिल रहा था। यह किसी भी प्रकार से हितकर नहीं था न इसके कारण देश में कभी शांति और एकता का कोई स्वप्न देखा जा सकता था।<sup>21</sup>

ऐसे में कबीर ने मानव जीवन की अंतर्निहित एकता को चित्रित करने का प्रयास किया। कबीर का मानना था कि सभी मनुष्य एक ही मानव समाज के अंग हैं। एक विशाल वृक्ष की विभिन्न शाखाओं के समान है सबके मूल की ओर दृष्टि डालने पर उन में कोई अंतर नहीं दिखता, न इस कारण उसमें एक दूसरे को पृथक् या उच्च व निम्न समझने का कोई आधार ही लक्षित होता है।<sup>22</sup> कबीर सामाजिक न्याय पर आधारित एक समतावादी समाज की पैरोकारी करते हैं। कबीर के सामाजिक कवित्त, मनोवैज्ञानिक तर्क, जन्म व मृत्यु के आलेख, आध्यात्मिक, दार्शनिक, वैचारिक कविताएँ अलग-अलग श्रेणियों व वर्गों को नहीं बल्कि उस ईमानदार सैद्धांतिक एकता को दर्शाते हैं जो की देह, मस्तिष्क, व्यक्ति, मंदिर व बाजार सबपर समान रूप से लागू होती है। कबीर के समन्वयवाद का सार यह है कि व्यक्ति को सद्गुणों की ओर अग्रसर होना चाहिए और उन्हें पाने के लिए वह सतगुरु एवं सत्संग के आश्रय को अनिवार्य मानते हैं।<sup>23</sup> वह मनुष्य को सहज और महज मनुष्य के रूप में देखना पसंद करते हैं।<sup>24</sup> कबीर को युग परिवर्तनकारी विचारक व सामाजिक क्रांति के प्रणेता के रूप में जाना जाता है। उन्हें धर्मिक जागरण का अग्रदूत भी कहा जाता है। कबीर ने अपनी प्रभावी विचारधारा से मध्ययुग में सोए हुए भारत को जगाया। वैचारिक सोच व चिंतन के नए आयामों के द्वारा नवचेतना का मंत्रघोष किया।

कबीर ने समाज में जो विकृतियां देखी उन का निडरता से पर्दाफाश किया। उनसे समाज की विकृति और पतनावस्था सहन नहीं की गई। पूरी उम्र वे ब्राह्मणवाद, मुस्लिम कट्टरता और धार्मिक अंधविश्वासों से लड़ते रहे। उन्होंने अपने व्यवसाय को कभी भी हीन नहीं माना और न ही कभी किसी के सामने झुके। उन्होंने सिद्ध कर दिखाया कि कोई भी शिल्प, दस्तकारी छोटी नहीं है, मेहनत से कर्म करने को वे श्रेयस्कर मानते थे। कर्म की प्रधानता को उन्होंने स्वीकार किया। पण्डे-पुजारी और मुल्ला-मौलवी जो धर्म की आड़ में लोगों को ठगते हैं, कबीर ने उनकी कड़ी आलोचना करके धर्म की व्यावसायिकता का भी पर्दाफाश किया।<sup>25</sup> निसंदेह वे एक युग निर्माता, धर्म प्रवर्तक और सामाजिक क्रांति के अग्रणी महापुरुष हैं।

कबीर जनता के मध्य से आए संत थे। उनके समकालीन संत कवियों का जीवन दर्शन भी उनसे प्रभावित था। वह जो देखते थे, जो भोगते थे, जो सुनते थे, उसीको अपने अनुभवजन्य ज्ञान के सहारे जनता को बता देते थे। सरल भाषा में रचे गए और गाये गए उनके पद, भजन और सखियाँ जन जागरण का प्रमुख माध्यम बनीं। इसके आधार पर तत्कालीन समाज में चेतना आई।

कबीर अपने समय के क्रांतिकारी विचारक थे, जिन्होंने न केवल सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में अपने विचार दिए बल्कि राजनीतिक क्षेत्र में भी उनका विचार अत्यंत ही क्रांतिकारी था। एक आदर्श राज्य व्यवस्था के रूप में बेगमपुरा या अमर देसवा की अवधारणा में उन्होंने हर प्रकार की राजशाही को नकारते हुए राजा के दैवी अवतार के विचार का खंडन किया। इसके अतिरिक्त कबीर ने अभिजात तंत्रीय व्यवस्था का भी विरोध किया और उसकी

जगह जनसंप्रभुता की अवधारणा को आगे बढ़ाया। कबीर लगातार अभिजात वर्गीय प्राधान्यता और उसके द्वारा उत्पन्न भेदभाव एवं शोषण को समाप्त करने की बात करते हैं। उन्होंने जिस सामाजिक एवं सांस्कृतिक मुक्ति आंदोलन का उद्घोष किया और जिस यूटोपिया को प्रस्तुत किया उसके द्वारा उन्होंने अपने समय की एक वैकल्पिक राजनीतिक विचाधारा को भी प्रस्तुत किया। यही कारण है कि टैगोर उन्हें 'चिर आधुनिक' और उनकी कविताओं को 'मुक्तिदूत' कह कर संबोधित करते हैं।<sup>26</sup>

कबीर हमारे सामने कबीर को मध्यगीन भक्ति कवियों में सर्वाधिक निर्भीक और विद्रोही विचारक के रूप में स्मरण किया जा सकता है। कबीर अपने युग के पाखंड, भ्रष्टाचार, अनीति और आडम्बरों का खुलकर विरोध करते हैं। वे धार्मिक एवं जातीय संक्रीणता से ऊपर उठकर मनुष्य मात्र की समानता एवं स्वतंत्रता की वकालत करते हैं। आमतौर से कबीर को संत एवं कवि के रूप में ही उद्घृत किया जाता रहा है। ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टीकोण से कबीर की चर्चा बहुतायत हुई है परन्तु कबीर के राजनीतिक दर्शन पर उतनी विस्तृत चर्चा नहीं हो पाई है। जबकि कबीर ने बेगमपुरा की अवधारणा के रूप में एक आदर्श राज्य व समाज व्यवस्था पर गंभीर विचार दिए हैं। कबीर के लिये भक्ति केवल अध्यात्मिक अवधारणा नहीं है बल्कि उनके लिए भक्ति स्थापित राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था के विरोध में एक वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत करती है। कबीर इसी भक्ति और भक्तों के द्वारा एक ऐसे समाज व राज्य का निर्माण करना चाहते हैं जहाँ किसी प्रकार की असमानता, शोषण, भेदभाव एवं अन्याय नहीं होगा। बेगमपुरा ऐसी ही अवस्था का चित्रण है जो लोककल्याण, समानता, स्वतंत्रता और न्याय पर आधारित होगा, प्रत्येक व्यक्ति को मनुष्य के रूप में अपने सर्वोच्च विकास को प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होगा। जो समन्वय एवं सहयोग के सिद्धांत से संचालित होगा। वास्तव में कबीर सच्चे अर्थों में सामाजिक न्याय, समरसता और समन्वय के सशक्त पैरोकार थे, उनका पूरा जीवन इसी की मिसाल रहा है।

राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग  
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय  
सागर, (मध्य प्रदेश) - 470003

#### सन्दर्भ -

1. भारती, कँवल, (2017), कबीर के निर्गुणवाद से प्रभावित थे डॉ. अम्बेडकर, फारवर्ड प्रेस, ऑनलाइन मैगजीन, 1 जुलाई, पृ. 1, [www.forwardpress.in/Kabir-ke-nirgunwad-se-prabhavit-ambekar/](http://www.forwardpress.in/Kabir-ke-nirgunwad-se-prabhavit-ambekar/) से उद्धृत
2. शर्मा, श्रीराम, (2000), 'युगनायक कबीर का समन्वय सन्देश', अखण्ड ज्योति, अंक 2, फरवरी, पृ. 11-12, <http://literature-awgp-org/akhandjyoti/2000/February/v2-8ls m> 'r
3. सुन्दरदास, श्याम, (1977), कबीर ग्रंथावली, काशी, नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. 206
4. राय, हिमांशु, (2015), 'एक्सप्लोरिंग पोलिटिकल आइडियाज ऑफ कबीर', फ्रंटियर, ऑटम न., वॉल्यूम 48 (2) पृ. 14
5. चंचरीक, कन्हैयालाल, (1999), महात्मा कबीर : जीवन और दर्शन, नई दिल्ली, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, पृ. 47
6. शर्मा, रामविलास, (1996), भारतीय साहित्य की भूमिका, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ. 120
7. शर्मा, सरनाम सिंह, (2011), कबीर : व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत (भाग-I), दिल्ली, कल्पना प्रकाशन, पृ. 176
8. रनित मुखर्जी और रुद्रसवर्ण दत्ता, (2022, मार्च), अ कम्पेरेटिव एनालिसिस ऑफ बेन्थम'स अब्सोलुयुट हैप्पीनेस एंड कबीर बेगम-पुरा थ्रू मल्टीडिसिप्लिनरी लेन्सेस्, श्रुति एस, डॉ. आर.डी. पद्मावती व अन्य(सं.) कंटेम्परेरी इश्यूज इन मल्टीडिसिप्लिनरी सब्जेक्ट, वॉल्यूम-3, इंडिया, स्वीडन एंड यूके : रेडशशाइन पब्लिकेशन प्रा. लिमिटेड, पृ. 256
9. जाफरी, अली सरदार, (2010), कबीर बानी, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
10. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, (2000), कबीर, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ. 37

11. ओशो, (2006), मन लागो यार फकीरी में (कबीर वाणी), दिल्ली : डायमंड पॉकेट बुक्स (प्र.) लि.,पृ. 100
12. झा, ममता, (2021), संत रविदास रत्नावली, नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, पृ 12
13. ऑमवेट, गेल, (2008), सीकिंग बेगमपुरा : द सोशल विजन ऑफ एंटी-कास्ट इंटेलेक्चुअल, दिल्ली, नारायण पब्लिकेशन्स, पृ. 93
14. राय, हिमांशु, पुर्वोक्त, पृ. 16
15. वही,पृ. 16
16. वही, पृ. 17
17. चौहान, शिवदन सिंह (1978), कबीर का युग, दिल्ली : पब्लिकेशन्स डिवीजन, भारत सरकार, पृ. 63
18. सिंह, नामवर (2001), 'कबीर का दुःख', राज किशोर (सं.), कबीर की खोज, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 188
19. राय, हिमांशु, (2015), पृ. 17
20. शर्मा, सरनाम सिंह, पुर्वोक्त, पृ. 177
21. चतुर्वेदी,परशुराम, (1964), कबीर साहित्य की परख, इलाहबाद : भारती भंडार लीडर प्रेस, पृ.115-116
22. वही,पृ. 119
23. वही, पृ. 442
24. त्यागी, रुचि, (2016), 'कबीर : एक समन्वयवादी विचारक के रूप में', रुचि त्यागी (सं.) प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत का राजनीतिक चिंतन : प्रमुख परम्पराएँ एवं चिन्तक, दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, पृ. 443
25. चंचरीक, कन्हैयालाल, पुर्वोक्त, पृ. 53
26. टैगोर, (2007) रबिन्द्रनाथ पोयम्स ऑफ कबीर, दिल्ली : रूपा पब्लिकेशन्स

## अद्वैत वेदांत के अनुसार मनस् तत्त्व की संकल्पना

### नवीन दीक्षित

(1)

सर्वप्रथम, हम इस विमर्श का आरंभ सामान्य रूप से भारतीय दर्शन में तथा विशेष रूप से अद्वैत वेदांत में मन की संकल्पना पर हुए विचार से करते हैं। संस्कृत शब्द 'मनस्' का अंग्रेजी पर्याय माइंड (Mind) है। यद्यपि दोनों शब्द कुछ सीमा से एक-दूसरे से मिलते हैं, फिर भी उनमें महत्वपूर्ण अंतर हैं, जिन्हें नहीं भूलना चाहिए। मन की संकल्पना के सम्बंध में प्रथम प्रश्न यह उपस्थित होता है कि हमें मन जैसे किसी अन्य साधन या करण की आवश्यकता क्यों है? दार्शनिकों ने मन के अस्तित्व और इसके प्रमाणों के सम्बंध में विमर्श किया है। कुछ यूरोपीय चिंतक, भौतिकवादी और कुछ व्यवहारवादी मन या आत्मा को, शरीर की ही क्रिया में सीमित कर देते हैं। चार्वाक दर्शन की 'आत्मा' की संकल्पना के समान उनका दृष्टिकोण है। लेकिन ज्ञान जैसी चेतन गतिविधि को दैहिक क्रिया या संगति के आधार पर नहीं समझाया जा सकता है। यांत्रिक या संवेदनाओं के प्रति अचेतन तंत्रिका तंत्र की प्रतिक्रिया सोद्देश्य नहीं हो सकती। इच्छा, आत्म-संकल्प को प्रदर्शित करती है और यह विकसित चेतना के बिना संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त, इन विचारों का समर्थन नहीं किया जा सकता क्योंकि विषयगत सत्ता किसी भी रूप में विषयीरूप नहीं हो सकती है। ज्ञान, विषयी से सम्बंधित है। ज्ञान को केवल इंद्रियों में ही सीमित नहीं किया जा सकता, क्योंकि इन्द्रियाँ नश्वर हैं। इन्द्रियों के नष्ट हो जाने पर भी ज्ञान स्मृति में विद्यमान रहता है। तात्पर्य यह है कि ज्ञान को इन्द्रियों में ही सीमित नहीं कर सकते। कोई विशेष इन्द्रिय नष्ट हो सकती है लेकिन उससे उत्पन्न हुआ ज्ञान स्मृति के रूप में बहुत काल तक विद्यमान रहता है। अतः मन जैसे किसी इन्द्रियतर तत्त्व को स्वीकार करना आवश्यक है। इस प्रसंग में न्यायसूत्र के निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य हैं : “मन को न तो इन्द्रिय में और न ही विषय में ही सीमित किया जा है क्योंकि यह तो इन दोनों के नष्ट हो जाने के बाद भी जीवित रहता है (नैन्द्रियार्थयोस्तद्विना-शेऽज्ञानवस्थानात्)। यदि ज्ञान इन्द्रियों का एक गुण हो तो वह इन्द्रिय के नष्ट हो जाने के बाद अस्तित्व में नहीं रह सकता। लेकिन स्मृति के रूप में ज्ञान वस्तुतः इन्द्रिय के नष्ट हो जाने के बाद भी विद्यमान रहता है। अतएव ज्ञान इन्द्रिय में विद्यमान नहीं रहता है। इसी के समान यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि ज्ञान, विषय में भी विद्यमान नहीं रहता है”।<sup>1</sup>

इस प्रकार, नैयायिक यह सिद्ध करते हैं कि एक व्यक्तिनिष्ठ तत्त्व आवश्यक है। अद्वैत वेदांतियों को यह तर्क मान्य है। लेकिन जहाँ नैयायिक यह मानते हैं कि आत्मा, ज्ञान-गुण का आश्रय है, वहीं अद्वैती के लिए ज्ञान तो आत्मा का स्वरूप ही है। दैनिक जीवन के अनुभव से भी मन की इन्द्रियों एवं विषय से पृथक् सत्ता प्रमाणित होती है। विषय के साथ इन्द्रियों के संयुक्तीकरण के बाद भी हम वस्तु का ज्ञान नहीं कर पाते हैं क्योंकि मन या इसके जैसा इन्द्रियों के परे का कोई द्रव्य वहाँ असंयुक्त रहता है। अन्यमयस्कता, प्रगाढ़ निद्रा एवं पूर्ण तन्मयता के

अनुभव, इन्द्रियों से परे के एक तत्त्व की ओर इंगित करते हैं। यही तत्त्व मन है। इस सम्बंध में डॉ. सतीश चन्द्र चटर्जी के निम्नलिखित कथन प्रासंगिक हैं: “किसी वस्तु को जानने के लिए मन का, इन्द्रियों के माध्यम से उसे ग्रहण करना आवश्यक है। हम अन्यमयस्कता की स्थिति में वस्तुओं को नहीं जान पाते हैं, यद्यपि हमारी इन्द्रियाँ उनके भौतिक सम्पर्क में रहती हैं”।<sup>1</sup>

इस प्रकार इन्द्रियों के अतिरिक्त अन्य किसी तत्त्व के संयोग की आवश्यकता है अन्यथा अन्यमयस्कता जैसे अनुभव नहीं होंगे। इसके विपरीत यदि ज्ञान एवं इन्द्रियों के मध्य मन जैसा कोई मध्यस्त तत्त्व उपस्थित नहीं होता तो सभी इन्द्रियानुभव, ज्ञान में परिणत हो जाते। इसके अतिरिक्त, नैयायिक अग्रलिखित रीति से अपने तर्क को आगे बढ़ाते हैं : वे मानते हैं कि विशिष्ट ज्ञान के लिए एक साधन या करण की आवश्यकता होती है। बाह्य प्रत्यक्ष के लिए हमें चक्षु, श्रोत और घ्राण इन्द्रिय की आवश्यकता होती है और इसी प्रकार आन्तर प्रत्यक्ष के लिए हमें विशेषतः मन की आवश्यकता होती है। नैयायिक इसे एक स्वतंत्र द्रव्य के रूप में स्वीकार करते हैं, तथापि यह एक साधन है। यह आत्मा और इन्द्रियों के बीच मध्यस्त स्थिति में रहता है। इनके बीच उचित संबंध की आवश्यकता होती है, अन्यथा विषय का ज्ञान नहीं होता है। आत्मा को सुख और दुःख जैसी मानसिक स्थितियों को जानने के लिए मन की आवश्यकता होती है।

मन के अस्तित्व के प्रमाण के संबंध में, शंकर को नैयायिकों द्वारा दिए गए उपर्युक्त तर्क स्वीकार्य हैं।<sup>2</sup> इसके साथ ही अद्वैतियों के मतानुसार, मन का साक्षात् प्रत्यक्ष होता है। तथापि, अद्वैत वेदांती इसके अस्तित्व को तर्कों के द्वारा भी सिद्ध करते हैं। इसके पक्ष में, ब्रह्मसूत्र के (2.3.32) जैसे स्थलों का संदर्भ दिया जा सकता है। इसके अनुसार आत्मा, इन्द्रियों और विषय की संगति ही ज्ञान के लिए पर्याप्त नहीं है, क्योंकि वे तो समग्र अनुभव में उपस्थित रहते हैं। यदि ऐसा होता तो या तो ज्ञान हमेशा के लिए होता या कभी नहीं होता। चूँकि ज्ञान कभी होता है और कभी नहीं होता इसलिए हम किसी दूसरे तत्त्व के अस्तित्व को मानने के लिए विवश होते हैं।

विस्तृत विवरण के लिए, उपर्युक्त उल्लेखित सूत्र पर शंकर के भाष्य को देना प्रासंगिक है। शंकर के निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य हैं : “एक अन्तःइन्द्रिय (अन्तःकरण) को स्वीकार करने की क्या आवश्यकता है, जिसकी बुद्धि केवल एक घटक है? सूत्र का कथन है कि यदि ऐसा स्वीकार नहीं किया जाए तो इन्द्रियाँ तो उनके विषयों के साथ सदैव सम्पर्क में रहती हैं, तब आत्मा, इन्द्रियों और विषयों आदि की सभी आवश्यक परिस्थितियों के उपस्थित होने के कारण, सभीविषयों का प्रत्यक्ष होगा। तथापि, यदि इसका निषेध किया जाए तो इसका अर्थ होगा कि कभी ज्ञान नहीं होगा और कभी भी कुछ अनुभव नहीं होगा। अतएव प्रतिपक्षी को आत्मा या इन्द्रियों में से किसी एक की शक्ति की सीमा को स्वीकार करना पड़ेगा। आत्मा के अपरिवर्तनशील होने से उसमें ऐसी कोई बात संभव नहीं है। इन्द्रियों की शक्ति के बारे में भी ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसकी शक्ति न तो पूर्व के क्षण में और न ही बाद के क्षण में ही अवरूद्ध होती है तो मध्यवर्ती क्षणों में वह भला क्यों अवरूद्ध होगी। इसलिए हमें एक अंतःइन्द्रिय (अन्तःकरण) को स्वीकार करना पड़ेगा जिसके संयोग एवं वियोग से प्रत्यक्ष ज्ञान होता है एवं नहीं होता है”।<sup>3</sup>

इस प्रकार, उपर्युक्त उद्धरण एक ऐसे तत्त्व के अस्तित्व को सिद्ध करता है जो न तो आत्मा हो सकती है और न ही इन्द्रिय। अब, मन के अस्तित्व की सिद्धि के उपरान्त इसके स्वरूप की विवेचना की जा सकती है।

(2)

मन के स्वरूप को समझना बहुत कठिन है, क्योंकि मन बहुत सूक्ष्म होने के साथ-साथ प्रच्छन्न भी है। मीमांसा दर्शन के प्रभाकर एवं भाट्ट सम्प्रदाय, सांख्य दर्शन, न्याय एवं वैशेषिक दर्शन जैसे सभी आस्तिक भारतीय दर्शन, मन को एक अंतःइन्द्रिय मानने के बारे में सहमत हैं और वे मानते हैं कि इसी के माध्यम से आत्मा द्वारा सुख और दुःख जैसी मानसिक अवस्थाएँ साक्षात् रूप से जानी जाती हैं। इसके साथ ही वे मन को अचेतन मानने के बारे में भी परस्पर सहमत हैं। पहले, मन के अचेतन स्वरूप पर ही विचार किया जाए।

पाश्चात्य दर्शन के इस विचार से कि ‘चेतना मन का विशेष लक्षण है’; उपर्युक्त दृष्टिकोण पूर्णतः विपरीत है। भारतीय चिंतक चेतना को आत्मा का गुण या आत्मा के ही समरूप मानते हैं। मन एक अंतःकरण है। यह

अचेतन है क्योंकि स्वयं इसे अपना बोध नहीं है बल्कि इसका ज्ञान, आत्मा द्वारा होता है। सांख्य दर्शन ने मन की प्रकृति पर जोर देते हुए इसे 'अहंकार' त व से विकसित माना है। अहंकार तो अंततः 'प्रकृति' का ही परिणाम है और प्रकृति से तो यह सम्पूर्ण भौतिक जगत् ही विकसित होता है। अचेतन मन, जड़ होने से आत्मा या 'पुरुष' से पूर्णतः भिन्न है क्योंकि आत्मा का स्वरूप ही चेतना है।

अद्वैत वेदांत के अनुसार मन तो भौतिक देह और आध्यात्मिक आत्मा दोनों से भिन्न है। मन उन्हीं भौतिक पदार्थों से मिलकर बना है, जिससे यह स्थूल भौतिक देह निर्मित हुई है। लेकिन मन की उत्पत्ति इन पदार्थों के सूक्ष्मतम भागों से होती है। यद्यपि मन चेतना को प्रतिबिंबित करता है, किंतु मन को आत्मा के समरूप नहीं किया जा सकता है। मन, ज्ञान का विषय है। चूँकि यह ज्ञान तथा अनुभव का विषय है इसलिए यह ज्ञाता नहीं हो सकता। विषयी एवं विषय दोनों एक ही नहीं हो सकते। ज्ञाता मन से पृथक् है क्योंकि यह मन की कल्पना करता है और उसका निरीक्षण करता है। मन का आत्मनिरीक्षण के द्वारा साक्षात् निरीक्षण किया जा सकता है। मन में चेतना आंतरिक रूप से विद्यमान नहीं है। ज्ञाता में चेतना अंतःस्थ है। ज्ञाता स्वचेतन एवं स्वयं ज्योति है। मन ज्ञान से रहित है। ज्ञान का कोई भी विषय चेतना से रहित है। इस प्रकार अद्वैत वेदांत के अनुसार, मिट्टी के किसी ढेले जैसे बाह्य विषय के समान जो चेतना से रहित, भौतिक और अंधकारमय होता है, वैसे ही मन भी जड़ एवं अंधकारमय है।

पाश्चात्य दर्शन में जिस प्रकार से मन एवं पदार्थ के मध्य भेद है, वैसा भेद वेदांत दर्शन में नहीं है। वेदांत दर्शन में तो केवल आत्मा ही स्वयं ज्योति एवं ज्ञाता है। वेदांत में मन को अन्तःकरण कहते हैं। सांख्य-योग एवं मीमांसा दर्शन में इसे "इंद्रिय" कहते हैं।<sup>1</sup> इसे इंद्रिय कहे जाने के दो कारण हैं : प्रथमतः, यह सुख एवं दुःख के गुणों को ग्रहण करने के कारण इंद्रिय के रूप में स्वीकार किया जाता है। द्वितीयतः, यह एक माध्यम है जो कि ज्ञेय एवं ज्ञाता के मध्य की मध्यस्त स्थिति है। दूसरे शब्दों में, जिस प्रकार से स्पर्श एवं गंधादि का बाह्य प्रत्यक्ष, बाह्य इंद्रियों पर निर्भर करता है, उसी प्रकार से सुख, दुःख एवं इच्छा आदि का आंतर प्रत्यक्ष, एक अंतरिन्द्रिय पर निर्भर करता है, जो कि मन है। न्याय दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष को इंद्रियार्थ सन्निकर्ष के पदों में परिभाषित किया जाता है। यदि मनस् को इंद्रिय नहीं माना जाए तो आंतर प्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष नहीं कहा जा सकता है। इस कारण से न्याय दर्शन मनस् को इंद्रिय मानता है। अद्वैतियों एवं अन्य दार्शनिकों के मध्य, मनस् के इंद्रिय होने अथवा नहीं होने के सम्बंध में, मतभेद का यह एक बिंदु है। नैयायिकों के लिए मनस् एक साधन है जिसके माध्यम से आत्मा आंतर प्रत्यक्ष का ज्ञान प्राप्त करती है। अद्वैती सोचते हैं कि मनस् या अन्तःकरण को इंद्रिय नहीं माना जा सकता है। नैयायिक मानते हैं कि आत्मा सुख-दुःखादि का ग्रहण, मनस् के माध्यम से करती है। जैसे इंद्रियाँ अपने संगत बाह्य विषयों का ग्रहण करती हैं, वैसे ही मनस् भी अपने आंतर विषयों का ग्रहण करता है और इसी के माध्यम से आत्मा को सुख-दुःखादि आंतर विषयों का ज्ञान होता है। इस समानता के कारण मनस् को एक इंद्रिय के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। लेकिन मन की गतिविधि केवल आंतर प्रत्यक्ष तक ही सीमित नहीं है। इसका कार्य बाह्य प्रत्यक्ष, अनुमान एवं उपमान आदि अन्य प्रमाणों में देखा जाता है। अतएव इसे पूर्णतः एक ज्ञानेन्द्रिय के रूप में ही स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यह अंशतः एक ज्ञानेन्द्रिय है और अंशतः नहीं भी है। वस्तुतः स्वयं नैयायिकों ने इस कठिनाई को समझा और इसे ज्ञानेन्द्रिय एवं करण इन दोनों ही रूपों में स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त, बाह्य प्रत्यक्ष के संदर्भ में मनस् को इंद्रिय नहीं माना जाता है। इंद्रिय को एक करण और असाधारण कारण होना चाहिए। बाह्य प्रत्यक्ष में शामिल ज्ञानेन्द्रिय प्रत्यक्ष का असाधारण कारण है जबकि बाह्य प्रत्यक्ष एवं अन्य प्रकार के प्रमाणों में मनस् ज्ञान का साधारण कारण है। अतएव बाह्य प्रत्यक्ष ज्ञान में मनस् इंद्रिय नहीं हो सकता है। अनुमान, स्मृति एवं कल्पना के ज्ञान में कठिनाई उत्पन्न होती है जहाँ मनस् को करण या असाधारण कारण माना है, वहाँ वह एक इंद्रिय है। यदि मनस् को एक इंद्रिय माना जाए तो ज्ञान के इन प्रकारों को भी प्रत्यक्ष मानना होगा।<sup>1</sup>

उपनिषदों में मनस् और इंद्रिय की पृथक्ता का उल्लेख किया गया है। कठोपनिषद् मनस् को इंद्रिय से निम्नलिखित रीति से अलग करता है : "इंद्रियार्थ से परे इंद्रियाँ हैं, इंद्रियों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है और

महान आत्मा बुद्धि से भी परे है”<sup>7</sup> (इन्द्रियेभ्यः परार्था अर्थेभ्यश्च परम मनः । मनस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा मनापराः) (कठ उपनिषद् - 3.10)

इसी उपनिषद् में, रथ और रथी की उपमा के द्वारा मन की पृथक्ता को समझाया गया है।<sup>8</sup> यहाँ न केवल मनस् की इन्द्रिय से पृथक्ता प्रदर्शित की गई है, वरन् मनस् को इन्द्रियों से अधिक उच्च स्तर दिया गया है। मुण्डकोपनिषद् में भी, किसी अन्य संदर्भ में ही सही, मनस् और इन्द्रिय की यह पृथक्ता दृष्टिगोचर होती है। इसका कथन है: “उससे (परम्) प्राणशक्ति और मनस् और इन्द्रियाँ भी उत्पन्न होती हैं। (इतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियानि च)” (मुण्डक उपनिषद् - 2.1.3) किंतु कुछ स्मृतियों में, मनस् को प्रायः ग्यारह इन्द्रियों में से एक इन्द्रिय माना गया है। ये हैं : पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक मनस्। अद्वैत वेदांतियों और इस विचार के मध्य विरोध दिखाई देता है। वेदांती, स्मृति के पहले श्रुति-उपनिषदों - का प्रमाण स्वीकार करते हैं। वस्तुतः ब्रह्मसूत्र (2.4.17) पर भाष्य लिखते हुए शंकर का इस भेद की ओर ध्यान गया है। इस सूत्र में यह प्रश्न उपस्थित किया गया है कि क्या दर्शनेन्द्रिय जैसी इन्द्रियाँ प्राण शक्ति का ही परिणाम हैं या फिर स्वतंत्र तत्त्व हैं? प्रतिपक्षी शास्त्र (ब्रह्दारण्यक उपनिषद् 1.5.21) को उद्धृत करके प्रथम दृष्टिकोण को अंगीकार करता है। शंकर एक अन्य शास्त्र (मुण्डक उपनिषद् 2.1.3) को इस टिप्पणी के साथ उद्धृत करके इस दृष्टिकोण का खण्डन करते हैं कि ‘ब्रह्दारण्यक उपनिषद् के कथन को गौण अर्थ में लेना चाहिए’।<sup>9</sup> शंकर का मत वही है जो श्रुति का है कि मन को इन्द्रिय नहीं स्वीकार किया जा सकता है। डॉ. धीरेन्द्र मोहन दत्त ने भी शंकर के विचारों से यही निष्कर्ष निकाला है।

वाचस्पति मिश्र और गोविंदानंद आदि बाद के कुछ लेखकों के विचार से, मनस् एक इन्द्रिय है। उन्होंने शंकर के दृष्टिकोण को कुछ इस रीति से व्यक्त किया है कि वह स्मृतियों के दृष्टिकोण के निकट है। डॉ. धीरेन्द्र मोहन दत्त ने ऐसा किये जाने के कारण का अनुमान निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है : “ऐसा करने में वे विरोध को हटाने के लिए श्रुतियों की इस प्रकार से जरूरी व्याख्या करते हैं। वे सोचते हैं कि मनस् के इन्द्रियों से पृथक् उल्लेख का अभिप्राय यह नहीं है कि मनस् एक इन्द्रिय नहीं है। यह तो कहने की विशिष्ट शैली भर है जो कि “पशु और बैल” या “ब्राह्मण और परिव्राजक”, जैसे वाक्यांशों में मिलती है जहाँ यद्यपि दूसरा पद पहले पद में ही अंतर्निहित है, फिर भी उसका अलग से उल्लेख केवल विशेष जोर देने के लिए किया गया है।”<sup>10</sup>

पंचदशी के लेखक वाचस्पति मिश्र का अनुसरण करते हैं और यह विचार रखते हैं कि मनस् एक अंतरिन्द्रिय है। वेदांत-परिभाषा के लेखक श्रुति के दृष्टिकोण को ग्रहण करते हैं क्योंकि वह विवरण सम्प्रदाय के विचार को मानते हैं। उनके तर्क का मुख्य समर्थन श्रुति है। वह भगवद्गीता एवं कुछ अन्य स्मृतियों का इस रीति से उद्धरण देते हैं कि वे श्रुति के दृष्टिकोण के समान हो जाते हैं। वे अपने तर्क का आरंभ यह कहकर करते हैं कि अन्तःकरण के इन्द्रिय होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इसके विरोध में - “मनः षष्ठानीन्द्रियाणि” (मन जिनमें छठा है ऐसी इन्द्रियाँ) - भगवद्गीता का यह वचन यदि उद्धृत किया जाए तो उनके अनुसार यह उचित नहीं है क्योंकि इस वाक्य में इन्द्रियगत षट् संख्यात्व की पूर्ति, (यहाँ अनिन्द्रिय) मन से की गई है। ऐसी पूर्ति तो मन न हो तो भी की जा सकती है। अपने इस मत के बचाव में वे वेद, उपनिषद एवं महाभारत से ही उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। पहले वे वेद के कथन - “यजमानपंचमा इडां भक्षयन्ती”, को उद्धृत करते हुए इस वैदिक वाक्य में ऋत्विजों में रही हुई पंचत्व संख्या की पूर्ति ऋत्विजों से भिन्न यजमान शब्द से की गई हुई बताते हैं। इसको आधार बनाकर वे निष्कर्ष निकालते हैं कि ऐसा कोई नियम तो नहीं है कि इन्द्रियगत संख्या की पूर्ति इन्द्रिय से ही हो। यह पूर्ति इन्द्रिय से भिन्न भी हो सकती है। इसके पश्चात् वे महाभारत से ऐसा ही उद्धरण देते हैं - “जिन में पाँचवाँ महाभारत है, ऐसे वेदों को पढ़ाया” (वेदानध्यापयामास महाभारतपंचमान्)- इस स्मृतिवाक्य में वेदगत पंचत्व संख्या की पूर्ति, वेदभिन्न महाभारत से की गई देखी जाती है। इसके पश्चात् वे कठोपनिषद (1/3/10) के वाक्य- “इन्द्रियों से परे अर्थ हैं और अर्थों से परे मन है” (इन्द्रियेभ्यः परा अर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः)- के आधार पर स्पष्टतः मन की इन्द्रियों से पृथक्ता तथा उच्चतर अवस्था को स्थापित करते हैं। इस प्रकार, वह यह सिद्ध करते हैं कि मनस् या अन्तःकरण को ज्ञानेन्द्रिय के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।<sup>11</sup>

व्यापक अर्थ में “इंद्रिय” ज्ञान का साधन हो सकती है किंतु ज्ञानमीमांसीय दृष्टिकोण से इसका सीमित अर्थ है। नैयायिक आंतर प्रत्यक्ष को मन की साधनरूपता के पदों में परिभाषित करते हैं। आंतर प्रत्यक्ष के साथ बाह्य प्रत्यक्ष, अनुमान एवं उपमान भी मनस् के क्रिया के क्षेत्र में आते हैं। अतएव, इंद्रिय के अर्थ में, मनस् को इंद्रिय नहीं स्वीकार किया जा सकता है। मनस् को एक अर्थ में इंद्रिय स्वीकार किया जा सकता है और एक अर्थ में नहीं किया जा सकता है। नैयायिकों ने स्वयं इस समस्या को दूर करने के प्रयास किए हैं। मनस् को कब इंद्रिय माना जाए और कब इंद्रिय न माना जाए? किंतु उनका विचार स्वर है। इसके विपरीत, वेदांती इस संदर्भ में, प्रत्यक्ष को इंद्रियार्थ सन्निकर्ष के पदों में परिभाषित नहीं करते हैं। वे प्रत्यक्ष को इंद्रियजन्य साक्षात् ज्ञान के रूप में परिभाषित करते हैं। इंद्रियार्थ सन्निकर्ष नहीं वरन् साक्षात्कारिता (अपरोक्षकारिता), प्रत्यक्ष ज्ञान का सहज लक्षण है। सुख जैसे आंतर विषय के सम्बंध में वेदांत का दृष्टिकोण यह है कि यह तो अन्तःकरण या मनस् का ही एक पर्याय है और आत्मा को इसका ज्ञान बिना किसी अन्य माध्यम के सीधे ही होता है। अन्य दर्शन जो इस कारण से मनस् को एक इंद्रिय मानने के लिए विवश होते हैं, वह वेदांतियों पर लागू नहीं होता है।

एक अन्य बिंदु विचारणीय है। ज्ञान के स्वरूप के सम्बंध में वेदांतिक दृष्टिकोण नैयायिकों के दृष्टिकोण से पूर्णतः भिन्न है। नैयायिक ज्ञान को उत्पाद मानकर उसे मनस् के माध्यम से उत्पन्न हुआ मानते हैं। अद्वैतवादियों के मत में, ज्ञान पहले से ही विद्यमान होता है, वह मनस् के द्वारा संवर्धित भर होता है। इस खण्ड का समापन, डॉ. धीरेन्द्र मोहन दत्त की निम्नलिखित टिप्पणी के द्वारा किया जाना प्रासंगिक होगा, जो हमारे मत के अनुकूल है: “यद्यपि कुछ वेदांती अन्य दार्शनिक सम्प्रदायों के अधिकतर दार्शनिकों के समान, मनस् या अन्तःकरण को एक इंद्रिय मानते हैं, किंतु विवरण सम्प्रदाय के लेखकों एवं वेदांत-परिभाषा के द्वारा समर्थित इसके विपरीत का सिद्धांत, वेदांतिक सम्प्रदाय के सामान्य दृष्टिकोण के अधिक अनुरूप है”।<sup>12</sup>

(3)

मनस् की उत्पत्ति के संदर्भ में विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदाय विभिन्न विचार रखते हैं। सांख्य दर्शन के अनुसार मनस् एक सूक्ष्म पदार्थ (अहंकार) का अचेतन कार्य (उत्पाद) है।<sup>13</sup> न्याय-वैशेषिक के अनुसार मनस् एक नित्य द्रव्य है लेकिन बाह्य इंद्रियों के विपरीत यह अभौतिक है, अर्थात् यह पृथ्वी, जल आदि किसी भौतिक तत्त्व के द्वारा निर्मित नहीं है।<sup>14</sup> वेदांतियों के अनुसार मनस्, अन्तःकरण के विभिन्न पहलुओं या कार्यों में से एक पहलू है। मनस् की सत्ता, विषय एवं विषयी के सम्बंध के साथ है। आत्मा, परिवर्तनशील अनुभव का अधिष्ठान या आश्रय है। वेदांत के अनुसार, पाँच प्रकार के प्राणों के साथ अन्तःकरण सूक्ष्म शरीर का निर्माण करता है। ‘अज्ञान’ या ‘अविद्या’ के कारण, आत्मा इस सूक्ष्म शरीर द्वारा परिच्छिन्न या सीमित हो जाती है। डॉ. धीरेन्द्र मोहन दत्त ने अन्तःकरण की उत्पत्ति की, निम्नलिखित रीति से विवेचना की है : “अन्तःकरण अज्ञान से उत्पन्न होता है। आत्मा का भ्रमवश इस अनादि एवं मूल अविद्या से तादात्म्यकरण, उसे वैयक्तिक बना देता है एवं इसी से अन्तःकरण, कार्य के रूप में उत्पन्न होता है। आत्मा स्वयं चैतन्य है। चेतना विषय एवं विषयी के बीच के सम्बंध से उत्पन्न कोई आकस्मिक कार्य नहीं है। यह स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित है। इसे स्वयंप्रभा कहते हैं”।<sup>15</sup>

वेदांत के मत में, अन्तःकरण भौतिक द्रव्य है। वेदांतियों ने इसकी उत्पत्ति के क्रम की भी विवेचना की है और वे इसे पंचीकरण की प्रक्रिया कहते हैं। अन्तःकरण का गठन आकाश, जल, अग्नि, वायु एवं पृथ्वी आदि पंचमहाभूतों के सत्त्वांश से होता है।<sup>16</sup>

अन्तःकरण एवं जगत् के दूसरे अन्य सभी भौतिक पदार्थों के भौतिक उपादान एवं अन्तःकरण के भौतिक उपादान एक समान हैं। अंतर उनकी संघटना के परिमाण में निहित है। मनस् में यह क्षमता है कि वह विषय की ओर जा सकता है और उसका रूप ले सकता है। इस प्रक्रिया की व्याख्या के लिए स्वामी सत्प्रकाशानंद को उद्धृत करना उचित होगा। वह कहते हैं : “पाँचों सूक्ष्म द्रव्यों के सत्त्व गुणों के आपस में मिलने से मनस् (अन्तःकरण) की उत्पत्ति होती है, इसलिए वह भौतिक एवं अंशों से मिलकर बना है। इसमें जहाँ सत्त्व का उत्कर्ष रहता है, वहीं रजस् एवं तमस् दबे रहते हैं। मूलतः जड़ पदार्थ के शुद्धतम एवं सूक्ष्मतम सार भाग से बने होने के कारण, मनस्

(अन्तःकरण) के पास यह क्षमता है कि वह फैल एवं सिकुड़ सकता है एवं ज्ञान के किसी भी विषय का रूप ले सकता है, फिर चाहे वह विषय कितना ही बड़ा या छोटा या सूक्ष्म क्यों न हो। यह तुरंत जा सकता है। यद्यपि यह हृदय में स्थित रहता है किंतु जाग्रत अवस्था में यह पूरे शरीर में व्याप्त रहता है। स्वप्नावस्था में यह सूक्ष्म शरीर से कम या ज्यादा गति करता है। सुषुप्ति में इसका कारण शरीर में लय हो जाता है”<sup>17</sup>

वेदांत-परिभाषाकार के अनुसार अन्तःकरण के चार भिन्न पहलू या कार्य हैं, जो संशय, निश्चय, ममकार और स्मृति कहलाते हैं। ये मानसिक अवस्थाएँ हैं। अन्तःकरण इन चार मानसिक अवस्थाओं को धारण करता है इसलिए क्रमशः मन, बुद्धि, अहंकार एवं चित्त कहलाता है। मन का विषय संशय है, बुद्धि का निश्चय, अहंकार का ‘मैं-पन’, चित्त का स्मृति है।

डॉ. धीरेन्द्र मोहन दत्त ने इनकी विवेचना निम्नलिखित शब्दों में की है : “अन्तःकरण की अनिश्चयात्मक स्थिति को ‘मनस्’ कहते हैं उदाहरणार्थ जब हम निश्चय न कर पाएँ कि कोई विषय ‘यह’ या ‘वह’ है। अन्तःकरण की निश्चयात्मक स्थिति ‘बुद्धि’ है, जैसे जब हम निश्चयात्मक रूप से किसी वस्तु को “यह है” के रूप में जानें। आत्मा के किसी संदर्भ में अन्तःकरण की स्थिति ‘अहंकार’ है जैसा कि “मैं सुखी हूँ”, जैसा ज्ञान। स्मृति की स्थिति में अन्तःकरण ‘चित्त’ है, जैसे अतीत की घटना का ज्ञान”<sup>19</sup>

पंचदशीकार, अन्तःकरण के केवल दो कार्यों - ‘मनस्’ एवं ‘बुद्धि’ में अन्तःकरण का भेद करते हैं। अन्तःकरण के कार्य-भेद के कारण यह विभेद है। मनस् अन्तःकरण का वह पहलू है जिसका कार्य संशय है और वह पहलू है जिसका कार्य विश्लेषण करना एवं निश्चय करना है (सर्ववृत्तिभेदेन तद्विधा; मनो विमर्शरूपम् स्याद्बुद्धिः स्यान्निश्चयात्मिका)<sup>20</sup> परवर्ती लेखकों के विचार में, चित्त का अंतर्भाव मनस् में एवं अहंकार का अंतर्भाव बुद्धि में है। वेदांत-सार के लेखक भी इस द्वि-आयामी विभाजन को स्वीकार करते हैं, किंतु उनके अनुसार अहंकार का अंतर्भाव मनस् में चित्त का अंतर्भाव बुद्धि में है। ये सारे वेदांती मनस् एवं बुद्धि की संकल्पनाओं एवं गतिविधि के बारे में तो एकमत हैं किंतु वे अहंकार एवं चित्त का भिन्न आशय ग्रहण करते हैं। वे मनस् एवं बुद्धि के संबंधों के बारे में भी एकमत नहीं हैं।

इस विमर्श से हम अन्तःकरण की वेदांतिक संकल्पना, अन्तःकरण की उत्पत्ति, उसके स्वरूप, एवं उसकी गतिविधियों की सीमा को समझ सकते हैं। तत्त्वमीमांसीय दृष्टिकोण से वेदांतिक-विचार एवं अन्य दार्शनिक सम्प्रदायों के विचारों में बहुत अंतर है। यथा नैयायिकों के अनुसार मनस् आत्मा के समान नित्य एवं स्वतंत्र द्रव्य है। अद्वैतवादी इस विचार को नहीं मानते। उनके अनुसार मनस् एक उत्पत्तिशील द्रव्य है। चूँकि यह उत्पन्न होने वाला द्रव्य है इसलिए यह नित्य नहीं हो सकता। यह अविद्या से उत्पन्न होता है। अन्तःकरण की आत्मा से पृथक् स्वतंत्र सत्ता नहीं है। किंतु सभी दार्शनिक सम्प्रदाय इस बारे में तो एकमत हैं किमनस्, आत्मा नहीं है, वह तो जड़ है।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से, वेदांत सम्मत अन्तःकरण भी वह सभी कार्य निष्पादित करता है जिसे अन्य दर्शनों में मनस् द्वारा निष्पादित किए जाने का उल्लेख किया गया है। नैयायिकों एवं अन्य दार्शनिकों द्वारा इच्छा, संकल्प एवं ज्ञान आदि गुणों को आत्मा के धर्म निरूपित किया गया है। किंतु वेदांतियों के अनुसार न तो केवल आत्मा और न ही केवल अन्तःकरण ही अकेला इन गतिविधियों के लिए उत्तरदायी है। ये तो आत्मा एवं अन्तःकरण के परस्पर मिलने से उत्पन्न होते हैं।

परिमाण (आयाम या मात्रा) भी मनस् के स्वरूप से सम्बंधित एक अन्य पहलू है। भारतीय दर्शन में परिमाण के तीन प्रकारों का उल्लेख है। ये अणु, मध्यम एवं विभु हैं। अणु परिमाण अखण्ड, अविभाज्य है। मध्यम परिमाण खण्डयुक्त है। विभु परिमाण अखण्ड एवं व्यापक है। नैयायिक मनस् को अणु परिमाणी मानते हैं। मीमांसक मनस् को विभु परिमाणी एवं स्पंदनरहित मानते हैं। वेदांती अन्तःकरण को मध्यम परिमाणी मानते हैं। नैयायिकों के अनुसार मन के अणुरूप होने के कारण ही सिर से पैर तक की घटनाओं का एकसाथ ज्ञान नहीं होता है। मन की अणुरूपता की सिद्धि के लिए यदि युगपत ज्ञान की अशक्यता को कारण माना जाए तो मीमांसकों के अनुसार यह उचित नहीं है क्योंकि युगपतज्ञानानुपपत्ति को मन का लिंग नहीं मान सकते, (एक साथ ही आपाद-

मस्तक वेदना का ज्ञान होना) क्योंकि जैसे विभु आकाश को श्रोत मान लेने पर भी शब्दों की युगपद्ग्रहण-प्रसक्ति उपाधि को लेकर हटाई जाती है, वैसे ही विभु मन की भी युगपज्ज्ञानानुपपत्ति का समर्थन उपाधि को लेकर किया जा सकता है। श्रोत इन्द्रिय विभु आकाश की कर्णशष्कुली में स्थित है फिर भी एक साथ ही शब्दों का ग्रहण नहीं करती, बल्कि क्रम से करती है इसलिए मन भी विभु होकर क्रम से वेदना का ग्रहण करे तो इसमें कोई विरोध नहीं है। इसलिए इसके लिए मन का विभु होने में कोई बाधा नहीं है। तात्पर्य यह है कि क्रम से वेदना का ज्ञान होना मन की अणुरूपता को ही सिद्ध नहीं करता। श्रोत इंद्रिय में विभु आकाश तत्त्व उपाधि रूप से उपस्थित है एवं यह क्रम से शब्दों के ज्ञान का साधन है। इस आधार पर तो मन की विभुरूपता भी सिद्ध की जा सकती है। इसके अतिरिक्त मन एक साथ कई विषयों से संयुक्त हो सकता है जैसे शतावधानी व्यक्ति को एक काल में ही अनेक ज्ञान होते हैं, इससे तो मन की विभुता को भी सिद्ध किया जा सकता है।

वेदांतियों के अनुसार अन्तःकरण एक परिच्छिन्न (सीमित) द्रव्य है जो खण्डयुक्त है क्योंकि यह एक उत्पन्न होने वाला द्रव्य है और प्रत्येक उत्पन्न होने वाला द्रव्य, अनिवार्यतः खण्डयुक्त या भागों से मिलकर बना होता है। अणु तथा विभु रूप पदार्थ ही निरवयव तथा नित्य होते हैं। वेदांतियों के अनुसार नैयायिकों के समान इसे भौतिक किंतु एक-आण्विक मानना तथा मीमांसकों के समान इसे विभु मानना उचित नहीं है। वेदांतियों के अनुसार मध्यम परिमाण होने से यह शरीर परिणामी है तथा यह पूरे शरीर में सिर से पैर तक व्याप्त रहकर इंद्रियों के माध्यम से वेदनाओं को ग्रहण करता है।

इस प्रकार, अब तक अन्तःकरण की संकल्पना, इसकी उत्पत्ति, स्वरूप एवं गतिविधियों की चर्चा की गई है। अब, प्रत्यक्ष ज्ञान में अन्तःकरण की भूमिका पर विचार अपेक्षित है।

#### (4)

अन्तःकरण के कार्य के संदर्भ में यह उल्लेखनीय बात है कि केवल प्रत्यक्ष ज्ञान मात्र में ही इसकी भूमिका समाप्त नहीं हो जाती है वरन् अनुमान एवं उपमान आदि में भी इसकी भूमिका रहती है। लेकिन यहाँ केवल प्रत्यक्ष ज्ञान में इसकी भूमिका पर विचार किया गया है। इस सम्बंध में अद्वैत वेदांत के अनुसार तीन बिंदु महत्वपूर्ण हैं। प्रथम, अन्तःकरण का विषय की ओर बाहर जाना। द्वितीय, अन्तःकरण द्वारा विषय का रूप ग्रहण करना। तृतीय, आत्मा की भूमिका। प्रथम बिंदु के संदर्भ में ध्यातव्य है कि अद्वैत वेदांत के अनुसार जड़ वस्तुओं के समान अन्तःकरण वस्तुतः बाहर गमन करता है। अन्तःकरण सूक्ष्मतम द्रव्य है और सीमित परिमाणी है। अतएव इसकी गति लाक्षणिक न होकर वास्तविक है। वेदांत दर्शन के अनुसार, यहाँ तक कि ज्ञान की सामग्री एकत्रित करने में भी अन्तःकरण, ज्ञानेन्द्रियों के साथ सहयोग करता है। यह सामान्य धारणा कि 'ज्ञानेन्द्रियाँ पहले सक्रिय होती हैं तत्पश्चात् मनस् सक्रिय होता है', वेदांतियों को रुचिकर नहीं लगती है। अचानक चुभी हुई सुई और अनपेक्षित बिजली की कड़कड़ाहट जैसी घटनाओं में, मनस् की प्रबल सक्रियता का अनुभव होता है। यद्यपि इन उदाहरणों में नियत संकल्प नहीं दिखाई देता और अवधान (ध्यान) किसी अन्य दिशा में लगा रहता है तथापि चाहे कितना ही सूक्ष्म अवधान क्यों न हो, वह इस अनपेक्षित दिशा के लिए उपलब्ध रहता है। यदि ऐसा नहीं होता तो ज्ञानेन्द्रियाँ खुद अपने आप स्पर्श और शब्द को ग्रहण करने में असमर्थ होतीं, जैसा कि अक्सर प्रगाढ़ निद्रा या अवधान की पूर्ण तन्मयता के दुर्लभ क्षणों में या पूर्ण शून्यचित्तता की दशा में होता है। ज्ञान की अत्यंत प्रारंभिक अवस्था में ही अन्तःकरण की सक्रियता विद्यमान रहती है, भले ही यह हमेशा अपनी सक्रियता के प्रति सचेतन न हो। अतएव, इसका सार, डॉ. धीरेन्द्र मोहन दत्त के इन शब्दों में दिया जा सकता है कि "ज्ञान की प्रक्रिया, अन्तःकरण के द्वारा आरंभ की जाती है, यद्यपि यह चेतन संकल्प के साथ नहीं होती"।<sup>21</sup>

द्वितीय बिंदु के संदर्भ में कहा जा सकता है कि अन्तःकरण का बाहर जाना एवं विषय का रूप धारण करना उचित है। यदि अन्तःकरण भी उन्हीं समान उपादानों से मिलकर बना है, जिनसे कि रूपाकृतियाँ तो यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि अन्तःकरण विषयों या वस्तुओं का रूप धारण कर सकता है।

अब तृतीय बिंदु विचारणीय है। यह प्रत्यक्ष ज्ञान में आत्मा की भूमिका से सम्बंधित है। प्रत्यक्ष के प्रकरण

में इसे इस तरह से सरलीकृत किया जा सकता है - एक अन्तःकरण वृत्ति कैसे आत्मा या ज्ञाता से जुड़ती है? इसे जानने के लिए आत्मा और जगत् के मध्य सम्बंध को अनिवार्यतः समझना आवश्यक है। मधुसूदन सरस्वती एवं अप्पय दीक्षित ने इनके मध्य तीन प्रकार के सम्बंध सुझाये हैं। इस शोध-पत्र में वेदांत-परिभाषाकार द्वारा उल्लेखित सम्बंध का अनुसरण किया गया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार जीवात्मा सीमित तथा परिच्छिन्न है। ज्ञान का अभिप्राय अन्तःकरण के माध्यम से ज्ञाता एवं ज्ञेय के मध्य सम्बंध का होना है। अद्वैतवाद में परब्रह्म के बाहर कुछ भी स्थित नहीं है। अतएव, जीवात्मा से स्वतंत्र होने के कारण, विषय आत्मा के प्रकाश से नहीं प्रकाशित होता बल्कि विषय के आश्रय, ब्रह्म के प्रकाश से प्रकाशित होता है। डॉ. धीरेन्द्र मोहन दत्त के मतानुसार “विषय के दिखाई देने या प्रकट होने का अभिप्राय यह है कि शुद्ध चैतन्य अपने आपको विषय के रूप में प्रकट करता है”।<sup>22</sup> अब एक कठिनाई उत्पन्न होती है कि क्यों एक ही चैतन्य कभी अपने आपको कुर्सी तथा फिर एक वृक्ष के रूप में प्रकट करता है या फिर क्यों दूर स्थित वृक्ष या कुर्सी अपने दृश्य गुणों को ही प्रकट करता है जबकि हम इसके दूसरे गुणों या गंधादि का अनुभव नहीं करते।

डॉ. धीरेन्द्रमोहन दत्त ने अद्वैत-सिद्धि एवं सिद्धांतलेशसंग्रह आदि वेदांतिक ग्रंथों के प्रकाश में इसकी निम्न रीति से विवेचना की है : “यद्यपि जीवात्मा एवं विषय का अधिष्ठान एक समान चैतन्य है किंतु दोनों के अभिव्यंजक भिन्न होने से एक ही चैतन्य को वे दोनों भिन्न प्रकार से अभिव्यक्त करते हैं। प्रत्यक्ष के संदर्भ में, अन्तःकरण के बाहर जाकर विषय के गुण ग्रहण करने से, विशेषकर विषयी और विषय के दो पृथक् घटकों का भेद इस सीमा तक हट जाता है कि प्रमाता चैतन्य एवं प्रमेय चैतन्य के मध्य एकता स्थापित हो जाती है। अतएव, इस सिद्धांत के समर्थक यह मानते हैं कि आत्मा एवं विषय के मध्य स्थित एकता (अभेदाभिव्यक्ति) के प्रकाशित होने के लिए अन्तःकरण का विषय की ओर बाहर जाना आवश्यक है”।<sup>23</sup>

इस प्रकार अन्तःकरण के इंद्रिय के माध्यम से विषय का रूप ले लेने से दृश्य एवं दृष्टा के मध्य का भेद दूर हो जाता है। अद्वैत वेदांत के अनुसार अखण्ड, एकरस, व्यापक चैतन्य में तो कोई भेद नहीं है। भेद तो केवल उपाधियों के कारण प्रतीत होता है। वे उपाधियाँ जब तक भिन्न देश में रहेंगी, तभी तक चैतन्य में भेद पैदा कर सकती हैं। जब वे उपाधियाँ एक देश में मिलती हैं, तब भेद नष्ट होता है। ‘घट’ और ‘घट के सम्बंध से घटाकार हुई वृत्ति’, इन दो उपाधियों से युक्त हुआ ‘द्विविध चैतन्य’ शरीर के बाहर एक ही स्थान में स्थित हुई उन दो उपाधियों से युक्त हुआ है। अतः उनके भेद की प्रतीति नहीं हो सकती क्योंकि भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थित उपाधियाँ ही उपाधियों में भेदप्रतीति करा सकती हैं। घट के प्रत्यक्ष ज्ञान के समय घट देश के साथ अन्तःकरण का संयोग होता है। अन्तःकरण के एक भाग को ही वृत्ति कहते हैं। इस कारण ‘घटावच्छिन्न-चैतन्य’ और घट को अभिव्यक्त करने वाला चैतन्य दोनों एक ही हैं।

इस तरह यहाँ हमने वेदांत दर्शन की अन्तःकरण की संकल्पना से सम्बद्ध विभिन्न पहलुओं जैसे इसकी उत्पत्ति, इसके स्वरूप एवं गतिविधियों की चर्चा की है। अद्वैत वेदांत के अनुसार मन या अन्तःकरण शरीर से भिन्न है। यह शरीर एवं आत्मा के मध्य की मध्यस्त स्थिति में रहता है। इसका अन्तर्भाव न तो शरीर में ही और न ही आत्मा में ही किया जा सकता है। मन एक प्रकार का जड़ पदार्थ है किंतु बहुत ही सूक्ष्म जड़ पदार्थ है। मन एवं शरीर दोनों भौतिक स्वरूप के हैं और वे दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। यद्यपि मन जड़ालमक प्रकृति वाला है किंतु यह आत्म-चैतन्य को प्रतिबिंबित कर सकता है। चूँकि वास्तविक आत्मा का ही मूल स्वभाव चेतना है इसलिए चेतना आत्मा से मन में होकर इंद्रियों में पहुँचती है। वेदांती मन या अन्तःकरण को एक इंद्रिय नहीं मानते क्योंकि केवल प्रत्यक्ष तक ही इसकी भूमिका सीमित नहीं है। मन केवल संवेदनाओं को ग्रहण ही नहीं करता बल्कि उस पर प्रतिक्रिया भी करता है। मन के अस्तित्व के प्रमाण के सम्बंध में अद्वैतवादी इसकी प्रत्यक्ष अनुभूति को स्वीकार करते हैं। आत्मा को इसका साक्षात् ज्ञान होता है। जड़ पदार्थ होने के कारण अन्तःकरण की अविद्या से उत्पत्ति होती है और पंचीकरण की प्रक्रिया के द्वारा इसकी संघटना के क्रम की व्याख्या की गई है। अन्तःकरण के चार भिन्न पहलु या कार्य हैं। ये संशय, निश्चय, अहंता और स्मृति हैं। मन की प्रकृति के सम्बंध में वेदांतियों का मत है कि यह

मध्यम परिमाणी सावयवी द्रव्य है। प्रत्यक्ष में अन्तःकरण की भूमिका के सम्बंध में वेदांती इसके विषय तक बाहर जाकर विषयाकार होने तथा इस विषय-वृत्ति के आत्मा की ज्योति से प्रकाशित होना आवश्यक मानते हैं। इस प्रकार, यह अद्वैत वेदांत दर्शन में मनस् तत्त्व (अन्तःकरण) की अवधारणा का संक्षिप्त विवेचन है।

---

भारतीय दर्शन विभाग,  
सनातन धर्म एवं भारतीय ज्ञान अध्ययनशाला  
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,  
साँची, रायसेन, (म.प्र.) 464661

#### संदर्भ -

1. विद्याभूषण, सतीषचंद्र (1913) : द न्याय सूत्रस ऑफ गोतम, भुवनेश्वरी आश्रम प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 89.
2. चटर्जी, सतीशचन्द्र (1913) : न्याय थ्योरी ऑफ नॉलेज, रूपा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 160.
3. माधवानंद, स्वामी (1950) : द बृहदारण्यक उपनिषद विथ द कॉम्मेन्टरी ऑफ शंकराचार्य, (अनु.), अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, पृ. 213-214.
4. वीरेश्वरानंद, स्वामी (2019) : ब्रह्मसूत्रस ऐकार्डिंग टू श्री शंकर, (अनु.), अद्वैत आश्रम, कोलकाता, पृ. 232.
5. चटर्जी, सतीशचन्द्र (2015) : न्याय थ्योरी ऑफ नॉलेज, रूपा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 160.
6. दत्त, डी. एम. (2017) : द सिक्स वेज़ ऑफ नोइंग, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, पृ. 46.
7. गंभीरानंद, स्वामी (1977) : एट उपनिषद्स- विथ द कॉम्मेन्टरी ऑफ श्री शंकराचार्य, (अनु.), अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, पृ. 159.
8. पूर्वोक्त, पृ. 155.
9. वीरेश्वरानंद, पूर्वोक्त, पृ. 258.
10. दत्त, पूर्वोक्त, पृ. 47.
11. शास्त्री, केशवलाल, (2009) : वेदांत-परिभाषा, (अनु.), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली पृ. 16-17.
12. पूर्वोक्त, पृ. 51.
13. सांख्यकारिका, 27.
14. तर्कसंग्रह, 2.9
15. दत्त, पूर्वोक्त, पृ. 42.
16. पंचदशी, 1.20
17. सत्प्रकाशानंद, स्वामी (1995) : मेथड्स ऑफ नॉलेज, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, पृ. 51.
18. माधवानंद, पूर्वोक्त, पृ. 32.
19. दत्त, पूर्वोक्त, पृ. 42.
20. पंचदशी, 1.20
21. दत्त, पूर्वोक्त, पृ. 55.
22. पूर्वोक्त, पृ. 65.
23. पूर्वोक्त, पृ. 66.

## निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार और विद्यालय प्रबंधन समिति

*श्याम सुन्दर पटैरिया*

लगभग 100 वर्षों के लम्बे स्वाधीनता संग्राम एवं लाखों वीर सपूतों के बलिदान के बाद देश 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्र भारत में प्राथमिक शिक्षा की सार्वभौमिक उपलब्धता के लिए 'शिक्षा' को संविधान के मूल अधिकारों में सम्मिलित करने के लिए अनेक प्रयास किए गए, परन्तु संविधान निर्माताओं ने देश की तत्कालीन परिस्थितियों एवं संसाधनों को दृष्टि में रखते हुए 'मुफ्त प्राथमिक शिक्षा' को मूल अधिकारों की जगह 'राज्य के नीति-निर्देशक तत्व' के अंतर्गत अनुच्छेद- 45 में सम्मिलित किया और 'शिक्षा' को 'राज्य-सूची' के विषय के रूप में स्वीकार किया (डॉ.डी.डी. बसु-2016)। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार एवं विभिन्न राज्यों की सरकारों ने विभिन्न कालखंडों में प्राथमिक शिक्षा की सार्वभौमिक उपलब्धता के लिए अनेक प्रयास किए, किन्तु आपेक्षित सफलता नहीं मिली। शिक्षा के सभी क्षेत्र में विकास की यथास्थिति का अध्ययन करने एवं संबंधित भावी संभावनाओं पर सलाह देने के लिए 'कोठारी आयोग-1964' का गठन किया गया, इसकी सिफारिशों के आधार पर देश में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1968' लागू की गई, यह स्वतंत्र भारत की पहली शिक्षा नीति थी। लगभग 18 वर्ष बाद राजीव गांधी सरकार ने शिक्षा प्रणाली पर पुनर्विचार कर उसे नया रूप देने की दृष्टि से 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 1986' लागू की जो देश की दूसरी शिक्षा नीति थी। सम्पूर्ण देश में साक्षरता की स्थिति सुधारने व अधिक से अधिक लोगों को साक्षर बनाने के लिए वर्ष-1987-88 में 'राष्ट्रीय साक्षरता मिशन' चलाया गया और सन्-1995 में बच्चों के नामांकन में वृद्धि एवं उनके विद्यालय में ठहराव की दृष्टि से प्राथमिक स्कूलों में 'मध्याह्न भोजन योजना' आरम्भ की गई, इस योजना से बच्चों के नामांकन, उपस्थिति व उनके विद्यालय में ठहराव में बढ़ोतरी हुई जिससे प्राथमिक शिक्षा को बल मिला, साथ ही सन्-2001 में गुणवत्तापूरक प्रारंभिक शिक्षा के सर्व-सुलभीकरण हेतु 'सर्व शिक्षा अभियान' प्रारंभ किया गया (डॉ. नीलू मैरी एलेक्स-2008)। संविधान निर्माण के समय 'शिक्षा' को 'राज्य-सूची' के विषय के रूप में अपनाया था, किन्तु समय की मांग एवं तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए सन्-1976 में 42 वें संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा को राज्य-सूची से हटाकर कर 'समवर्ती सूची' में सम्मिलित किया गया, जिससे शिक्षा पर नीतिनिर्धारण व कानून निर्माण के सम्बन्ध में केन्द्र व राज्य सरकारें मिलकर कार्य कर सकें (डॉ.डी.डी. बसु-2016 और डॉ. एस. पी. गुप्ता-2016)। सन्-1992 के 'मोहनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य' एवं 1993 के 'उन्नीकृष्णन बनाम आंध्रप्रदेश राज्य' वाद में भारत के उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) ने अपने निर्णयों में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने को अनुच्छेद-21 में निहित 'मूल अधिकार' माना, इसके साथ ही कहा कि "प्रत्येक नागरिक को निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना राज्य का संवैधानिक दायित्व है" (डॉ.जे.एन.पांडे-2019)।

अंततः न्यायिक निर्णयों, अंतर्राष्ट्रीय कानूनों और तत्कालीन समय की मांग को ध्यान में रखते हुए अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने सन् -2002 में 86वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया, जिसके तहत 'शिक्षा का अधिकार' को अनुच्छेद 21 (क) के अंतर्गत 'मूल मौलिक अधिकार' का दर्जा मिला (भारत का संविधान-

2020)। इसके आठ वर्ष बाद 86 वां संविधान संशोधन अधिनियम के प्रावधानों को क्रियान्वित करने के लिए 26 अगस्त 2009 को 'निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम-2009' प्रतिस्थापित हुआ, जिसे 27 अगस्त 2009 को भारत के राजपत्र (असाधारण) में अधिसूचित किया गया (ममता मेहरोत्रा-2012)। यह एक बहुप्रतीक्षित अधिनियम है, जो 'आर.टी.ई. एक्ट' के नाम से भी जाना जाता है। प्राथमिक शिक्षा की सार्वभौमिक उपलब्धता की दृष्टि 'निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009' एक ऐतिहासिक कदम माना गया। यह अधिनियम, समुचित सरकार को बाध्य करता है, कि वह 6 से 14 साल तक की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराये। इस अधिनियम में 6 से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बालक को उसकी प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक किसी आस-पास के स्कूल में निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है, साथ ही प्राथमिक शिक्षा लेने या पूरी करने के लिए किसी भी तरह की फीस या शुल्क नहीं ली जा सकती, न ही प्राथमिक शिक्षा पूरी किए बिना विद्यालय से निष्कासित ही किया जा सकता। अधिनियम में किसी कक्षा में प्रवेश न लेने या बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों को उनकी आयु के अनुरूप समुचित कक्षा में प्रवेश देने एवं उन्हें विशेष शैक्षिक प्रशिक्षण देने का प्रावधान किया गया है, इसके साथ ही किसी बच्चे के आयु का कोई भी सबूत नहीं होने के कारण किसी स्कूल में प्रवेश देने से इंकार किया जा सकता। अधिनियम के अनुसार किसी बालक को परीक्षा परिणाम या अन्य किसी कारण से उसी कक्षा में नहीं रोका जा सकता और किसी बच्चे को शारीरिक दण्ड तथा मानसिक उत्पीड़न नहीं दिया जा सकता, यदि कोई व्यक्ति या शिक्षक ऐसा कृत करता है तो, उसके विरुद्ध विभागीय अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाएगी। अधिनियम, शिक्षक को जनगणना, निर्वाचन एवं आपदा सेवाओं को छोड़ किसी गैर-शैक्षिक कार्य में लगाने और शिक्षकों के प्राइवेट ट्यूशन या प्राइवेट शिक्षण क्रियाओं में भाग लेना का निषेध करता है। इस एक्ट के अनुसार प्रत्येक माता-पिता या संरक्षक का परम कर्तव्य है कि, वह अपने बच्चों का पड़ोस के विद्यालय में प्रारम्भिक शिक्षा के लिए प्रवेश सुनिश्चित करें। अधिनियम में प्रतिव्यक्ति शुल्क (कैपिटेशन फीस) लेने और अनुवीक्षण प्रक्रिया (स्क्रीनिंग प्रोसेस) का निषेध किया गया है, इसे दण्डनीय अपराध माना गया है।.....आदि (आर.टी.ई. एक्ट-2009)

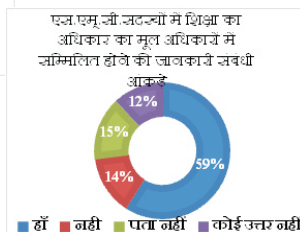
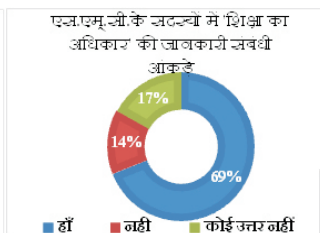
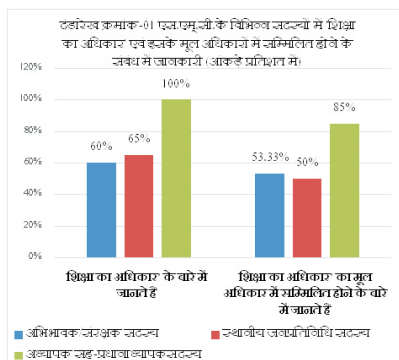
लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण और सामाजिक सहभागिता के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009' में 'विद्यालय या शाला प्रबंधन समिति' के गठन का प्रावधान किया गया है, जो कि इस अधिनियम का सबसे महत्वपूर्ण प्रावधान है। अधिनियम की धारा-21(1) में कहा गया है कि प्रत्येक विद्यालय या स्कूल में 2 साल के कार्यकाल के लिए 'एक विद्यालय या शाला प्रबंधन समिति' का गठन किया जाएगा, प्रत्येक 2 साल के बाद इसका पुनः गठन किया जाएगा। इस समिति में माता-पिता या संरक्षक (अभिभावक), स्थानीय प्राधिकारी के प्रतिनिधि और अध्यापक -सह प्रधानाध्यापक (शिक्षक) सदस्य सम्मिलित होंगे। इसमें कम से कम तीन चौथाई अर्थात् 75% सदस्य माता-पिता या संरक्षक (अभिभावक) होंगे, साथ ही यह भी सुनिश्चित किया गया है कि कुल सदस्यों में से आधी सदस्य अर्थात् 50% महिलाएं होंगी। एस.एम.सी.में 'दुर्बल वर्ग' एवं 'अलाभित समूह' के बच्चों के माता-पिता या संरक्षकों (अभिभावकों) को सामान अनुपात में प्रतिनिधित्व दिया जाएगा (आर. टी.ई.एक्ट-2009)। प्रत्येक एस.एम.सी.में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष और एक पदेन संयोजक या सचिव होगा, समिति के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का निर्वाचित माता-पिता या संरक्षक सदस्यों में से किया जायगा, जबकि विद्यालय का प्रधानाध्यापक या उसकी अनुपस्थिति में वरिष्ठ अध्यापक समिति का पदेन सदस्य-संयोजक या सचिव होगा (नियम-2010 धारा- 3[4])। प्रत्येक महिने में कम से कम एक बार इस समिति की बैठक का आयोजन किया जाएगा, बैठक की कार्यवाहियों एवं निर्णयों का लिखित रिकार्ड अनिवार्य रूप से बनाया जाएगा व आम जनता के लिए उपलब्ध कराया जाएगा (नियम-2010 धारा- 3[5])। आर.टी.ई. एक्ट की धारा-21(2) में एस.एम.सी. के कर्तव्यों या दायित्वों को बतलाया गया है, जो निम्न है- स्कूल के विकास के लिए 'विद्यालय या शाला विकास योजना' तैयार करना और उसकी सिफारिश करना, विद्यालय को प्राप्त सभी तरह के अनुदानों जिसमें समुचित सरकार तथा स्थानीय प्राधिकारी प्रदत्त अनुदान भी सम्मिलित है, के उपयोग पर निगरानी रखना और विद्यालय के

संचालन और दैनिक क्रिया-कलापों को मॉनिटर करना अन्य निर्धारित कार्य करेगी जैसे-यह देखना कि 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों का नाम विद्यालय में दर्ज हो, वे नियमित विद्यालय जाएं और किसी भी कारण से बीच में पढ़ाई न छोड़े अर्थात् शत प्रतिशत नामांकन, उपस्थिति और प्राथमिक शिक्षा का पूरा किया जाना सुनिश्चित करना। अपने आसपास के लोगों को आर.टी.ई. एक्ट-2009 एवं इससे सम्बंधित नियमों के विभिन्न प्रावधानों को सृजनात्मक रूप से सरल भाषा में बताना और उन्हें इसके प्रति जागरूक करना। शाला नियमित रूप से समय पर खुले व बंद हो इसकी मानीटरिंग करना, साथ ही यह सुनिश्चित करना कि सभी शिक्षक नियमित रूप से समय पर विद्यालय व कक्षा में उपस्थित हों। माता-पिता या संरक्षकों के साथ नियमित बातचीत करना, उनसे बच्चों की उपस्थिति, पढ़ाई की स्थिति (अधिगम स्तर) एवं अन्य आवश्यक मुद्दों पर संवाद करना। यह देखना कि किसी बालक को प्रवेश देने से मना न किया जाए, किसी बालक या उसके अभिभावक से कोई फीस/शुल्क न ली जाए और यह भी देखना कि किसी बालक का मानसिक या शारीरिक उत्पीड़न न हो। यह देखना कि कोई सरकारी शिक्षक या शिक्षिका प्राइवेट ट्यूशन या कोई प्राइवेट शिक्षण कार्य तो नहीं कर रहे। यह देखना कि किसी सरकारी शिक्षक को जनगणना, निर्वाचन व आपदा प्रबंधन को छोड़ कर किसी अन्य गैर-शैक्षिक कार्य में तो नहीं लगाया गया है। अधिनियम की अनुसूची में दिये गए मान व मानको के पालन को मानीटर करना। आयु के अनुसार समुचित कक्षा में प्रवेश एवं उनके लिए विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था को मानीटर करना साथ ही उनकी आवश्यकताओं का पता लगाना व उसके लिए योजना बनाना। मध्यान भोजन व्यवस्था को मानीटर करना। निःशुल्क ग्रास्त (दिव्यांग) बालकों की पहचान करना, उनकी शिक्षा सुविधाओं को मानीटर करना। विद्यालय के वार्षिक बजट लेखा को तैयार करना।..... इत्यादि (नियम-2010 धारा- 3 [6])

किसी भी नियम, कानून या योजना की सफलता उसके सही क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। 'शिक्षा का अधिकार' कानून को लागू हुए 10 साल से अधिक समय हो गया है, इसलिए इस बात का आंकलन करना बहुत आवश्यक है, कि आज की वर्तमान परिस्थिति व समय में जमीनी स्तर पर इसका कार्यान्वयन कितना हुआ है। 'निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 एवं इसके तपसिल में भारत की केन्द्रीय सरकार का नियम- 2010 में एस.एम.सी. को महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सौंपे गए हैं, अतः इनका सही क्रियान्वयन तभी संभव है, जब एस.एम.सी. अपनी भूमिका का निर्वाह ठीक ढंग से करें और इसके लिए यह जरूरी है कि विद्यालय प्रबंधन समिति के सदस्यों को आर.टी.ई.एक्ट व इससे सम्बंधित नियमों की जानकारी हो और इसमें दिए गए उनके अधिकारों व कर्तव्यों की भी जानकारी हो। इसी लिए शोध-पत्र में 'निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009' के क्रियान्वयन में 'विद्यालय प्रबंधन समिति' की भूमिका का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण-विधि का प्रयोग करते हुए स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्रदत्तों या तथ्यों को संकलित किया गया। यह अध्ययन सागर जिले के शाहगढ़ विकासखंड के शासकीय विद्यालयों की 'विद्यालय प्रबंधन समिति' (एस.एम.सी.) के सदस्यों पर किया गया है, जिसमें उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के आधार पर समग्र में से कुल 20 विद्यालयों को चुना गया और चयनित विद्यालयों की एस.एम.सी. के सदस्यों में से 200 उत्तरदाताओं को चयनित किया गया है।

#### तालिका क्रमांक - 01

| स. क्र. | उत्तरदाता का प्रकार         | कुल संख्या | के संबंध में 'शिक्षा का अधिकार' जानकारी |                |                | का मूल अधिकारों में शिक्षा का अधिकार सम्मिलित होने संबंधी जानकारी |                |             |                |
|---------|-----------------------------|------------|-----------------------------------------|----------------|----------------|-------------------------------------------------------------------|----------------|-------------|----------------|
|         |                             |            | हाँ                                     | नहीं           | कोई उत्तर नहीं | हाँ                                                               | नहीं           | पता नहीं    | कोई उत्तर नहीं |
| 1.      | माता-पिता या संरक्षक सदस्य  | 120        | 72<br>(60%)                             | 22<br>(18.33%) | 26<br>(21.66%) | 64<br>(53.33%)                                                    | 22<br>(18.33%) | 18<br>(15%) | 16<br>(13.33%) |
| 2.      | स्थानीय जन-प्रतिनिधि सदस्य  | 40         | 26<br>(65%)                             | 06<br>(15%)    | 08<br>(20%)    | 20<br>(50%)                                                       | 04<br>(10%)    | 10<br>(25%) | 06<br>(15%)    |
| 3.      | अध्यापक-सह-प्राध्यापक सदस्य | 40         | 40<br>(100%)                            | 00<br>(%)      | 00<br>(00%)    | 34<br>(85%)                                                       | 02<br>(5%)     | 02<br>(5%)  | 02<br>(5%)     |
| 4.      | महायोग                      | 200        | 138<br>(69%)                            | 28<br>(14%)    | 34<br>(17%)    | 118<br>(59%)                                                      | 28<br>(14%)    | 30<br>(15%) | 24<br>(12%)    |

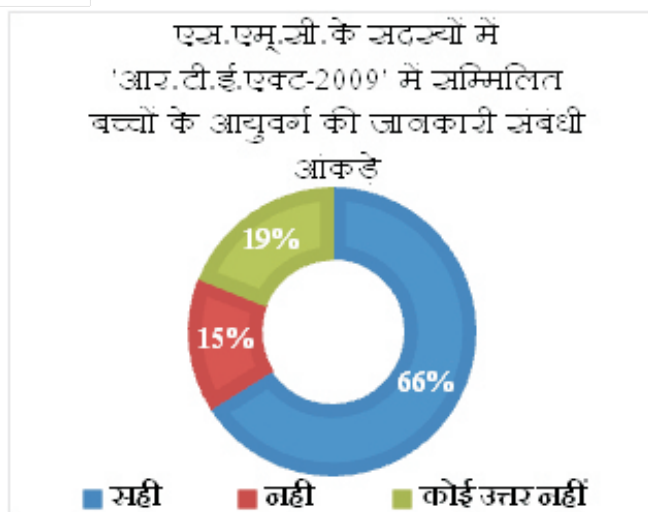
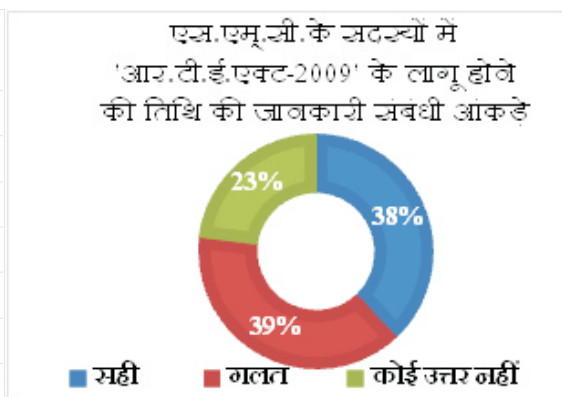
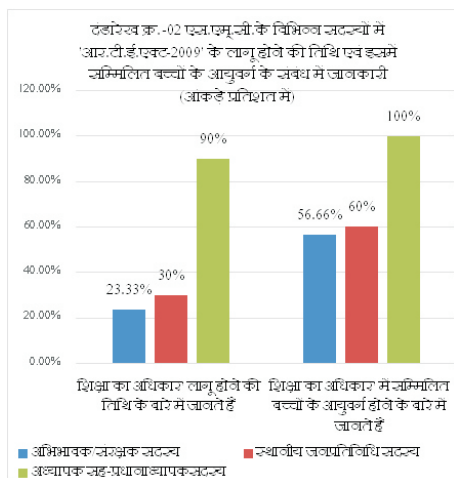


तालिका एवं दंडारेख क्रमांक- 01 का विश्लेषण एवं व्याख्या-एस.एम.सी. के कुल 200 उत्तरदाता सदस्यों में से 138(69%) सदस्यों ने माना कि वे 'शिक्षा का अधिकार' के बारे में जानते हैं, जबकि 28 (14%) सदस्य 'शिक्षा का अधिकार' के बारे में कुछ भी नहीं जानते और 34(17%) सदस्यों ने इसके संबंध में कोई उत्तर ही नहीं दिया है। वहीं माता-पिता या संरक्षकों के 120 उत्तरदाता सदस्यों में से सिर्फ 72 (60%) सदस्य और स्थानीय प्राधिकारी के प्रतिनिधियों के 40 उत्तरदाता सदस्यों में से 26 (65%) सदस्यों ने माना कि वे शिक्षा का अधिकार के बारे में जानते हैं, हालांकि अध्यापक-सह प्रधानाध्यापकों के 40 उत्तरदाता सदस्यों में से 40 (100%) सदस्य शिक्षा का अधिकार के बारे में जानते हैं।

इसी प्रकार विद्यालय प्रबंधन समिति के कुल 200 उत्तरदाता सदस्यों में से 118 (59%) सदस्य जानते हैं 'शिक्षा का अधिकार' संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार में आता है, जबकि 28(14%) सदस्यों का मानना है कि 'शिक्षा का अधिकार' संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार में नहीं आता, वहीं 30 (15%) सदस्यों ने माना कि उन्हें इसके बारे में पता नहीं है और 24 (12%) सदस्यों ने इसके संबंध में कोई उत्तर ही नहीं दिया है। माता-पिता या संरक्षकों के 120 उत्तरदाता सदस्यों में से सिर्फ 64 (53.33%) सदस्य और स्थानीय प्राधिकारी के प्रतिनिधियों के 40 उत्तरदाता सदस्यों में से मात्र 20 (50%) सदस्य ही जानते हैं कि 'शिक्षा का अधिकार' संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार में आता है, हालांकि अध्यापक-सह प्रधानाध्यापकों के 40 उत्तरदाता सदस्यों में से 34(85%) सदस्य यह जानते हैं।

तालिका क्रमांक - 02

| स. क्र. | उत्तरदाता का प्रकार         | कुल संख्या | ‘शिक्षा का अधिकार’ लागू होने की तिथि संबंधी जानकारी |                |                | में ‘शिक्षा का अधिकार’ में सम्मिलित बच्चों के आयुवर्ग संबंधी जानकारी |                |                |
|---------|-----------------------------|------------|-----------------------------------------------------|----------------|----------------|----------------------------------------------------------------------|----------------|----------------|
|         |                             |            | सही                                                 | गलत            | कोई उत्तर नहीं | सही                                                                  | गलत            | कोई उत्तर नहीं |
| 1.      | माता-पिता या संरक्षक सदस्य  | 120        | 28<br>(23.33%)                                      | 58<br>(48.33%) | 34<br>(28.33%) | 68<br>(56.66%)                                                       | 22<br>(18.33%) | 30<br>(25%)    |
| 2.      | स्थानीय जन-प्रतिनिधि सदस्य  | 40         | 12<br>(30%)                                         | 18<br>(45%)    | 10<br>(25%)    | 24<br>(60%)                                                          | 08<br>(20%)    | 08<br>(20%)    |
| 3.      | अध्यापक-सह-प्राध्यापक सदस्य | 40         | 36<br>(90%)                                         | 02<br>(5%)     | 02<br>(5%)     | 40<br>(100%)                                                         | 00<br>(%)      | 00<br>(%)      |
| 4.      | महायोग                      | 200        | 76<br>(38%)                                         | 78<br>(39%)    | 46<br>(23%)    | 132<br>(66%)                                                         | 30<br>(15%)    | 38<br>(19%)    |

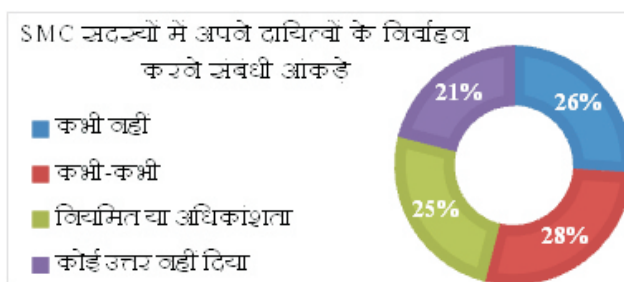
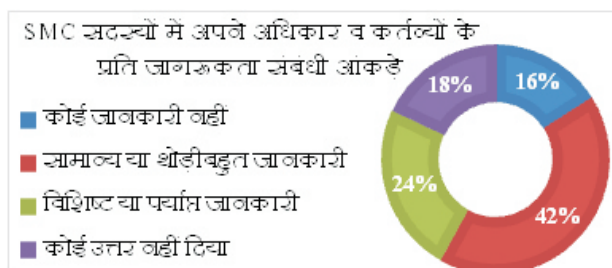
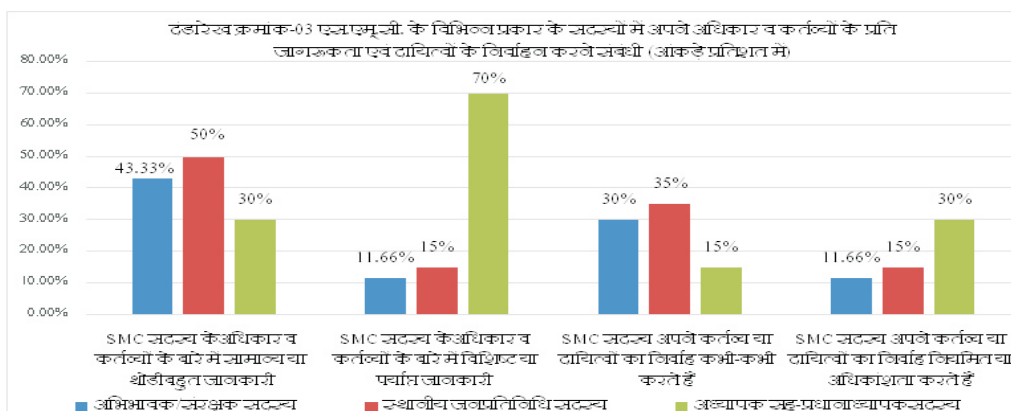


तालिका एवं दंडारेख क्रमांक- 02 का विश्लेषण एवं व्याख्या-एस.एम.सी. के कुल 200 उत्तरदाता सदस्यों में से 76 (38%) सदस्य 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009' के लागू होने की तिथि के बारे में जानते हैं, जबकि 78 (39%) सदस्य इसके बारे में नहीं जानते और 46 (23%) सदस्यों ने इसके संबंध में कोई उत्तर ही नहीं दिया है। वहीं माता-पिता या संरक्षकों के 120 उत्तरदाता सदस्यों में से मात्र 28 (23.33%) सदस्य और स्थानीय प्राधिकारी के प्रतिनिधियों के 40 उत्तरदाता सदस्यों में से सिर्फ 12 (30%) सदस्य ही 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009' के लागू होने की तिथि के बारे में जानते हैं, हालांकि अध्यापक-सह प्रधानाध्यापकों के 40 उत्तरदाता सदस्यों में से 36 (90%) सदस्य इसके बारे में जानते हैं।

इसी प्रकार एस.एम.सी. के कुल 200 उत्तरदाता सदस्यों में से 132 (66%) सदस्य 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009' के सम्मिलित बच्चों के आयु वर्ग के बारे में जानते हैं, जबकि 30 (15%) सदस्य इसके बारे में नहीं जानते और 38 (19%) सदस्यों ने इसके संबंध में कोई उत्तर ही नहीं दिया है। वहीं माता-पिता या संरक्षकों के 120 उत्तरदाता सदस्यों में से सिर्फ 68 (56.66%) सदस्य ही और स्थानीय प्राधिकारी के प्रतिनिधियों के 40 उत्तरदाता सदस्यों में से मात्र 24 (60%) सदस्य ही 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009' में सम्मिलित बच्चों के आयु वर्ग के बारे में जानते हैं, हालांकि अध्यापक-सह प्रधानाध्यापकों के 40 उत्तरदाता सदस्यों में से 40 (100%) सदस्य इसके बारे में जानते हैं।

तालिका क्रमांक- 03

| स. क्र. | उत्तरदाता का प्रकार         | कुल संख्या | SMC सदस्यों में अपने अधिकार व कर्तव्यों के संबंध में जानकारी |                |                     |                | SMC सदस्यों द्वारा अपने कर्तव्यों या दायित्वों के निर्वाह करने संबंधी जानकारी |              |                |                     |
|---------|-----------------------------|------------|--------------------------------------------------------------|----------------|---------------------|----------------|-------------------------------------------------------------------------------|--------------|----------------|---------------------|
|         |                             |            | कोई जानकारी नहीं                                             | सामान्य थोड़ी  | विशिष्ट या पर्याप्त | कोई उत्तर नहीं | कभी नहीं                                                                      | कभी-कभी नहीं | नियमित या नहीं | कोई उत्तर अधिकांशता |
| 01.     | माता-पिता या संरक्षक सदस्य  | 120        | 26<br>(21.66%)                                               | 52<br>(43.33%) | 14<br>(11.66%)      | 28<br>(23.33%) | 40<br>(33.33%)                                                                | 36<br>(30%)  | 14<br>(11.66%) | 30<br>(25%)         |
| 02.     | स्थानीय जन-प्रतिनिधि सदस्य  | 40         | 06<br>(15%)                                                  | 20<br>(50%)    | 06<br>(15%)         | 08<br>(20%)    | 10<br>(25%)                                                                   | 14<br>(35%)  | 06<br>(15%)    | 10<br>(25%)         |
| 03.     | अध्यापक-सह-प्राध्यापक सदस्य | 40         | 00<br>(%)                                                    | 12<br>(30%)    | 28<br>(70%)         | 00<br>(%)      | 02<br>(5%)                                                                    | 06<br>(15%)  | 30<br>(80%)    | 02<br>(5%)          |
| 04.     | महायोग                      | 200        | 32<br>(16%)                                                  | 84<br>(42%)    | 48<br>(24%)         | 36<br>(18%)    | 52<br>(26%)                                                                   | 56<br>(28%)  | 50<br>(25%)    | 42<br>(21%)         |



एस.एम.सी. के कुल 200 उत्तरदाता सदस्यों में से 84 (42%) सदस्यों को शिक्षा का अधिकार अधिनियम व इससे सम्बंधित नियमों के सन्दर्भ में विद्यालय प्रबंधन समिति के अधिकार एवं कर्तव्यों की सामान्य या थोड़ी-बहुत जानकारी है, जबकि 48 (24%) सदस्यों को इस सन्दर्भ में विशिष्ट या पर्याप्त जानकारी है, वहीं 32 (16%) सदस्य अपने अधिकार व कर्तव्य के बारे में कुछ भी नहीं जानते और 36 (18%) सदस्यों ने इसके संबंध में कोई उत्तर ही नहीं दिया है। वहीं माता-पिता या संरक्षकों के 120 उत्तरदाता सदस्यों में से 52 (43.33%) सदस्यों को एस.एम.सी. सदस्यों के अधिकार एवं कर्तव्यों बारे में सामान्य या थोड़ी-बहुत जानकारी है और 14 (11.66%) सदस्यों को इस बारे में विशिष्ट या पर्याप्त जानकारी है, जबकि स्थानीय प्राधिकारी के प्रतिनिधियों के 40 उत्तरदाता सदस्यों में से 20 (50%) सदस्यों को इससे बारे में सामान्य या थोड़ी-बहुत जानकारी है और मात्र 6 (15%) सदस्यों को ही इस बारे में विशिष्ट या पर्याप्त जानकारी है, हालांकि अध्यापक-सह प्रधानाध्यापकों के 40 उत्तरदाता सदस्यों में से 12 (30%) सदस्यों को इससे बारे में सामान्य या थोड़ी-बहुत जानकारी है और 28 (70%) सदस्यों को ही इस बारे में विशिष्ट या पर्याप्त जानकारी है।

इसी प्रकार एस.एम.सी. के कुल 200 उत्तरदाता सदस्यों में से मात्र 56 (28%) सदस्य कभी-कभी और 50 (25%) सदस्य हमेशा या नियमित रूप से अपने अधिकारों या कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं जबकि 52 (26%) सदस्य कभी भी अपने अधिकारों या कर्तव्यों का निर्वहन नहीं करते या नहीं किया और 42 (21%) सदस्यों ने इसके संबंध में कोई उत्तर ही नहीं दिया है। वहीं माता-पिता या संरक्षकों के 120 उत्तरदाता सदस्यों में से 36 (30%) सदस्य कभी-कभी और 14 (11.66%) सदस्य हमेशा या नियमित रूप से अपने अधिकारों या कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं, जबकि स्थानीय प्राधिकारी के प्रतिनिधियों के 40 उत्तरदाता सदस्यों में से 14 (35%) सदस्य कभी-कभी और मात्र 6 (15%) सदस्य ही हमेशा या नियमित रूप से अपने अधिकारों या कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं, हालांकि अध्यापक-सह प्रधानाध्यापकों के 40 उत्तरदाता सदस्यों में से 6 (15%) सदस्य कभी-कभी और 30 (80%) सदस्य हमेशा या नियमित रूप से अपने अधिकारों या कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं।

**निष्कर्ष :-** परिणामों से ज्ञात होता है, कि औसत मात्र 59.5% एस.एम.सी. सदस्यों को ही 'शिक्षा का अधिकार' के बारे में सामान्य या विशिष्ट जानकारी है, जबकि अभिभावक सदस्यों में यह आंकड़ा केवल 49.66% और स्थानीय प्राधिकारी के प्रतिनिधियों सदस्यों में 54% ही है, हालांकि शिक्षक सदस्यों में से 95% सदस्यों को 'शिक्षा का अधिकार' की जानकारी है। आर.टी.ई. एक्ट एवं इससे सम्बंधित नियमों के सन्दर्भ में विद्यालय प्रबंधन समिति के अधिकार एवं कर्तव्यों की जानकारी की बात करें तो औसतन 66% एस.एम.सी. सदस्यों को ही 'अपने अधिकारों या कर्तव्यों की सामान्य या विशिष्ट जानकारी है, जबकि अभिभावक सदस्यों में यह आंकड़ा केवल 55% और स्थानीय प्राधिकारी के प्रतिनिधियों सदस्यों में 65% ही है, हालांकि शिक्षक सदस्यों में से 100% सदस्यों को इसकी जानकारी है। इसी प्रकार विद्यालय प्रबंधन समिति के सदस्यों द्वारा अपने अधिकारों के उपयोग या कर्तव्यों के निर्वहन की बात करें तो औसतन 53% एस.एम.सी. सदस्य ही 'अपने अधिकारों का उपयोग या दायित्वों का निर्वहन कभी-कभी या नियमित रूप से करते हैं, जबकि अभिभावक सदस्यों में यह आंकड़ा केवल 41.66% और स्थानीय प्राधिकारी के प्रतिनिधियों सदस्यों में 50% ही है, हालांकि शिक्षक सदस्यों में से 95% सदस्य नियमित या कभी-कभी अपने अधिकारों का उपयोग या कर्तव्यों का पालन करते हैं।

अध्ययन से यह भी पता चला, कि एस.एम.सी. के माता-पिता या अभिभावक सदस्य, स्थानीय प्राधिकारी के प्रतिनिधि सदस्य और अध्यापक सदस्यों के मध्य जागरूकता व कर्तव्य परायणता में तुलनात्मक दृष्टि से बहुत अंतर है। विद्यालय प्रबंधन समिति के सदस्यों को आर.टी.ई. एक्ट-2009 व इससे संबंधित नियमों और इनके सन्दर्भ में अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति उन्मुख, जागरूक एवं प्रशिक्षित कराने की आवश्यकता है, जिससे वे अपनी भूमिका का निर्वहण अधिक प्रभावी ढंग से कर सकें। एस.एम.सी सदस्यों की सक्रिय सहभागिता को सुनिश्चित करने और उन्हें अधिकार एवं कर्तव्यों के प्रति शिक्षित व जागरूक बनाने के लिए विशेष तरह के प्रशिक्षण कार्यक्रम, एवं कार्यशालाओं आदि का नियमित आयोजन किया जाना चाहिए, साथ ही समय विशेष के लिए कोई

लक्ष्य निर्धारित करके एस.एम.सी को कार्य सौंपें और उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाली समिति एवं सदस्यों को प्रोत्साहन के लिए पुरुस्कृत किया जाए। विद्यालय प्रबंधन समितियों की रचनात्मक सोच और सकारात्मक संवाद के द्वारा स्कूली शिक्षा व्यवस्था को अधिक प्रभावी और सफल बनाया जा सकता है, इसके लिए आवश्यक है कि इसका प्रत्येक सदस्य पूरी निष्ठा व इच्छा शक्ति के साथ अपने दायित्वों का निर्वाहन करे।

---

राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग,  
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,  
सागर-470003 (मध्यप्रदेश)

#### सन्दर्भ -

- एलेक्स, डॉ. नीलू मैरी : भारतीय शिक्षा व्यवस्था का विकास, समस्या एवं समाधान, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ. 156, 166-70 और 202-204
- सद्गोपाल, अनिल, संसद में शिक्षा का अधिकार छीनने वाला बिल, किशोर भारतीय सरोकार अकादमी, भोपाल, द्वितीय संस्करण-2009, पृ. 10-33
- मेहरोत्रा, ममता एवं शर्मा महेश : शिक्षा का अधिकार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2012, पृ. 1-5
- घोष, सुरेश चन्द्र : द हिस्ट्री ऑफ़ एजुकेशन इन मोडर्न इण्डिया (1757 -2012), ओरिएण्ट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 4-एडिशन, 2013, पृ. 249-51
- गुप्ता, डॉ. एस.पी. : भारत का संविधान, LexisNexis पब्लिकेशन, तृतीय संस्करण-2016, पृ. 330-31 एवं 415-16
- बसु, डॉ. दुर्गा दास : भारत का संविधान एक परिचय, LexisNexis पब्लिकेशन, 11वां संस्करण- 2016, पृ. 186-88 और 550
- पांडे, डॉ. जे. एन. : भारत का संविधान, सेंट्रल लॉ एजेंसी-इलाहाबाद, 52वां संस्करण-2019, पृ. 759
- भारत का संविधान (9, दिसंबर 2020 को तथा विद्यमान) भारत सरकार, नई दिल्ली
- राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66) रिपोर्ट-‘शिक्षा एवं राष्ट्रीय प्रगति’, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
- आचार्य राममूर्ति समिति रिपोर्ट-1990 भारत सरकार, नई दिल्ली
- भारत का राजपत्र (असाधारण) 27 अगस्त 2009, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 2-13
- भारत का राजपत्र (असाधारण) 09 अप्रैल 2010, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 2-3
- फारुकी, उमर, (2011), शिक्षा हर बच्चे का मौलिक अधिकार, कुरुक्षेत्र- 57(7), पृ. 03-07 प्रकाशन विभाग, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली,

## मृत्युदण्ड का प्रावधान और विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' की कहानी 'फाँसी'

आशुतोष

विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' हिन्दी कहानी के एक महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं। महान कथाकार प्रेमचंद के साथ, उनकी परम्परा के कहानीकार के रूप में कौशिक जी की रचनात्मक उपलब्धि उल्लेखनीय है। उनकी प्रसिद्धि में 'ताई' कहानी का बहुत बड़ा हिस्सा है। कौशिक जी की यह कहानी हिन्दी की महानतम कहानियों में से एक है। किन्तु कौशिक जी की सृजन-यात्रा में 'ताई' कहानी जैसी अनेक रचनाएँ हैं, जिन पर हिन्दी समाज गौरव कर सकता है। कौशिक जी का जीवन-समय सन् 1899-1945 तक है। यह एक ऐसा दौर था जब भारत में साहित्य, समाज और राजनीति आदि क्षेत्रों में प्रखरतम व्यक्तित्व विद्यमान थे। बड़े व्यक्तित्वों के समय में होने के अपने नफा-नुकसान होते हैं। समय का मूल्यांकन जब व्यक्ति केन्द्रित हो जाता है तब उस दौर की कई सारी मूल्यवान एवं परिवर्तनकारी कृतियाँ व घटनाएँ, अपने उस महत्व को नहीं प्राप्त कर पाती जिसकी वे हकदार होती हैं। उदाहरण के लिए भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास से 'चौरीचौरा की घटना' को लिया जा सकता है। गोरखपुर (उ.प्र.) के पास एक कस्बे चौरीचौरा में 05 फरवरी, 1922 को अंग्रेज पुलिस चौकी को आग लगा दिया गया। परिणाम स्वरूप गाँधीजी ने 'असहयोग आंदोलन' को वापस ले लिया। उसके बाद से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास-लेखन में चौरीचौरा की उक्त घटना का उल्लेख गाँधीजी और असहयोग आंदोलन के प्रसंग में एक-दो वाक्यों में ही होता रहा। जबकि वह घटना ब्रिटिश सत्ता के प्रति आम भारतीय जनता के आक्रोश का प्रतीक है। किन्तु गाँधीजी के आंदोलनों पर केन्द्रित इतिहास लेखन में चौरीचौरा की घटना का स्वतंत्र मूल्यांकन नहीं हो सका। जिसे बहुत बाद (1995) में शाहिद अमीन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Event, Metaphor, Memory – Chauri Chaura, 1922–1992' में चौरीचौरा की उक्त घटना पर स्वतंत्र रूप से विचार किया, जो कि अपनी प्रविधि में अनुकरणीय है। इतिहास-लेखन की इस तकनीक से साहित्य का इतिहास भी काफी प्रभावित रहा है। हिन्दी कहानी के इतिहास का सर्वाधिक प्रखरतम काल 1915 से 1940 तक माना जाता है। इस कालखंड को मोटे तौर पर 'प्रेमचंद युग' के नाम से जाना जाता है। निस्संदेह प्रेमचंद हिन्दी के श्रेष्ठतम लेखक हैं किन्तु उन्हीं के समय में कई ऐसे रचनाकार थे, जिन्होंने उल्लेखनीय कहानियाँ लिखीं। जैसे सुदर्शन, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' आदि। इन सभी लेखकों का लेखन साहित्य के विकास और पाठकीय-बोध की दृष्टि से अद्वितीय है। किन्तु साहित्य के इतिहास में इनका जिक्र प्रेमचंद-युग के कहानीकार के रूप में कर छुट्टी पा लिया जाता है। या बहुत हुआ तो चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' को 'उसने कहा था', सुदर्शन को 'हार की जीत' और कौशिक जी को 'ताई' कहानी के लेखक के रूप याद कर हिन्दी आलोचना खामोश हो जाती है। किन्तु इन लेखकों का लेखकीय अवदान सिर्फ इतना ही नहीं है कि ये प्रेमचंद की परम्परा के लेखक हैं। प्रेमचंद की परम्परा या युग में होने के साथ ही इनके साहित्य के अनेक ऐसे आयाम हैं जिन पर मुकम्मल बात किये बगैर इनका समग्र मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। यह तो सभी जानते हैं कि कौशिक जी संस्कृत, उर्दू, बंगला, हिन्दी भाषा के जानकार थे। साहित्य, संगीत और फोटोग्राफी में उनकी अभिरुचि से उनके पाठक परिचित हैं।

मध्य भारती-83, जुलाई-दिसम्बर, 2022, ISSN 0974-0066, pp. 112-115

यूजीसी केयर लिस्ट, ग्रुप-सी (मल्टीडिसिप्लिनरी), क्र.सं.-15

विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' एक ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने अपनी कहानियों में अपने समकाल के साथ ही अनेक ऐसे विषयों को उठाया है जो तत्कालीन समय के साथ ही वर्तमान में भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। उदाहरण के तौर पर यहाँ विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' की कहानी 'फाँसी' को देखा जा सकता है।

कौशिक जी के विपुल रचना-संसार को देखा जाय तो वे प्रेमचंद के समकक्ष नजर आते हैं। प्रेमचंद की कहानियों के विषय परिवार, समाज और देश से सम्बन्धित हैं। कौशिक जी ने भी इन विषयों पर प्रमाणिक कहानियाँ लिखी हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त कौशिक जी के लेखन एक बड़ा हिस्सा वैश्विक मुद्दों और प्रसंगों से संबंधित है। जिसमें 'जरीना-रूस की महारानी का जीवन चरित्र', 'रूस का राहू-रूसी महाराजा के सलाहकार रासपुतिन की जीवनी', 'मनुष्यता का दण्ड' जैसी रचनाएँ हैं। कौशिक जी प्रेमचंद की कहानी-कला से प्रेरणा नहीं, प्रभाव ग्रहण करते हैं और अपनी कहानियों के लिए बिल्कुल स्वतंत्र रास्ता चुनते हैं।

इन बातों के अतिरिक्त कौशिक के रचना-संसार की एक खास विशेषता उनकी विश्व और भविष्य दृष्टि है। जो उनके समकालीन रचनाकारों से उन्हें अलगती है। जिस पर हिन्दी अलोचना ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया है। कौशिक जी ने रूस के जनजीवन और वहाँ के विशिष्ट व्यक्तियों पर लिखा है, जो तत्कालीन हिन्दी जगत के लिए खास परिघटना की तरह है। चंद्रधर शर्मा गुलेरी की सर्वप्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' प्रथमविश्व युद्ध की पृष्ठभूमि पर रची गयी है, किन्तु उस कहानी के केन्द्रीय चरित्र लहना सिंह व अन्य, भारतीय हैं। इस लिहाज से देखें तो विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' की कहानी 'मनुष्यता का दंड' उल्लेखनीय है। यहाँ में उनकी दो कहानियों 'मनुष्यता का दंड' और 'फाँसी' के माध्यम से कौशिक जी की विश्वदृष्टि एवं भविष्य दृष्टि पर बात करूँगा। पहले 'मनुष्यता का दंड' कहानी। यह कहानी पूरी तरह से विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखी गयी है। रूस-जर्मनी युद्ध के मुद्दे पर लिखी इस कहानी के पात्र रूसी और जर्मन हैं। कहानी इस नैरेशन के साथ शुरू होती है कि 'मास्को से लगभग 200 मील पश्चिम की ओर वियाज्मा के निकट जंगल में घने वृक्षों के मध्य एक बड़ी-सी झोपड़ी बनी थी। इस झोपड़ी में एक छोटा-सा रूसी परिवार रहता था।' फिर पूरी कहानी इसी रूसी परिवार द्वारा एक जर्मन सैनिक को शरण देने और उक्त सैनिक द्वारा अपनी जान देकर अपने शरणदाता की रक्षा करने का अविस्मरणीय दस्तावेज बन जाती है। अपनी प्रक्रिया में यह 'युद्धविरोध' की सशक्त कहानी है। आज भी हिन्दी कहानी के वैश्विक पहुँच पर जब चर्चा होती है तब यह मलाल जाहिर किया जाता है कि विश्व के अन्य देशों की पृष्ठभूमि पर बहुत कम कहानियाँ लिखी गयी हैं। यशपाल, अज्ञेय, निर्मल वर्मा जैसे लेखकों के यहाँ वैश्विक पृष्ठभूमि पर लिखी हुई कुछ रचनाएँ देखने को मिलती हैं। किन्तु जिस दौर में कौशिक जी 'मनुष्यता का दंड' कहानी लिख रहे थे, उस समय ऐसा कर पाना खासा साहसिक कार्य रहा होगा। इसके अलावा भी कौशिक जी रूस से सम्बन्धित रासपुतिन, जरीना आदि का जीवन चरित्र, 'पेरिस की नर्तकी' जैसी रचनाओं के माध्यम से आरम्भिक हिन्दी लेखन के वैश्विक सरोकारों एवं सामर्थ्य से परिचित करा चुके थे। तत्कालीन हिन्दी कहानी में संभवतः वे अकेले ऐसे रचनाकार हैं जिनके पास विश्व-संदर्भ की इतनी रचनाएँ हैं। जिसके बारे में आज सोचना एक रोमांचकारी अनुभव से गुजरने जैसा है।

कौशिक जी के इस लेखन को देखकर उनकी विश्वदृष्टि के प्रति आश्चर्य हुआ जा सकता है। उनकी दूसरी आलोच्य कहानी 'फाँसी'<sup>3</sup> है, जो उनकी भविष्य-दृष्टि की एक बानगी है। 'फाँसी' कहानी संवेदना और आदर्श का निर्वह करने वाली उनकी अग्रणी कहानी है। इसमें उन्होंने अपनी युग संवेदना, मानवीय सम्बन्धों और मनुष्य जीवन की विकासमान स्थितियों की मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत किया है। साथ ही 'फाँसी' कहानी अपने विषय-वस्तु के आधार पर उल्लेखनीय है।

यह कहानी रेवतीशंकर और कामता प्रसाद जैसे मित्रों की है। रेवती शंकर अमीर परिवार से है और कामता प्रसाद एक अति सामान्य परिवार से। कामता प्रसाद डॉक्टरी की पढ़ाई के पश्चात अपना एक छोटा सा क्लीनिक चलाते हैं। खाली समय रहने पर वे अपने मित्र रेवती शंकर के साथ घूमने निकल जाते हैं। एक दिन दोनों की भेंट एक वेश्या सुन्दरबाई से होती है। अपने स्वभाव के अनुकूल रेवती शंकर सुन्दरबाई पर आसक्त हो जाते हैं। किन्तु कई बार के मिलने पर भी कामता प्रसाद सुन्दरबाई में कोई रुचि नहीं दिखाते। कामता प्रसाद इसे दुर्व्यसन

मानते हैं। किन्तु रेवती शंकर के दबाव में उन्हें सुन्दरबाई के कोठे पर जाना पड़ता है। समय के साथ रेवती शंकर का मोह सुन्दरबाई में अत्यधिक बढ़ गया। लेकिन सुन्दरबाई रेवती शंकर की धन-सम्पदा से अधिक कामता प्रसाद के गुण आदि से प्रभावित होने लगी थी। इस बात से रेवती शंकर सुन्दरबाई से अन्दर ही अन्दर नाराज रहने लगे। वे मन ही मन सुन्दरबाई से बदला लेने की सोचने लगे। इसी बीच एक दिन कामता प्रसाद सुन्दरबाई की हत्या में गिरफ्तार कर लिये जाते हैं। यह एक अविश्वसनीय घटना थी। कामता प्रसाद के माता-पिता और पत्नी का रो-रो कर बुरा हाल था। अदालत में कामता प्रसाद के घर से कई सारे सबूत मिले जो उन्हें अपराधी सिद्ध करते थे। सबसे बड़ा सबूत यह था कि जिस चाकू से हत्या हुई थी, वह कामता प्रसाद के सर्जरी के सामान में से एक था। फलतः कामता प्रसाद को फाँसी की सजा मिली। उनके परिवारवालों का बुरा हाल था। फाँसी के पूर्व कामता प्रसाद ने अपने मित्र रेवती शंकर को मिलने के लिए बुलवाया। रेवती शंकर से उसने कहा कि मैं निरपराध हूँ फिर भी फाँसी पर चढ़ रहा हूँ। पर मैंने तुम्हारा नाम नहीं लिया। जिस चाकू से सुन्दरबाई की हत्या हुई वह तुम मुझसे ही माँग कर ले गये थे। किन्तु मैंने अपना मुँह नहीं खोला। कामता प्रसाद रेवती शंकर से पूछते हैं कि “अब इतना तो बता दो कि मेरा विचार ठीक है या नहीं?” रेवती शंकर कुछ बोल नहीं पाता है, चुपचाप वापस चला आता है। कामता प्रसाद को फाँसी हो जाती है। इस घटना के बाद रेवती शंकर एक खत में अपना जुर्म कबूल करते हुए आत्म हत्या कर लेता है।

अपने इन घटनाक्रमों के साथ ‘फाँसी’ कहानी न्याय की प्रविधि और उसके परिणाम पर एक बहुत बड़ा विमर्श खड़ा करती है। न्याय की अवधारणा क्या है? और दण्ड-विधान की कोई सीमा होनी चाहिए कि नहीं? इन प्रश्नों से यह कहानी टकराती है। फाँसी की सजा पर आज आधुनिक समय में कई देशों में बहस चल रही है कि यह कहाँ तक उचित है। आज के समय में भी यह एक ज्वलंत प्रश्न है कि ‘आँख के बदले आँख’ वाली दण्ड-प्रक्रिया से क्या न्याय संभव है?

जेल में मिलने आये अपने पिता से कामता प्रसाद कहते हैं कि “मुझे विश्वास हो गया है कि समाज न्याय की ओट में अन्याय भी करता रहता है। न्याय के नियमों को इतना अधिक महत्व दिया जाता है कि वह अन्याय की सीमा तक पहुँच जाता है।.....यह वह न्याय है, जिसके आँखें और कान हैं, परन्तु मस्तिष्क नहीं है।”<sup>5</sup> कामता प्रसाद का यह कथन न केवल तत्कालीन न्याय-व्यवस्था बल्कि आज की भी न्याय-व्यवस्था पर सटीक टिप्पणी है। किसी भी समाज की उच्चतम उपलब्धि उस समाज की न्याय प्रक्रिया में देखी जा सकती है। यदि वह न्याय प्रक्रिया मनुष्य विरोधी है तो वह समाज भी मनुष्य विरोधी माना जायेगा। न्याय और निर्णय में अन्तर होता है। कामता प्रसाद के मुकदमें में निर्णय हुआ न्याय नहीं। कामता प्रसाद इसीलिए इस न्याय को मस्तिष्क विहीन कहते हैं। जब रेवती शंकर ने अपना सारा गुनाह कबूल कर आत्महत्या कर लिया तब यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि फिर कामता प्रसाद को फाँसी किस अपराध के लिये दी गयी? जाहिर सी बात है कि उस न्याय-व्यवस्था के पास इस प्रश्न का उत्तर देने का साहस नहीं है। रेवती शंकर के कबूलनामों के बाद कामता प्रसाद के बूढ़े पिता कहते हैं कि “न्याय का यह दण्ड-विधान हत्या-विधान है। यदि मेरे लड़के को उम्रकैद हुई होती तो आज वह छूट आता। न्यायी को ऐसा कार्य करने का क्या अधिकार है, जिसमें यदि भूल हो तो उसका सुधार भी उसके वश में न रहे। अब यदि न्याय उसे जिला नहीं सकता तो उसे फाँसी देने का क्या अधिकार था? यह न्याय नहीं, बर्बरता है, जंगलीपन है, हत्याकाण्ड है। ऐसे न्याय का जितना शीघ्र नाश हो जाय, अच्छा है।”<sup>6</sup>

यह कहानी अपने इस कथ्य के साथ एक ऐसे मुद्दे पर विचार करती है जो आज भी प्रासंगिक है। आधुनिक समय में भारत में मृत्युदंड को लेकर बहस जारी है। प्रसिद्ध मानवाधिकार विशेषज्ञ रवि नायर कहते हैं कि “इसके कई पहलू हैं, एक तो अपराध क्षणिक क्रोध के चलते होते हैं, उस समय अपराधी सोच समझ नहीं पाता कि मैं छूट जाऊँगा या बच जाऊँगा या फाँसी हो जायेगी।”<sup>7</sup> मृत्युदंड को बर्बर और क्रूर मानते हुए भारत में 1972 में विधि आयोग ने अपने एक अध्ययन के द्वारा यह जानने का कोशिश की थी कि मृत्युदंड के भय से अपराध की स्थिति में क्या अन्तर आता है, किन्तु इस अध्ययन से कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका। बाद में लगभग 1983 में संसद में इस मुद्दे पर बहस भी हुई थी। ऐसा माना जाता है कि तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने मृत्युदंड को समाप्त करने के पक्ष में थीं, किन्तु पार्टी में ही इस सन्दर्भ में सहमति नहीं बन सकी। यह मुद्दा पीछे छूट गया।

भारतीय कानून में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि यदि किन्हीं कारणों से फाँसी की सजा पाया हुआ व्यक्ति बाद में बेगुनाह सिद्ध होता है तो उसकी भरपाई किसी रूप में की जा सके। जैसे पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की हत्या के मामले में केहर सिंह को फाँसी की सजा हुई थी। जिसे बाद में न्यायधीश चंद्रचूड़ ने गलत माना। कौशिक जी कहानी 'फाँसी' में भी यही मुद्दा है, निरपराध कामता प्रसाद को फाँसी हो जाती है, किन्तु बाद में रेवतीशंकर द्वारा अपना जुर्म स्वीकार कर लेने के बाद भी कामता प्रसाद को लौटाया नहीं जा सकता था। इस त्रुटि के सम्बन्ध में प्रसिद्ध वकील राम जेठमलानी कहते हैं, "मैं मौत की सज़ा के खिलाफ हूँ क्योंकि इंसान भूल कर सकता है, जज भी भूल कर सकते हैं, और क्रिमिनल लॉयर की हैसियत से मेरा ये अनुभव है कि कई बार अगर कोई अच्छा वकील न तो बेगुनाह इंसान भी फाँसी पर चढ़ जाए।"<sup>8</sup>

आधुनिक काल में मृत्युदंड की सजा को 'आँख के बदले आँख' और 'खून का बदला खून' जैसे विचारों का पोषक मानते हुए इसका विरोध हो रहा है। समय के साथ आधुनिक विश्व मृत्युदंड के सन्दर्भ में तार्किक और मानवीय हो रहा है। जिसका परिणाम है कि आज दुनिया भर के लगभग 160 देशों ने मृत्युदंड के प्रावधान को खत्म कर दिया है। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 2007 के वर्ष में एक प्रस्ताव पारित कर विश्व के तमाम देशों से मृत्युदंड को खत्म करने की अपील की। फिर भी भारत, अमेरिका (कुछ राज्यों को छोड़कर), जापान और चीन जैसे बड़े देशों में मृत्युदंड का प्रावधान है।

आज दुनिया भर के मानवाधिकार संगठन, न्यायविद् आदि मृत्यु-दण्ड पर रोक लगाने की माँग कर रहे हैं। यह देखना आश्चर्यजनक है कि भारत की आजादी के पूर्व ही विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' ने इस मुद्दे को अपनी कहानी का विषय बनाते हुए इसे एक तार्किक रचनात्मक मानवीय स्पर्श से नई ऊँचाई दे दिया था। 'फाँसी' कहानी केवल विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' जी की ही नहीं बल्कि हिन्दी कहानी की उज्ज्वल भविष्य और विश्वदृष्टि की परिचायक हैं। कौशिक जी के रचनात्मक अवदान के उत्स को प्रेमचंद की परम्परा मात्र में देखने की सुविधा से मुक्त होकर यदि तार्किक दृष्टि से विचार किया जाय तो वे भारतीय मानवीय प्रगतिशील परम्परा के अग्रणी रचनाकार के रूप में नजर आयेंगे। कहा जा सकता है कि कौशिक जी प्रेमचंद की परम्परा के ही नहीं, प्रेमचंद की परम्परा का विस्तार करने वाले लेखक हैं।

हिन्दी विभाग

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003

#### सन्दर्भ -

1. Imin shahid, 'Event, Metaphor, Memory – Chauri Chaura, 1922–1992', University of California Press; First edition, 1995
2. <https://www.hindikahani.hindi-kavita.com/Manushyata-Ka-Dand-Vishvambharnath-Sharma-Kaushik.php> (दिनांक : 10/05/2021 को रात्रि 9:30 पर देखा गया।)
3. कौशिक विश्वम्भरनाथ, फाँसी, <https://hindisamay.com/kahani/fansi.html> (दिनांक : 10/05/2021 को रात्रि 10:00 पर देखा गया।)
4. कौशिक विश्वम्भरनाथ, फाँसी, पृष्ठ संख्या : 106, कथादेश, खण्ड-3, प्रेमचन्दोत्तर कहानी-2, आईसेक्ट पब्लिकेशंस, भोपाल, 2019
5. कौशिक विश्वम्भरनाथ, फाँसी, पृष्ठ संख्या : 106, कथादेश, खण्ड-3, प्रेमचन्दोत्तर कहानी-2, आईसेक्ट पब्लिकेशंस, भोपाल, 2019
6. कौशिक विश्वम्भरनाथ, फाँसी, पृष्ठ संख्या : 107, कथादेश, खण्ड-3, प्रेमचन्दोत्तर कहानी-2, आईसेक्ट पब्लिकेशंस, भोपाल, 2019
7. <https://www.bbc.com/hindi/regionalnews/story/2004/08/040805> (दिनांक : 10/05/2021 को रात्रि 9:00 पर देखा गया।)
8. <https://www.bbc.com/hindi/regionalnews/story/2004/08/040805> (दिनांक : 10/05/2021 को रात्रि 10:30 पर देखा गया।)

# Humanity as reflected in the views of Gautama Buddha and Rabindranath Tagore : A Comparative Study

*Rekha Ojha*

Critics may argue that the discussion about humanity is taking place universally at different corners of the world has brought into the light many conflicting worldviews like individualism against communalism, modernity against tradition, capitalism against communism, east against west, north against south, beurocratic ideas against proletariat etc. In fact, all concepts of humanity and wisdom have their basis in the understanding of the human dignity. It can also be said that people have the right of decent behaviour from others as they possess human dignity which is universal in nature. The word Humanism first entered the vocabulary of intellectual discourse in the West during the renaissance period when it was used to denote the revival of interest in the ancient writers of Greek and Roman philosophers. It was generally assisted by the growth of science both in physical and biological areas. It was the triumph of Darwinism in the 19<sup>th</sup> century which for many humanists was the issues between theistic religion and science. The principal aim of humanism is to proceed with rational thinking and analysis which is for the benefit of welfare of human. Rationalism, which many associate with humanism is concerned primarily with the methodology of deriving valid propositions and is somewhat very different from humanism. The philosophy of Humanism is primarily concerned with the human being and not with any external spiritual authority which stands in superior position to human.

In some traditions the dignity derives from God in whose image humanity is created. But in some other societies and culture the unique capacity to think and reason is said to be the source of human dignity. Humanism is the philosophical and literary movement originated in Italy in the second half of the 14<sup>th</sup> century and spread all over Europe but it has its origination in India in the Sanskrit prayers

***“Sarvatra Sukhinah Santu  
Sarve Santu Niramayah”***

Which means let all be happy and let all enjoy full health of the Vedic sages echoed the universal welfare which is the classical example of humanism. The earthly life constitutes the central concern of the Vedic Aryans. The sacrificial fire rites which were evolved during the Vedic period had social welfare in its motto, the aim in real was to prepare the land for agriculture for abundance and welfare of human race. But in later

stages in the later part of the 19<sup>th</sup> century Brahma Samaj of Raja Rammohun Roy, Arya Samaj of Dayananda Saraswati pioneered the Hindu renaissance finally blossoming into Vedantic Humanism by Swami Vivekananda. The Vedantic Humanism stresses the importance of service to the weak and needy as its practical aspect.

In Buddhism humanism is referred as the value and sanctity of life. Nibbāna Sutta clearly stated that it is rare to be born as human being. The number of those endowed with human life is as small as the amount of earth one can place on the fingernail. The Buddhist idea of human dignity is embedded in the idea that we are able to choose the path of self-perfection which means the condition of fully developed courage, wisdom and compassion which can be signified as Buddhahood that we can term as enlightenment. The idea that all people have this potential is expressed by the concept which is stressed particularly in the Mahayana tradition which states that all living persons have Buddha nature. Buddha teaches that to be the truly balanced and complete individual there is the need of both wisdom and compassion.

The greatest philosopher of the 19<sup>th</sup> century Rabindranath Tagore was quite pragmatic in his outlook and was the crusader of philosophy of the humanism whose core standpoint was the benefit of the people which was focussed on the importance of the man. He was quite different from Tilak and others who specifically focussed on religious revivalism. But Tagore's humanism is entirely dependent on spiritual humanity whose principal aim is on the welfare of man. To him God is simply the symbol of human perfection. He said "I felt that I had found my religion at last, the religion of Man, in which the infinite became defined in humanity"<sup>1</sup> Tagore views God as not the absolute truth but the sum total of the truth of human. He stressed that this belongs to human not God. The perfection achieved by an individual is not his personal achievement but is needed for the benefit of the entire society that stressed on sacrifice of selfish individual thinking and narrowness of mind. The perfection of man is attained through the development of personality. Man is the architect of his own destiny. The perfection will help him to have the association with infinity which will at large benefit the society. The humanism emphasized by Tagore never accepted God as the Supreme Natural Object in bringing perfection in men rather it is human being who by his endeavour gets self-realisation and does it for the benefit of the entire humanity.

If we concentrate at Maha Mangala Sutta in Sutta<sup>2</sup> Nipāta it is seen that Buddha stresses on the things which will help in the wellbeing of the humanity. He stresses on doing good deeds, abstain from evil etc which will help ultimately in the establishing of world peace. If we look at Dhammapada the same area of philosophical understanding of humanity can be traced in the teachings of Buddha. Loka Vagga begins with this Sutta

***Hinam dhammaṃ na saveyya***

***Pamadeniṇṇa saveyya***

***Micchindiriṇṇi na saveyya***

***Na siya lokavaddhano***<sup>3</sup>

Which means serve not the mean ends and live-inheedlessness. Embracing false views and becoming the world upholder is also prohibited. So Buddha totally focussed on giving up the desires which form the base. He always stresses that the people need to be righteous and happy and wise which will establish the peace in the universe. He was

not only the humanist but also the protector of animals which can be traced in the first rule of Vinaya Pitaka. The rule is to abstain from killing which will establish heaven in this world. He has the tendency to look at every being becoming Buddha whose conquest of passion is not turned into defeat and who are intent on meditation who delights in the peace of renunciation which is Nibbāna in philosophy of Buddhism. The philosophy of Humanism is seeing in Buddhism that in reality all phenomenons are incomplete, impermanent and not self. This understanding is totally the liberation which will lead to perfect security and immense happiness termed as Nibbāna. Wisdom is to directly see and understand ourselves. At this level the wisdom is to keep an open mind rather than being close minded, listening to others point of view rather than being radical to carefully examine facts that contradict our beliefs rather than burying our heads in the sand to be objective rather than prejudiced and partisan to take time in forming our point of view and beliefs rather than just accepting the first and emotional thing that is offered to us and to always be ready to change our ideas and mind set when facts that contradict them are logical to us. The person who does this is certainly wise and is almost certain to eventually arrive at true understanding. The path of just believing what you are told is easy. The Buddhist path requires courage, patience, flexibility and intelligence.

The humanism of Tagore is quite based on the folk culture of Baul. The theme of Baul songs is the love for mankind. They have the free life. The Bauls do not have any place of worship but concentrates on the divinity of man which is found in intense feeling of love which is the deeper meaning of all religions of the world. Tagore has the association with Bauls which influenced his philosophy of humanism. His song like

*Bhenge morghorer chabi niye jabi ke a mare oo bandhu amar*<sup>4</sup>

*Amar Sonar Bangla ami tomay bhalobashi*<sup>5</sup> .....etc. justify Baul influence in his writings. Another aspect of humanism of Tagore is influenced by the Universality values of Upanishads. The essence of Tagore's belief is his unending faith in humanity. In "Man of my Heart" Tagore said "It spoke of an intense yearning of the heart for the divine who is in Man and not in temple and scriptures or images and symbols."<sup>6</sup> Rabindranath Tagore looked Men as God. The symbolisation of men as God forms the basis of his philosophy of Humanism always focussed that the world is the human world and his religion is the reconciliation of the super personal Man which is the universal human spirit in his own individual self. He always stresses that the religion of Man has been in his mind as the religious experience which is not only the philosophical subject to him but it is the base of existence. The violence of the World Wars shakes the heart of the kind poet who was deeply sad to see the killing of humanity in the name of war. He wrote, "I am sure that it was this idea of divine humanity unconsciously working in my mind which compelled me to come out of the seclusion of my literary career and take part in the world of the practical activities"<sup>7</sup> He always have greater and deeper faith in the philosophy of humanity that gets reflected clearly in many of his writings. His rejection of knighthood by British Government showed his courage to stand by the side of humanity. He deeply feels for all the races in the world. He is above the narrow border of the country. He dreamt of the country which loves God and not herself and it is that country which will be loved by all human universally. His vision of India is not limited within the geographical borders of the country. He stressed on the moral authentic

brotherhood where nation is the greatest evil for the nation. He is the worshiper of the ethics of humanity which is reflected in the establishment of Visva-Bharati at Santiniketan. It is for the entire universe without any narrowness of the geographical border, races, class, religion, gender etc. China-Japan war, Spanish Civil War etc was strictly condemned by the poet. He wrote "The devastating tide of International Fascism must be checked. Civilization must be saved from its being swamped by barbarism. At this hour of the supreme of suffering of the Spanish people, I appeal to the conscience of humanity"<sup>8</sup>

Tagore was the humanist in his faith in the indefinite potential for humans. His philosophy of Humanism was far beyond the ideas of Western thoughts which puts human at the centre of the universe and whose essence has been noted in enduring aphorism. "Man is the measure of all things". It is the philosophy which attributes human kind's pre-eminence in the universe to its possession of the reason which is also the source of morality. Here it is noted that reason is the instrument of analysis and investigation that can produce both morality and immorality.

The defining characteristic of the Upanishads in their transcendental metaphysics Brahman or the Universal Consciousness is present in the humans as Atma which can be called as individual soul which has all the attributes of Brahman. It is present in everything. The Mundaka Upanishad says "Self-luminous is that Being and formless. He dwells within all and without all. He is unborn, pure, greatest, without breath and without mind". The Svetasvatara Upanishad says addressing Brahman as the fire, sun, moon, water and the supreme. In the Chhandogya Upanishad the sage Uddaloka tells Svetaketu that the body dies when the self leaves it but the self does not. He then says, "All that it has its self in him alone. He is truth, He is subtle essence of all. He is the Self. Humans derive their lofty status from the Brahman's presence in them a presence that links them with the rest of the Universe in which Brahman is also present. The dawning of the awareness of the oneness of everything demolishes the colonial attitude towards nature as well as the arrogance that led to violence. The Isha Upanishad says, "And he who sees all beings in his own self and his own self in all beings, he does not feel any revulsion by reason of such the view. Commenting on Radhakrishnan's translation of Upanishads Tagore clarifies that the symbolic expression used in the Upanishads convey messages that like some eternal source of life, still illumine and vitalise the religious mind of India. The humanism of Tagore of whose Upanishad's philosophy of profound spirituality was the base was personalised by the deep influence of Bhakti Cult which also focussed on the wellbeing of the people which will give rise to harmony and celebrates the divinity of the entire universe.

In Buddhism the one's own spirituality will help into developing the concern for the welfare of the other. The struggle of Buddha for Buddhahood establishes the fact. He strives for six years struggling for his own welfare after which he was able to serve the entire humanity. The basic teaching of Buddha is we can feel for others when we can feel for ourselves.

Both Gautama Buddha and Rabindranath Tagore was the crusader of the philosophy of Humanism for the well being of the entire universe. Both have great faith in humanity. They both concentrate on peace and harmony and always give importance

to the wellbeing of the people. Both of them looks at humanity as the religion which was yet the greatest religion in the Universe which is depicted in the writing and thinking of both these great sons of the World. Both of them concentrates on humanism and wisdom as the understanding of the world which allows the widest freedom in the matters concerning faith and religion. It allows absolute freedom to the human reason with regard to questions such as the nature of God, soul, creation, form of worshipping and ultimate goal of life. Humanity needs to be the priority in the modern universe which was already there in the ancient writing and scriptures. Religion should be based on Humanity which is beyond all narrow thinking and all sorts of prejudices.

---

*Dept. of Philosophy & Comparative Religion  
Visva- Bharati University, Santiniketan  
PO - Santiniketan, Balpur  
West Bengal - 731235*

**References -**

1. Tagore Rabindranath, "Religion of Man" Unwin Books, 1975, p. 60
2. Saddhatissa H, "The Sutta Nipāta", Maha Bodhi Society of India, Kolkata, 1985, p 29
3. Thera Narada, "The Dhammapada" Maha Bodhi Book Agency, Kolkata, 2012, p 125
4. Tagore Rabindranath, 4. "Gitabitan" Visva Bharati Publications, Kolkata, Magh 1421, p 29
5. Ibid 243 "It is also the National Anthem of Bangladesh"
6. Tagore Rabindranath, "Religion of Man", Unwin Books, 1975, p 69
7. Ibid 102
8. Tagore Rabindranath, "Spanish Civil War" Voliii, p 819

# Indian Modernity and J. Krishnamurti

*Rajesh Kumar Chaurasia*

## I

Taylor has tried to define modernity as a **'historically unprecedented amalgam of new practices and institutional forms. But** the fact is that the maximum number of institutional forms of modernity like science and technology industrialization and urbanization, etc. are already criticized. Likewise, the new way of living like individualism, secularization, instrumental rationality, etc. is also criticized by many thinkers. We are also facing the modern problem of alienation, meaninglessness, a sense of impending social dissolution, etc. which are the product of modernity. As I understand that in philosophy Modernity is reduced as a structure and Postmodernism is trying to liberate our mind from this structure. The only positive and unquestioned values of Modernity are freedom, equality, universal brotherhood, justice, etc. but these values also do not have any religious or philosophical strong foundation in the west. The structural foundation which is mainly created by Hegel and Marx is not proved strong enough and consequently, this foundation is deconstructed by postmodernism. In India also there is no clear and systematic thought about Modernity. The thinkers like Gandhi, M.N. Roy, Ambedkar, Vivekanand, Ravindra Nath Tagore, K.C. Bhattacharya, and Shri Aurobindo, etc. are considered Modern thinkers. But here also these thinkers fail to provide a strong philosophical foundation for Modernism. Even though many of these thinkers would not like the label 'Modern', they are happy with the label 'traditional'. In this scenario of Modernity in India, we must find out a strong philosophical or religious foundation of Modernism in India at least there is no conceptual difference between Philosophy and Religion in Vedānta and Buddhist Philosophy.

Kant speaks of the two appalling infinities—"the starry heavens above and the moral law within man." Prof. T.R.V. Murti has explained that "The 'starry heavens' is not to be understood as the immensity of physical Nature, but the *mysterium tremendum* of the Author of the Universe." The two infinities symbolize the two basic patterns of religious consciousness—one being God-centered and the other Man-centered. In a sense, Hinduism and Buddhism may be taken as illustrative of these two basic patterns.<sup>1</sup> If we want to enter into the concept of Indian modernity, we have to enter into these two basic patterns of religious consciousness. The fundamental source of Hindu religion is the "revelation" as given to us in the Vedas; in Buddhism, it is the "reason". One can argue

here that Hinduism also recognizes the value of reason and hundreds of Vedic *śruties* could be cited in favor of reason. But here ultimate knowledge is dependent on revelation not on reason because the function of reason is limited to analyzing and clarifying and, if necessary, defending and removing apparent contradictions. Therefore, Prof. T.R.V. Murti has clearly stated that “The entire model of development in Hinduism is authoritarian and traditional. We could even take it as theological. The core or the initial knowledge is of divine inspiration, but it does not remain an imposed belief, but one which is to be realized in one's intimate experience (*anubhavāvasānatvādbrahmavijñānasya*).”<sup>2</sup>

In contrast to Hinduism, the fundamental principle in Buddhism is the autonomy of moral law (*Karma*)—the freedom that we feel and exercise in our actions and which determines what we are and what we would. Prof. T.R.V. Murti wrote about this moral law—“the Law is moral, i.e., it is not a natural or mechanistic operation of brute necessity. Nor is it the dictate of an inscrutable and capricious Person—God.... the moral law is perfectly autonomous.”<sup>3</sup>

I affirm that this moral law within the human could be a strong philosophical/religious foundation of Indian modernity because:

- I. This system does not ask us to accept anything based on faith and authority but motivates us to test everything by reason and experience.
- II. The autonomy of the moral law leads to denying two opposite standpoints: one Naturalism (*Svabhāvavād or ucchedavāda*) which negates the moral order and moral reason and reduces man to a fortuitous conglomeration of natural forces. The other opposed stand point is 'eternalism' (*śāśvatvāda*) which beliefs in 'transcendent freedom' of God/Eternal self, who is above the moral law.

Buddhism characterizes both 'naturalism' and 'eternalism' as species of In-activism.<sup>4</sup> The moral law cannot be realized in both extreme conditions of our minds. The human problems are not the problems of Eternal Truth and human life neither to be fully understood by the Natural mechanical laws. Human problems are problems of relation or action (*karma*) between the truth and nature. Modern science is also a modern Naturalism, which tries to explain this world through natural laws based on experience. Natural laws belong to the physical world that exists in time and space and moral laws are belongs to human consciousness. That is why it cannot be the foundation of the moral Law. The scientific laws are limited to external objects; therefore, their actions are limited. Likewise, a transcendental Authority, the God, or the Eternal self also cannot be the true foundation of moral Law. Because authority and freedom are contradictory to each other and without freedom, we cannot imagine a moral law. Therefore, a religion with eternal substance and modern science could not be the foundation of the moral law. And human beings have to discover this moral law within. It is an order and human life is not possible without this order. Our constitution is nothing but it is a written order of our society. The different constitutions of different countries presuppose a universal moral order otherwise these countries will always conflict. And this universal moral order cannot be discovered by a selfish person. Purification of consciousness is necessary to realize this universal autonomous moral law within man.

It is crucial to understand that there is no need to become a Buddhist to realize this universal moral law. Respect for individuality and humanity is also a part of Modernity. A person who becomes a Hindu, Muslim or Buddhist, etc. cannot discover the universal moral law because the person's humanity and individuality get arrested into some particular, external organized religion that is created by human thought. If someone reduces her individuality to particular organized religion, gender, caste, society, nation, etc., he/she cannot realize the universal moral law. The reduced humanity cannot discover the universal moral law. Only a free human being could discover the moral law within. And there is no duality of the human being and the world in this model of religious consciousness; therefore, there is no space for the authority of one over the other.

The Moral Law is not a static or rigid concept. Rather it is an active principle that can answer every contemporary problem and it can answer the problems of the future also. It is not a static principle in the sense that it does not rest on any fixed principle. If it would have been a static principle then we could write it, and follow it as a limited authority. But it is a moment-to-moment, everlasting and complete relationship of human consciousness with the world, always living, never static. In this sense it is always modern it cannot be old or outdated. It is eternally in action with the world.

There is a right place for everything in this moral 'law'. The moral law accepts everything until and unless it is not against humanity and here the world is included in the concept of humanity. Take the example of the caste system of India to articulate it further. Today everyone will accept that this system is in human. But if someone tells that the foundation of the caste system is the *Vedic VarāaVyavasthā* then a Hindu cannot oppose it. He is not free to say anything which has divine origination. He can only defend it by his arrested reason. The reason arrested by the fear of the *śruti* (revealed text). He thinks that the *śruti* is superior and his being is inferior. But in the model of the universal moral law, the human being is not inferior to anything. How a human being could be inferior, it is the human being who revealed the *śruti* and it means that the existence of the human being is before the *śruti*. Therefore he/she is free to accept or reject a *śruti*.

If we compare our so-called modern thinkers with this model of Indian Modernity, we will find that most of them are not free to think on their own; they are only interpreting controversial things according to their authoritative divine texts. For example, Swami Vivekanand, Gandhi, Shri Aurobindo, etc. have said that this physical world is not a *māyā* (illusion) and this is a trace of Modern thinking but they are not saying it from the point of view of their moral Law, but they are giving the evidence for it from *Upaniāds*. They are not giving arguments from the humanitarian ground's point of view that if the physical world is an illusion, what is the need for any moral Law? Moral Law is a principle that defines our relationship with this world.

The next important thought of modernity is 'secularism' which is much discussed by contemporary thinkers in India. But here the problem is fundamentally in India philosophy and religion are not contradictory to others therefore Indian model of secularism cannot be the same as the Western. Here the concept and practice of both things are different from the western model of secularism, I will discuss this issue again further in this paper. Gandhi said he was secular. Yet he thought poorly of those who wanted to keep religion and politics separate. Those who believe in such separation, he

said, understood neither religion nor politics.<sup>5</sup> This statement of Gandhi will be a fundamental one if he means by religion, a religious consciousness based on universal moral Law. But here also according to Gandhi religion means the God-centered authoritative Hindu religion. At that time Gandhi does not realize the dangers of it, today we are practically facing the problems that are the result of mixing the Hindu religion with politics. Neither theist could construct India as a truly secular state nor could atheist construct India as a truly secular state. A truly secular state can only be constructed by those persons who believe in inclusive humanity and have faith in universal moral Law.

## II

J. Krishnamurti is a true representative of Indian Modernity. The first trace of Modernity is the total negation of authority and J. Krishnamurti does not have any faith in any authority. He considered authority a most dangerous thing to harm every sphere of human life. Since we never deeply observe ourselves inside which is in self-pity and fear and to get rid of this pity and fear we are always craving for power and therefore always ready to accept the authority of others: the authority of the guru, the authority of *Upaniṣada* or the other texts, or the authority of a culture and a tradition. It is fundamental to understand that if one pursues authority, one cannot pursue intelligence and without intelligence, one cannot solve the deeper problems of our life. Krishnamurti clearly stated that “Authority under any circumstances is destructive, especially in the psychological, spiritual field. And I’ve seen to it – though some of you may disagree with it – I’ve seen to it in England, in Ojai at least that this takes place, that there is no authority as far as I’m concerned, because to me authority is very, very destructive, especially in the psychological realm and in so-called religious endeavors. And for that reason, we dissolved the Order of the Star.”<sup>6</sup> Authority and intelligence are contradictory to each other therefore if someone is following the authority, he/she cannot follow the intelligence. And this is the intelligence that could discover the universal moral Law (*Karma*/action).

The second important character of Modernity is humanity. The problem with the west is that their concept of human beings is finite. It is limited to instrumental rationality and in this rationality, the world is excluded. For J. Krishnamurti there is no division between the human being and the world. Therefore, his concept of humanity includes everything in the world. There is a famous statement of J. Krishnamurti and it is repeated several times in his writings and discourses. The statement is— “You are the world and the world is you.”<sup>7</sup> This is an important statement that illustrates the human being and the world is one. It is hard to realize the content of this statement but it is not beyond our reason. The beauty of J. Krishnamurti’s thought is that he is not validating this unity based on some text or some revelation but he tries to find out the reality of this statement on the ground of our experience and reason. See this statement of Krishnamurti— “You are the world, you are not separate from the world. You are not an American, Russian, Hindu, or Muslim. You are a part from these labels and words; you are the rest of mankind because your consciousness and your reactions are similar to the others. You may speak a different language and have different customs, that is superficial culture—all cultures are superficial—but your consciousness, your reactions, your faith, your beliefs, your ideologies, your fears, anxieties, loneliness, sorrow, and pleasure, are similar to the rest

of mankind. If you change, it will affect the whole of mankind.”<sup>8</sup> Since our problems of knowledge, problems of our actions, and problems of our consciousness are the same, it means the single individual is the rest of humanity. Since the cultural or social conditioning of different people is different therefore it seems that they are different persons. Human conditioning has created several observers and when people see things through the observer the world and the being become different. But if a person can see things without the observer, then there is no division between the human beings and the rest of the world. When there is no observer the intelligence of human beings and the universal moral law become one.

Additionally, secularism is a crucial concept of Modernity. The problem with the western model of Modernity is in its belief that since there is no God and this universe is not made by God therefore there is no sacredness in it. No religion in the west is based on reason, rather all religions of the west are based on authority. Therefore they separated our external social and political affairs from religion. The separated 'west secular world' means a world without sacredness. But in the Indian model of Modernism although there is no authority of God; still there is a sacredness in this world. In this model of Modernity, we are negating the authority of God but we are not negating the sacredness of this world. We can understand this position of Indian modernity in J. Krishnamurti.

The position of J. Krishnamurti in this regard is there is no sacredness in the statue of God, the temple, the Church; the religious text, etc. because these things are created by thought, and which is created by thought cannot be sacred. In the words of J. Krishnamurti—“The essence of religion is sacredness - which has nothing to do with religious organizations, nor with the mind that is caught and conditioned by a belief, a dogma. To such a mind nothing is sacred except the God it has created, the ritual it has put together, or the various sensations it derives from prayer, worship, from devotion. But these things are not sacred at all. There is nothing sacred about dogmatism, about ritualism, about sentimentality or emotionalism.”<sup>9</sup> The essence of religion is sacredness and it is not related to organized religions. The reality is that we cannot organize the truth therefore there is no organization of truth and religion. The sacredness is a feeling of beauty. When we rightly related to this nature there is immense beauty in it. It means there is the sacredness to each small particle of the world. Generally, we consider those things to be beautiful that stimulate our mind but the feeling of stimulation is not the feeling of beauty for Krishnamurti. See in this statement of Krishnamurti—“Beauty is not that which stimulates. When you see a mountain, a building, a river, a valley, a flower, or a face, you may say it is beautiful because you are stimulated by it. But the beauty about which I am talking offers no stimulation whatsoever. It is a beauty not to be found in any picture, in any symbol, in any word, in any music. That beauty is sacredness; it is the essence of a religious mind, of a mind that is clear in its self-knowing.”<sup>10</sup> Here it is clear that although J. Krishnamurti does not believe in an authoritative God but still believes in the sacredness of the world based on the feeling of the beauty and we could call it Modern.

### III

Science and modernity are closely related to each other therefore we have to discover the relation between 'science' and 'modernity'. As I have already stated in the

first part of the paper that in Indian Modernity which is based on the universal moral law, there is a right place for everything. However, there are many thinkers including Shri K. C. Bhattacharya who thinks that Science and Philosophy are opposite to each other. Since the things in science are not only knowable but are also usable therefore the attitude of Science towards the object is arrogant and exploiting.<sup>11</sup> I have noticed that the person who criticizes Science first of all does not discriminate between Science and technology. The technology could be good or bad for humanity but not Science. Scientific spirit is beyond good and bad. Ultimately Science and technology are also the product of human thought therefore if someone is creating harmful technologies it does not mean that the attitude of Science towards the object is arrogant and exploiting. But it means that we human beings are not intelligently using technology. Unlike K.C. Bhattacharya, J. Krishnamurti thinks that the Scientific and the religious mind are complementary to each other. Though unfortunately, we are not applying our scientific mind to solve the greater problems of our society. See how J. Krishnamurti has put these things in words—"We need the scientific spirit because the scientific spirit is capable of examining ruthlessly all the causes that bring about man's misery; the scientific spirit can bring about peace in the world, objectively, can feed mankind, give it houses, clothes, and so on – not just for the English or for the Americans, but all world.... To solve all these immense problems, to break through all stupidity of nationalism, all the political bargaining, the ambition, and the avariciousness of power, one needs the scientific spirit. But unfortunately, as one sees, the scientific spirit is mostly concerned with going up to the moon and improving our comforts... That is all right so far it goes, but it seems to be a very limited point of view."<sup>12</sup> In this passage, it seems that J. Krishnamurti asserts that if we apply rightly the scientific spirit we can reform to some extent the individual mind also. We can remove many superstitions from our society through the spirit of science but we are not applying the scientific spirit to our whole life. We are just using it as a means of comfort and pleasure and it is not the fault of science.

Moreover, like western modernity, J. Krishnamurti is not saying that the scientific mind alone can transform the world physically and socially because the action of the scientific mind is limited. But even the limited insight of 'science' could partially reform our life. But ultimately if someone wants to transform his life wholly he/she has to understand what a religious mind is. The relationship between these two minds in the word of Krishnamurti is—"The religious approach includes the scientific approach, but the scientific approach does not contain within it the religious approach."<sup>13</sup> Although it is a religious mind which could discover the autonomous universal moral law but to rightly function the religious mind a scientific temper is needed. I think may be J. Krishnamurti is the first person who is advocating the scientific temper of the religious mind in the whole history of humankind. Scientific temper means, as the scientific mind investigates fact to fact without any prejudice and fear in the limited field of the external object, the religious mind also investigates wholly life fact to fact without the interference of the past.

Further, J. Krishnamurti states that as scientific truth is one, there is also one truth in the spiritual field. If there are many truths in the spiritual field it means these truths are not based on some facts but ideas. Science studies the matter. The matter is a

thing that is limited in time, space, and causality. But the science of Hindus is not different from Christians. There is one science of all people. Likewise, the inner truth of human beings also is one for all. The problem is we are not living intelligently. We are living at the level of thought and knowledge and our knowledge is limited. When we try to see something with the help of this limited reality, we only see limited and this limitation of knowing is the root problem of human consciousness. Therefore if a person wants to live without conflict, without limitations he has to find out what is intelligence and what is knowledge and what is the relationship between knowledge and intelligence. Krishnamurti believes that the '**truth**', which is beyond all our so-called religions, could be found out with a '**scientific temper**' only.

#### IV

Indian society is passing through many fundamental problems. Now, this is the high time to solve our problems. Both traditions of India—The Hindu and the Buddhist agree that our egoistic, limited, conditioned Self is the root cause of every problem. But the approach of both is different. The approach of Hinduism is traditional and authoritative but the basic approach of Buddhism is based on reason and it is modern.

Hence, we have to understand that day by day the problems of the world are coming in front of us each time with new faces. We have to accept the reality that we cannot solve over problems of modern times while looking behind. We accept it or not the age of the authoritative God is already ended. This is the age of Humanity. Therefore we have to discover the moral law within. And all glory, all beauty, and all the love consist in this discovery.

J. Krishnamurti has earned respect among intellectuals but often his concept of transformation is misunderstood. Many people think that he is talking about some mysterious transformation that is very rare and does not have any relation to our social and political life. But as we have seen in the context of Scythe's scientific and Religious minds he believes they are complementary to each other and if we use our scientific spirit rightly we can change our society. But all the time he is making us aware that to evaporate the psychological sorrow one must understand what a religious mind is. The concept of transformation includes our external social and political life.

What J. Krishnamurti is meant by transformation is beautifully expressed by him in the following lines:

“When you are observing, seeing the dirt on the road, seeing how politicians behave, seeing your attitude towards your wife your children and so on transformation is there. To bring about some kind of order in daily life that is transformation; not something extraordinary, out of this world. When one is not thinking, rationally, be aware of that and change it, break it. That is transformation. If you are jealous watch it, don't give it time to flower, change it immediately. That is transformation. When you are greedy, violent, ambitious, or trying to become some type of holy man, see how it is creating a world of tremendous uselessness. This seeing is transformation.

I don't know if you are aware of this. Competition is destroying the world. The world is becoming more and more competitive, more and more aggressive and if you change it immediately, that is transformation.

And if you go very much into the problem, it is clear that thought denies love.

Therefore one has to find out whether there is an end to thought, an end to time, not philosophies over it and discuss it, but find out. Truly that is transformation.

And if you go deep, transformation means never thinking of becoming; it is being absolutely nothing.<sup>14</sup>

In sum, the concept of Indian Modernity has infinite possibilities—from physical and social development to spiritual development. But we have even not achieved physical prosperity and social order. We could at least bring some changes in ourselves and hope for some changes in the rest of humanity because the individual is not different from the rest of humanity in this model of thinking.

---

*Department of Philosophy, Vasanta College for Women  
Krishnamurti Foundation India, Rajghat, Varanasi-221001*

#### References -

1. T.R.V. Murti, *Studies in Indian Thought, Vedānta and Buddhism*, Edited by Harold G. Coward, MotilalBanarsidas Publishers, New Delhi, 1983, p.200.
2. *Ibid.*
3. *Ibid*, p.201.
4. *Ibid.*
5. Ashish Nandi, *An Anti-secularist Manifesto*, India International Centre Quarterly, Vol. 22, Spring 1995, page-35.
6. J. Krishnamurti, KFA Bulletin 85, 2011, Page 1-2.
7. J. Krishnamurti, *Krishnamurti to Himself*, published by Krishnamurti Foundation India, 1991, Page-37 and *The First and Last Freedom*, Published by Krishnamurti Foundation India, 2001, Page- 25.
8. J. Krishnamurti, *Krishnamurti to Himself*, Page- 61.
9. J. Krishnamurti, *Dignity of Living (Collected Work of J. Krishnamurti, Vol.-15)*, Published by Krishnamurti Foundation India, Saanen, 10th Public Talk, 1st August 1965, page-509.
10. *Ibid*, Page-511.
11. K. C. Bhattacharya, *The Concept of Philosophy-15*, Studies in Philosophy, Vol. II, page 108.
12. J. Krishnamurti, London, 11<sup>th</sup> Public talk, 25<sup>th</sup> May 1961, Study Material for J. Krishnamurti International Workshop 27-29 Dec 2011, Page-2.
13. *Ibid*, Page 1.
14. J. Krishnamurti, *A Jewel on silver Platter*, Edited by Prof. Padmanabhan Krishna, Pilgrims Publishing, Varanasi, 2015, Page 405.

# **Livelihood Challenges of Saharia Tribe: A Case Study from Central India**

---

*Usha Rana*

## **Introduction**

Many tribal communities are still struggling in their daily lives due to many challenges. Their precarious livelihood can be seen as the biggest challenge (McDowell, 2012). Historically, tribes are the indigenous people of the land in the sense that they have been long settled in a different part of the country. According to the 2011 census, the total population of tribes in India is 104,281,034, which constitutes 8.08% of the total population of the country. At present, 623 tribal groups with their subgroups are inhabiting hilly and plain forest regions almost all over India (Tribal Development Department, 2011). Majumdar defines a tribe as “a collection of families or common groups bearing a common name the members of which occupy the same territory speak the same language and observe certain taboos, regarding marriage, profession or occupation and have developed as well assured system of reciprocity and mutuality of obligation” (Majumdar, 1961). After seven decades of being an independent country, there are some tribal societies still almost primitive and seem to live in an isolated settlement. Some are even in natural or dug-out shelters. Their social, economic, and health situations are creating hindrances in their development.

The highest tribal population of 1,53,16,784 (22.73% of the total tribal population) has been concentrated in Madhya Pradesh; hence Madhya Pradesh is referred to as the tribal heart of India. Here, 46 scheduled tribes<sup>1</sup> and their sub-groups have been identified throughout the region, out of which most of the tribal population (14,276,874) habitates in the rural region. The Government of Madhya Pradesh indicated three tribes as intensive backward tribes of the state; Saharia is one of them. The sporadic concentration of Saharia is not only limited by political boundaries in Madhya Pradesh but also their dispersals are located in Rajasthan. In Madhya Pradesh, Saharias are mainly found in the different districts, including Guna, Vidisha, Shivpuri, Datia, Bhind, Sheopur, Morena, and Gwalior.

The government has been pumping resources to main streaming the tribal people, but there are many problems in the way of development. Their basic characteristics, along with the poor implementation of government policies, are the main hurdles. The essential characteristics laid down by the Lokur Committee (1965), for a community to be identified as schedule tribes are shyness of contact with the community

at large, geographical isolation, indications of primitive traits, a distinctive culture, and backwardness. These characteristics can be seen within the Saharia community at present as well. The second problem is illiteracy, unawareness, and unconsciousness of tribal peoples. Another issue with this subject is the lack of effective implementation of policies and monitoring of proposed development plans not occurring regularly. In this situation, active participation and intervention for change and development have required. There are required to as agencies/organizations that can provide a proper direction to empower the tribal societies. There Non-Government agencies can work for desirable change. The United Nations Department of Public Information (UN DPI) defines the NGO as “a not-for-profit, voluntary citizen's group that is organized on a local, national or international level to address issues in support of the public good. Task-oriented and made up of people with a common interest, NGOs perform a variety of services and humanitarian functions, bring citizen's concerns to Governments, monitor policy and program implementation, and encourage the participation of civil society stakeholders at the community level.”

In the same line of goals, several NGOs are working in the Madhya Pradesh state. The Gwalior Catholic Seva Samaj, Gwalior, Madhya Pradesh, has worked in the Shivpuri district with the Jeevika project is a community-based approach for sustainable livelihood. NGO had been working to monitor and evaluate government policies for food security and other relative aspects. In this context, this study empirically investigates the livelihood challenges of a primitive tribe, “Saharia,” of Neemdanda village of Shivpuri district in Madhya Pradesh. Particularly, the study aims to highlight the contributions of NGOs towards the betterment of life of the Saharia tribe.

### **About the Research Context**

Saharia is one of the most primitive tribes. The name Saharia probably means inhabitants of the jungle. Those living near the roads are not much different in language and dress from other people in the region, but in the interior areas, they as agricultural laborers. They are hired at nominal wages by the land owners. Their economic condition is appalling. They have hardly any land as an owner; thus, they virtually become slaves of others for their food security in their whole life.

Several studies have been done in this area. The study by Biswas and Kapoor (2003) describes that the mortality rate in the saharia tribe is higher than in other tribes. The study also shared the following factors such as economic status, contamination in food, water, environment, child marriage, unconsciousness about child health, lack of literacy, and unawareness about the outside world. According to Sah et al. (2003) findings, 93% of Saharia's children are suffering from anemia and malnutrition. A study by Rao et, al. (2010) highlighted that tuberculosis disease remains a major public health problem in the Saharia 'primitive' tribal community of Shivpuri district Madhya Pradesh, Central India. Another study from the same area by Rao et al. (2019) has also described the poor health status of Saharia, and the study findings also highlight tuberculosis among Saharia tribal population. The insecurity of livelihood, poor living conditions, and penurious quality of water and food made the tribe more vulnerable.

The socio-economic condition of Saharias can be seen as a challenge. The study by Poornima (2015) mentioned one village study in the Shivpuri district where 105 families were suffering for their livelihood and still could not change due to poor reformatory programmes by the government. Other studies on livelihood problems

Tyagi and Padhi (2019), Paltasingh and Paliwal (2014), and Kabra (2006) pointed out that Saharia depended on forest land resources and their related activities for survival. Later on, they have to migrate from one place to another for survival.

These studies show the poor condition of the Saharia tribe, poverty (Mehta and Shah, 2003), and scarcity of nutritious food can be solved by providing sustainable livelihood. The state government and Non-government organizations have processed the effort in this area. This study is based on the assessment of the village after completing NGOs' three-year direct participation with villagers for their livelihood.

### **Research Area and Methodology**

Some villages of the Shivpuri district inhabited by Saharia people are located in the interior part of the district. This study has based on primary data. The Neemdanda village has been selected by purposeful sampling. The purpose behind this study is to evaluate the impact of work had been done in the Neemdanda village by Gwalior Catholic Seva Samaj, Gwalior, Madhya Pradesh.

A collective case study method opted to understand the community-based problem (Johnson, 2006; Priya, 2020). Informal interviews were used for data collection from 22 natives (50% male and female) of the village. All respondents were in the age group between 35 to 50 years, and there was one Sarpanch of the village. Moreover, one focused group discussion was conducted with the six senior women (35-50 age group) in the village. All respondents were illiterate. 69% of respondents were married, and 31% were widows. They do not have a stable livelihood; most of them work as a labour in the fields and stone mines. Interviews and FGDs were conducted in the local Hindi language, and later, the data was translated into English. The data analysis of the case study was based on OTTR, which stands for 'observe,' 'think,' 'test,' and "revise," this principle helped in the thematic analysis of data.

### **Demographic Profile of Village**

There were 75 households and 359 (information by Sarpanch)<sup>2</sup> villagers in the Neemdanda village. The female population was higher (60% female: 40% male) than the male. This can not be seen as good sex ratio, in the village, while it is because of the higher mortality rate of males in this tribe. Hence, several widow women are in this village, and this pathetic condition has been increasing day by day in the village. One other characteristic of demographical structure, an age group between 0-14 year have a big size. It means the fertility ratio is high due to early marriage system and not have awareness about family planning. A large number of tuberculosis patients can also be seen in the village. Some evidence of HIV was also found in the village.

### **Living standard**

There is not sufficient agricultural land in the Neemdanda village. Therefore, people are agricultural labours for daily bread. Due to a lack of resources (financial and natural), food security is not ensured for each family. Hunger, malnutrition, and diseases are seen in the village. Families cannot feed their children with proper nutrients, which leads to malnutrition and child morbidity. There is no cemented houses in the village, houses are made of soil and their roof with the wooden rod with thin stone slit, locally known as "Patoar" and houses are only one room area. The average height of houses is six feet of patoar or an average of seven feet of mud houses. After marriage, new couples establish their own house. Many villagers have few old items in their homes, such as televisions, DTH, mobiles, and two old bikes also found in the village. Sometimes they borrow money from other landlords and are always influenced by indebtedness.

### ***Family, Marriage, and Religion***

There is a nuclear family system in the village. After marriage, each couple established their own house for their new family. However, other family members live together in separate houses in one geographical location. The husband, wife, and children make a family unit. Child marriages are very common in the community. An Early age of pregnancy creates health challenges among women. The Saharia women are not allowed inter-caste marriage. The caste mahapanchayat has the right to control inter-caste marriages (Saxena, 2019). Widowhood is a pain full issue, and these women have been suffering from economic and social problems compared to other women. The Hindu culture highly influences the Neemdanda village's Saharia tribe; they worship many Hindu gods and goddesses and also celebrate various Hindu festivals, like Diwali, Holi, Dussehra, etc.

### ***Education Status***

There is illiteracy in the village, only two males are working in the private sector in near by city, while the others are engaged in the unorganized sector. Only fifteen people could pass high school, while two students could reach college. Although sarve shikha abhiyan is working there, the dropout rate is high in the village because of absent school teachers, and the pattern of education is unable to create interest in the student. In other words, we can say there is no environmental relation of education with real requirment in the village. Although, the mid-day meal attracts students and their families, but villagers mentioned during interviews that there is no regular meal distribution.

### ***Status of Food Security in Neemdanda Village***

Food security exists only when all people at all-time have both physical and economic access to sufficient food to meet their dietary needs for a productive and healthy life. Also, food utilization, that is, proper biological use of food, requires a diet that provide sufficient energy and essential nutrients. But villagers in Neemdanda village do not have sufficient quality food for an average of two daily diets. Several times people have no food for their children or have only dry bread (chapatis). Malnutrition can be seen almost in every or second Saharia child in this village (Yadav, 2019).

### ***Contrbutions of NGOs in Neemdanda Village***

In the Shivpuri district, 14 villages were targeted for orientation through “Jeevika” project in the last years. “Jeevika” a community-based approach for sustainable livelihood and food security by Gwalior Catholic Seva Samaj, Gwalior, Madhya Pradesh. The NGO had actively worked for three years in this village. This NGO was working on the project with two major objects, first for special emphasis and advocacy of the effective implementation of the Government Programmer of food security. Second object was awareness about villager's rights and support to people for food production in their local area. The NGO targeted the following governmental schemes under this project.

- Targeted public distribution scheme, (TPDS)<sup>3</sup>
- Mid-day meal scheme<sup>4</sup>
- Aganwadi scheme<sup>5</sup>

### ***Focused group discussison (FGD)***

Targeted public distribution scheme: In the selected village, we discussed with six women, senior natives of the village, and other respondents. They shared that the TPDS system was totally paralyzed in the village. The community people have not seen

any regular ration in the shop for more than a year. Sometimes, they were getting one month's ration in three months. When we discussed participants of FGD, they shared that "Gram Sevak kept distribution register in his custody and eating our whole ration." After hearing about the problem, NGO member's contacted the following village sarpanch and planned to work on this problem with the community. This way, PRIs could be conscious in their role in food security in the community. This effort created some challenges in the beginning, but later on, with the intervention of state officers, things could change.

#### ***Mid-day Meal Scheme***

Respondents shared in their local language that NGO members suggested (Neemdanda village's women) monitor a regular healthy diet of food with a hygienic perspective in the school. They have also advised to formate a group of women. The group leader divided assignments among the women on daily bases. In this way, every woman follows her turn. Hence, NGOs helped to develop community-based monitoring.

#### ***Anganwadi Centres***

Women mentioned that as other organizations function, Anganwadi was also paralyzed. There is no systematic arrangement of health checkups for pregnant women, new mothers, and children in the age group. Accredited Social Health Activists (ASHA) do not regularly visit this area.

Moreover, the 'Jeevika' project has also focused on villagers' livelihood because earning capacity also decides food security. Neemdanda villagers had shared that they do not have sufficient agricultural land. However, the state government distributed a small part of the land to each house. But, because of upper caste domination, villagers could not occupy such land. There was some community land in the village, and the NGO activities encouraged villagers to do something. The following program was conducted in the village.

#### ***Formation of Farmers Club***

NGOs members encouraged interested farmers to be part of the club and described their roles or responsibilities. The monthly meeting was decided to further process. In this meeting, NGO members had been planning a discussion on agriculture's small community land. They also encouraged women to participate in this club, and the club's name opted from their religion.

#### ***Seed distribution with support of Kishan Vikash Kendra (KVK)***

NGO member had a discussion with Shivpuri District's NABARD officer about project and farmer club registration, and with the horticulture officer (Horticulture superintendent Block- Shivpuri), both of them assured about the cooperation in this project and provided seeds for distribution in project village. That way started coordination with the community and the government officers. The object behind this scheme was to create a way to get small occupations. Another importance was to produce seasonal vegetable for nutrition. They can use such vegetables for food in their daily diet. The villagers can get benefits through horticulture. Thirtyone beneficiaries of Neemdanda village got seasonable vegetable seeds. The horticulture officers suggested they grow these seeds in kitchen gardens and other lands. They informed them to get a quality vegetables in minimum water. They had distributed to following seeds to villagers, including spinach, beans, bitter melon, green chili, pumpkin, tomato, etc.

#### ***Formation of youth Club***

NGO members also format a youth club, there they started counselled to youths

and provide them new direction for their future. There were following issues targeted: (1) awareness about food habits in villagers. (2) training to villagers on health malnutrition issues. (3) awareness about dysfunction of alcoholism. (4) awareness about government policies. (5) awareness for sustainable livelihood.

### Discussion and Conclusion

Ludwig Stein and Hobhouse (Barnes, 1932), who believe that social change does not come of its own. They believe that neither materialistic nor nonmaterialistic change does not come by own to social transformation. On the other hand, pointed and concerted efforts will have to make for bringing social change. These efforts include the spread of knowledge and literacy. According to them, our conscious efforts in a planned way are more effective for getting a social change than unplanned and unsystematic efforts.

Although, livelihood resources for tribal people are very limited in the region. Most the people depend on forest land resources and their related activities. The forest is deteriorated due to several reasons now, depending on the forest is a mammoth challenge for this tribe. In the case of Saharia availability of cultivable land is very limited in their village. There is a need for an alternative livelihood. Specific options of alternative livelihood must be enhanced in Saharia's region. The skill development programme should start, and the relevant training programme must be provided to those people on a priority basis to prevent malnutrition, chronic diseases, poverty, and forced migration for the livelihood of this tribe. Other non-farming activities can also plan options like livestock goatery, piggery, dairy, and poultry can be some alternative options that can help to reduce the crisis and make their economic life more sustainable. The government should plan some inclusive policies for all primitive tribes in the state. Here an effective education system, health policies, and livelihood should be priorities.

The participatory development model can work to change the situation in this region. However, several NGOs are working with the government, but small efforts can not significantly contribute to change. The conscious approach for social welfare, social security, and social justice can only mainstream this tribe or other primitive tribes. The 'Jeevika' project applied in the Neemdanda village was limited because of a lack of resources and limited time for intervention, which can not be sufficient for mainstreaming to such historically deprived. However, the work initiated by the NGO can be seen as a ray of hope towards participatory development.

---

*Department of Sociology and Social Work,  
Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar, (M.P.) - 470003*

### End Notes -

1. The term 'Scheduled Tribes' first appeared in the Constitution of India. Article 366 (25) defined scheduled tribes as "such tribes or tribal communities or parts of or groups within such tribes or tribal communities as are deemed under Article 342 to be Scheduled Tribes for the purposes of this constitution".
2. According to Census 2011, the total population of village was 286, and 68 households. <https://villageinfo.in/madhya-pradesh/shivpuri/shivpuri/neem-danda.html>
3. In June 1997, the Government of India launched the Targeted Public Distribution System (TPDS) was focusing on the poor. Under the PDS, States were required to formulate and implement foolproof arrangements for the identification of the poor for the delivery of foodgrains and for its distribution in a transparent and accountable manner at the fair price shop.

4. The National Program of Nutritional Support to Primary Education (NP-NSPE) was launched as a centrally sponsored scheme on 15th August 1995 in 2408 blocks in the country to enhance enrolment, retention, attendance, quality of education, and improvement of nutritional levels among children.
5. The Anganwadi Centres (AWCs) are a part of the Integrated Child Development Services (ICDS) Scheme, a centrally sponsored government scheme. The ICDS was launched on 2 October 1975 and is one of the flagship programmes of the Government of India, focussing on children and nursing mothers.

## References -

- Barnes, H. (1932). *The Development of Sociology. The Scientific Monthly*, 35(6), 543-553.
- Biswas, R. K., & Kapoor, A.K. (2003). *A Study on Mortality Among Saharia – A Primitive Tribe of Madhya Pradesh. The Anthropologist*, 5(4), 283-290.
- Johnson, M.P., (2006). Decision models for the location of community corrections centers. *Environment and Planning B: Urban Analytics and City Science*. 33(3), 393-412.
- Kabra, A., (2006). *Impact of Involuntary Displacement on a Tribal Community (A Case Study of the Sahariya Adivasi Displaced from Kuno Wildlife Sanctuary, Madhya Pradesh)*. In A. K. Mehta, & A. Shepherd (Eds.), *Chronic Poverty and Development Policy in India* (pp. 196-220). Sage Publications.
- Majumdar, D. N. (1961). *Races and cultures of india. Asia Publishing House, Bombay*.
- McDowell, A. (2012). Echoing silence: Backwardness, governmentality and voice in contemporary India. *Journal of Asian and African Studies*, 47(4), 348-362.
- Mehta, A. K., & Shah, A. (2003). Chronic poverty in India: Incidence, causes and policies. *World Development*, 31(3), 491-511.
- Paltasingh, T. & Paliwal, G. (2014). Tribal population in india: regional dimensions & imperatives. *Journal of Regional Development and Planning*, 3(2), 27-36.
- Poornima, M. (2015, June 3). Livelihood of 'rehabilitated' Saharias at stake in Shivpuri. *Hindustan Times*. <https://www.hindustantimes.com/bhopal/livelihood-of-rehabilitated-saharias-at-stake-in-shivpuri/story-oZQ2UIkeyNVrfGM9bS1jTJ.html>
- Priya, A. (2020). *Case Study Methodology of Qualitative Research: Key Attributes and Navigating the Conundrums in Its Application. Sociological Bulletin*, 70(1), 94-110.
- Rao, V. G., Gopi, P. G., Bhat, J., Selvakumar, N., Yadav, R., Tiwari, B., Gadage, V., Bhondeley, M. K., Wares, F. (2010). Pulmonary tuberculosis: a public health problem amongst the Saharia, a primitive tribe of Madhya Pradesh, Central India. *International Journal of Infectious Diseases*, 14(8), 713-716.
- Rao, V. G., Bhat, J., Yadav, R., Sharma, R. K., & Muniyandi, M. (2019). Declining tuberculosis prevalence in Saharia, a particularly vulnerable tribal community in Central India: evidences for action. *BMC Infectious Diseases*, 19, 1-8.
- Sah, D. C., Bhatt, A. & Dalapati, T. K. (2003). *Chronic poverty in remote rural areas of south-western Madhya Pradesh. Madhya Pradesh Institute of Social Science Research, Ujjain*. [https://niti.gov.in/planningcommission.gov.in/docs/reports/sereport/ser/ser\\_chr.pdf](https://niti.gov.in/planningcommission.gov.in/docs/reports/sereport/ser/ser_chr.pdf).
- Saxena, D. (2019, July 1). Saharia women not allowed to marry non-tribals: MP Mahapanchayat diktat. *Times of India*. <https://timesofindia.indiatimes.com/city/bhopal/saharia-women-not-allowed-to-marry-non-tribals-mp-mahapanchayat-diktat/articleshow/70029681.cms>.
- Tribal Development Department. (2011). *A-11 Individual Scheduled Tribe Primary Census Abstract Data and its Appendix*. <http://adibasikalyan.gov.in/html/state-data-2011.php>.
- Tyagi, M., & Padhi, S. R. (2019). Livelihood Diversification and Challenges among Sahariya Tribe in Gwalior District, *Think India Joruanl*, 22(14), 2251-2261.
- Yadav, S. (2019). Amid acute poverty, M.P.'s Saharia children battle malnutrition. *The Hindu*. <https://www.thehindu.com/news/national/other-states/amid-acute-poverty-saharia-children-battle-malnutrition/article29369050.ece>.

# **Buddhist Evidences at Early Historic Vidarbha**

*Nishant Sunil Zodape*

The state of Maharashtra represents an assemblage of diverse physical and cultural elements. The change in the landscape (hilly, coastal, river, plains), economy (tribal, rural, urban) and people from one part of state to the other is not only discernible but also striking. The people of Maharashtra are traditionally divided more on the basis of cultural uniqueness and topographic situation than anything else. Thus, Konkan, Des, Marathawada, Khandesh and Vidarbha are the five principal geo-cultural units of Maharashtra.<sup>1</sup> (Dikshit, 1986, p. 152)

Vidarbha region (Lat. 19°21' N and 76°80' E) the study area of this article is situated in eastern part of Maharashtra. Wardha River divided Vidarbha in two region eastern part and western part of Vidarbha. Presently in Vidarbha region eleven districts viz., Buldhana, Wardha, Akola, Washim, Amaravati, Yawatmal, Nagpur, Bhandara, Chandrapur, Gondia, and Gadchiroli. Vidarbha region divided in two region eastern part and western part.<sup>2</sup> (Sawant, Historical Archaeology of Vidarbha, 2012, p. 10)

It is eastern most part of Maharashtra. Madhya Pradesh state border in north side of Vidarbha. Telangana Border of south side of Vidarbha. Chhattisgarh border in east and western side is Jalgaon, Pignoli, Jalana, and Nanded districts of Maharashtra state.

Vidarbha region is very rich in archaeological remains. From prehistoric time to modern times, the archaeological evidences are available in this region. But proper excavated site of this region it starts from chalcolithic period sites are 'Tulzapurgarhi, Adam, Arambha, Shrikhanda'. A large number of megalithic and historic sites and a smaller number of prehistoric sites in situated Vidarbha region. After that Mauryan occupation in this area and majority of sites are belongs to Satvahana period.<sup>3</sup> (Sawant, Review of Archaeological Investigations in the Protohistoric, 2010)

Vidarbha is in central part of India. It is Historically important from past to present time. In this region archaeological remains related to Buddhism found in large scale. All type of evidences has been unearthed. Excavated sites, stupa sites, coin, epigraphical evidences, sculpture etc. is related to Buddhism. Pauni, Adam, Bhon and Mansar are stupa sites. These are the excavated sites. Deotek, Chandala, Pauni etc. having epigraphical evidences. Mahurzari coin may be Buddhist evidence. Vihara sites are Bhadravati, Patur, Chandala, etc., Bhadravati only having direct evidence of Buddhism other are not direct evidence. I explain above evidences in this paper.

### **Environment condition of Vidarbha**

Geographically, Vidarbha lies on the northern part of the Deccan Plateau. Unlike the Western Ghats, there are no major hilly areas. The Satpura range lies to the North of Vidarbha region in Madhya Pradesh. Wainganga is the largest river in Vidarbha with Kanhan and Wardha being the two other big rivers which drain the region.<sup>4</sup> (Joglekar, 2017)

Vidarbha having hilly, plateau, doab, river and plain area. Average altitude of Vidarbha region is 200 to 400 meters. Mainly Vidarbha topography is divided into three zone.

- 1- Northern Satpura hilly region
- 2- Central fertile plateau
- 3- South-Eastern Wardha- Wainganga doab

Nagpur and Wardha districts are under the Deccan traps and other districts formation is Archean and Gondwana. The Archean, Dharwar, the Cuddappahs and the Vindhyan all are exposed in Chandrapur, Nagpur and Bhandara districts.<sup>5</sup> (Dikshit, 1986)

Eastern Maharashtra is therefore virtually a museum of a whole sequence of rocks from the Archean to Cambrian. (Dikshit, 1986)

Vidarbha region is very rich mineral resource. Nagpur, Bhandara, Chandrapur, Gadchiroli districts having large content of minerals. Manganese ore, Feldspar, Copper ore, Chromite, Iron ore, Gold, Coal, Mica, Dolomite etc. minerals found in Vidarbha regions.<sup>6</sup> (Sawant, Historical Archaeology of Vidarbha, 2012)

Clay deposits in eastern Vidarbha are apt for manufacturing baked bricks, refractory crucibles and hard porcelain. (D., 1971, p. 45; Dikshit, 1986, pp. 16-20) (Deshpande: 1971-45, Dikshit 1986: 16-20)

### **Previous work and review:**

Various eminent scholars such as M. G. Dikshit (Kaundinyapur 1968); S. B. Deo and M. K. Dhavalikar (Paunar 1968); S. B. Deo (Takalaghat-Khapa 1970); S. B. Deo and J. P. Joshi (Pauni 1972); A. M. Shastri (IAR 1978-79, 1985-86, 1989-90, 1991-92), Amarendra Nath (1992a, b, c, 1995, 1996a, b, 1999, Pauni 1998, Adam 2016); B. P. Bopadikar (Tulzapur-Garhi 1996); J. P. Joshi and A. K. Sharma (IAR 1997-98, 1998-99, 1999-2000, 2000); A. K. Sharma and J. P. Joshi (2015), B. C. Deotare (2007), Deotare et al (2007, 2012), P. M. Khobragade (2000), Walimbe (2003), Mohanty (2003), Reshma Sawant (2012), Mohan Pardhi, Amardeep Barsagade, Akash Gedam, R.R. Borkar and others have thrown light on the various subject of Vidarbha region which yielded or found in exploration and excavations.<sup>7</sup> (Vaidya, 2016 Issn No : 0474-7269 Volume Lv No)

The excavated sites from Vidarbha for which published data is available are Kaundinyapur, Pavnar, Takalaghat-Khapa, Khairwada, Pauni, Naikund, Mahurjhari, Bhagimahari, Mandhal, Tharsa, Nagara, Arni, Arambha, Adam, Shrikhandha, Pachkheri, Bhawar, Hamlapuri, Mansar, Bramhapuri (district Chandrapur), Bhon (District Buldhana), Kholapur (District Amaravati) and others. As far as presence of Buddhism in Vidarbha is concerned, which is the main focus. Excavations at Pauni (Bhandara district), Adam (Nagpur district), Mansar (Nagpur district) and recently at the site of Bhon (Buldana district) have unearthed the evidence of stupa structures. New discoveries in the form of Buddhist sculptures or rock-cut caves had been reported. These studies notwithstanding, Buddhism in early historic Vidarbha has never been a

main object of any detailed study. But few researches are worth mentioning, such as an article S.B. Deo focusing on Hinayana Buddhism in Vidarbha. Dr. Pradeep Meshram also looked into various aspects such as the architecture of Buddhist cave, sculpture, and reading of inscriptions.<sup>8</sup> (Sawant, Review of Archaeological Investigations in the Protohistoric, 2010, p. 57)

Dr. Pradeep Meshram wrote one book in Marathi entitled, "Vidarbha Cha Buddha Dhammachha Itihas". V.V. Mirashi has done some work on the history of Vidarbha region but in his work Archaeology of Buddhism does not find any place. Similarly, Dr. Chandrashekhar Gupta wrote thesis on "Vidarbha Ka Saskrutik Itihas" and after he published books on some title but again, in his work Buddhism doesn't find appropriate space. Dr. V.N. Meshram book name is "Eye Pavchiye Nagari" and Chandrabhan Narnavare book name is "RamtekParichay" both books written about Pauni and Ramtek. H.L. Kosare written some article and he published research thesis as a book "Prachin Bhartatil Nag". B.J. Gokhale book "Buddhism in Maharashtra" and M.S. More book "Maharshtratil Buddha Dhammachha Itihas" both books written about Maharashtra Buddhism but they ignored Buddhism of Vidarbha region.<sup>9</sup> (Meshram, 2007, pp. 3-4)

Dr. Reshma Sawant book "Historical Archaeology of Vidarbha" wrote about Vidarbha. These books are very useful to understand the history of this region but these narratives in this book is centered mainly on historical archaeology but in her article written about Buddhism of Vidarbha. On basis of these sources Vidarbha region neglected separate study on archaeology of Buddhism in Vidarbha region.<sup>10</sup> (Sawant, Historical Archaeology of Vidarbha, 2012)

### **Cultural Sequence of Vidarbha**

#### **Chalcolithic**

Very few sites have Chalcolithic deposits, e.g., Tuljapur Garhi (Bopardikar 1996), Adam (IAR 1990-91, 1991-92), Arambha (IAR 1991-92), and Shirkanda (IAR 1991-92). (Sawant, Review of Archaeological Investigations in the Protohistoric, 2010)

#### **Iron Age-Megalithic Period**

Most excavations were conducted at Iron Age Megalithic sites, and these highlighted their economy, technology, pottery, house types, etc. (for details see Deo 1982, Joshi 1993, Mohanty and Joshi 1996). (Sawant, Review of Archaeological Investigations in the Protohistoric, 2010)

#### **Mauryan Period**

Few sites have yielded habitation deposits of the Mauryan period. These include Adam (IAR 1988- 89: 50-62; 1990-91: 45-50; 1991-92: 63-68; Nath 1992a: 69-79), Arambha (IAR 1991-92: 73-74), Arni (IAR 1978-79: 71-72; 1984-85: 55-56), Bhawar (IAR 1992-93: 55-62), Bramhapuri (Sawant 2003, 2006), Kaundinyapur (Dikshit 1968), Mansar (Joshi and Sharma 2005: 1-16), Pachkheri (IAR 1991-92: 64-73), and Pauni (Deo and Joshi 1972, Nath 1998) etc. (Sawant, Review of Archaeological Investigations in the Protohistoric, 2010)

#### **Pre-Satvahana Period**

A shorter chronology (propounded by A.M. Shastri) is inclined to date the Satvahana rule to around the middle of the first century BCE, thus creating an interval of several centuries between the termination of the Mauryan power and the commencement

of the Satvahana rule. A fairly large number of uninscribed cast and die-struck specie in cheap metals like copper, potin and lead were reported from Adam, Kaundinyapur, Pauni, Bhokardan, Nasik, Brahmpuri (Kolhapur), Kotalingala, amongst others. These are termed as pre-Satvahana issues (Shastri 1982: 1-16; 2002: 64). Archaeological remains of the PreSatvahana period are well represented at two sites – Adam (IAR 1990-91: 45-50; 1991-92: 63-68) and Bhon (Deotare 2007; Deotare et al. 2007; Sawant 2006, Shete 2009).<sup>11</sup> (Sawant, Review of Archaeological Investigations in the Protohistoric, 2010)

### **Satvahana Period**

The Satvahana along with their contemporaries, namely, the Kshatrapas (Mirashi 1981; Shastri 2002) and Maharathis (Mangalam 1999, 2002a, 2002b) played an important role in the history of Vidarbha. Sites in Vidarbha which have yielded Satvahana deposits include Adam (IAR 1990-91: 45-50; 1991- 92: 63-68) (Nath 1995: 149-171), Arambha (Nath 1992a: 69-74), Arni (IAR 1978-79: 71-72; 1984-85: 55-56), Bhawar (IAR 1992-93: 55-62), Bramhapuri (Walimbe 2003: 39-40; Sawant 2006), Kaundinyapur (Dikshit 1968: 29), Khairwada (IAR 1981-82: 51), Mandhal (Shastri 1978: 143), Mansar (Joshi and Sharma 2000: 127-131; 2005: 1-26), Pachkheri (IAR 1992-93: 64-73), Paunar (Deo and Dhavalikar 1967), Pauni (Deo and Joshi 1972; Nath 1998), and Ramtola (IAR 1969-70: 20). (Sawant, Review of Archaeological Investigations in the Protohistoric, 2010)

### **Vakataka Period**

The Vakatakas started ruling in Vidarbha and adjoining regions around the end of the third century CE and continued to rule up to the close of the 5th century CE (see Mirashi 1957, 1963; Shastri 1992, 1997). Sites such as Arambha (IAR 1991-92: 73- 74; Nath 1992: 69-74), Arni (IAR 1984-85: 55-56), Hamalapuri (Sali 1998: 9), Kaundinyapur (Dikshit 1968), Mahurjhari (Hunter 1933: 30-35; Mohanty 2002: 45-47), Mandhal (Shastri 1978: 142-174), Mansar (IAR 1994-95: 55-57; Joshi and Sharma 2000: 127-131; Bakker 2002: 1-24), Mulchera (IAR 1988-89: 49), Nagara (IAR 1979-80: 50; Jamkhedkar 1983: 25-36), Paunar (Deo and Dhavalikar 1967), Pauni (Nath 1998: 9), Ramtek (Jamkhedkar 1983: 25- 36), Shrikhanda (Sali 1998: 10), Tharsa (IAR 1989-90: 66-68), Vivekanandpur (Sali 1998: 9), Washim (Sali 1998:10-12) have yielded Vakataka deposits.<sup>12</sup> (Sawant, Review of Archaeological Investigations in the Protohistoric, 2010)

### **Archaeological evidence of Vidarbha region related to Buddhism:**

#### **Excavated sites:**

There are many sites was excavated in Vidarbha region, mainly Kaundinyapur, Junapani, Takalaghat-Khapa, Mahurzari, Paoni, Pavnar, Mandhal, Naikund, and Nagara, Borgaon, Bhagimahari, Chandala, Adam etc. In these excavated sites some excavated sites reported which is related to Buddhism. Paoni, Mansar, Bhon and Adam is excavated Buddhist sites in Vidarbha region.

#### **Pauni**

The site of Pauni (20°48' N; 79° 39' E) (district Bhandara Maharashtra) is 82 km due south-east of Nagpur district. It was excavated by RTM Nagpur University in collaboration with the Archaeological Survey of India. The site excavated in 2 seasons in

1969 and 1970. (Joshi, 1972, pp. 70-196) One of the localities known as Jagannatha Tekadi yielded remains of stupa complex. The structural phases of stupa fall in three phases. Pre- Mauryan, Mauryan, Sunga. In this excavation found inscription, octagonal pillar, *sucis*, etc. Various sculptural remains also unearth like *Yaksha*, human, geometric, and religious motifs.<sup>13</sup> (Sawant, Buddhism in Regional Perspective, 2011)

### **Bhon**

The site Bhon ( 20°55' N; 76°39' E) is situated on the right bank of the river *Purna* in Sagrampur *taluka* of Buldhana district, Maharashtra. This is excavated by Deccan college for five seasons (2003 to 2007). The excavation has unearthed brick-built stupa remains. The diameter of *stupa* is 14 m including *Pradakshina Patha*. The dome is completely absent. The *Pradakshina Patha* around 1.75 m. in breath forming five rows of bricks. Bricks size is two dimensions i.e., 40 x 26 x 22 x 8 cm and 52x28 x 24 x 8. Post-holes also reported near the *Pradakshina Patha*. Relic casket is not found in this *stupa*. Charcoal dating is 2180 ± 90 years BP. According to the excavator *stupa* at Bhon is of 3<sup>rd</sup> century BCE. It is likely to be earliest *stupa* of Maharashtra.(Sawant, Buddhism in Regional Perspective, 2011)<sup>14</sup> (Deotare, 2005)

### **Mansar**

Mansar 21° 24' N; 79° 17' E) (tehsil Ramtek, district: Nagpur) was excavated by the Archaeological Survey of India. At the locality called Hindiba Tekadi if Mansar, at the depth of 3.90m built over bed rock, portion of a brick *Stupa*, having diameter 8m, was exposed. The brick size of *stupa* is 46x22x7 cm. The base and knob of lime stone relic casket was recovered from the area of *stupa*. These *stupas* constructed during the late *Maurya* and the early *Sunga* period. Also of this period, on the south-eastern corner of *Hidimba Tedadi*, a brick built oblong *chaitya* has been exposed.<sup>15</sup> (Sharma, 2005) (Sawant, Buddhism in Regional Perspective, 2011)

The site of Adam (21° 00' N; 79° 28' E) was excavated by the Archaeological Survey of India. A locality called Devi Hudki (ADM - 2) yielded remains of a stupa. The earthen stupa was built over with two distinct phases of construction. Circular on plan, the stupa consisted of drum (medhi) (radius 17.30m) and dome (Anda) (radius 10.30m) which atop the basal remains of a square harmika (3.50m); in the centre of it was noticed a ring stone once supporting the *yasā i* of a *chhatravali*. This stupa did not yield any relic casket. It is dated to c. 1<sup>st</sup> century CE on the basis of coins. According to the excavators, 'assigned to two phases of period V the stupa of earlier phase was built over layer (5) whereas towards the later phase the restoration took place on the top layer (4). In earlier phase a L-shaped pathway (9.80 x 0.40 m) leading to the stupa was demarcated with a single coursed shale stone wall whereas in the later phase the same was indicated by a brick wall (22.20 x 1.20 m); mud as mortar remained common to both the phases.<sup>16</sup> (Nath, 1989)

On the basis of available evidences, the spread of Buddhism in the region of Vidarbha can be traced back to Mauryan period, especially during Asoka's reign. The Ceylonese Chronicle Mahavamsa contributes to our knowledge regarding the third Buddhist Council, which met during the reign of Moka at his capital Pataliputra. According to the text, the Council dispatched missionaries for propagating Buddhism in various countries. Some of the missionaries and related regions are listed here. They are: Majjhantika to Kashmir and Gandhara, Mahadeva to Mahisa-Mandala, Raksita to

Vanavasi, Dharmaraksita to Aparantaka, Maharakshita to Yavana country, Sona and Littara to Suvarnabhumi, Majjhima to Himavata region and Mahendra and others to Lanka. Mahadhamaraksita was sent to the region of Maharashtra. Even though there is no direct mention by Moka having sent a missionary to the region of Vidarbha as such, but some recent evidences testify to the Buddhist contacts with this region such as Deotek stone slab inscription of Mauryan period.<sup>17</sup> (Kane, 1965) (Deo, 1972-73, 6) (Sawant, Buddhism in Regional Perspective, 2011)

The oldest inscription of Vidarbha from was belong to Ashokan period. This inscription found in Deotek village Districts Chandrapur. This inscription engraved by Mahamatya of Ashoka. They have been engraved religious message of Ashoka.

There are many no. of inscriptions was found from Adam and Paoni. Mahakshtrap Rupiamma Pillar Inscription reported from Paoni. These inscriptions related Sunga-Satvahana period. Chandala, Patur, Mohadi in this rock-cut cave also having inscription. Nashik cave inscriptions also related to Buddhism of Vidarbha. Copper plate inscription related to Vakataka period and later Vakatak period. From this copper plate inscription, we got information which is useful for study of Vidarbha Buddhism.

### **Coin**

Coin is a very important source of study History and Archaeology; its gives social, political and economic information of particular period. In Vidarbha found Roman coins and seals at Sapegaon, Adam, Tadli, Kholapur. Satvahana coins also available in this region. One seal found from Mahurzari excavation and this is related to Buddhism.<sup>18</sup> (Meshram, 2007, p. 111)

We know about various stages about development and decline of Buddhism with help of art and architecture. In Vidarbha region here many caves and sculpture are available for study of Buddhism.

Chandala, Mandal, Satbhoki, Bhivkund, Garpaili (Nagpur District), Bijli, Kachargarh, Gaymukh, Koranbhi (Bhandara district), Bhadravati, Devalvada, Ghugghus, Mohadi, (Chandrapur Districts), Manjari (Amaravati district), Dhaga (Wardha District), Patur (Akola District), Pipalgaonraja, Savali (Buldhana district), Kalanb, Nibdyarvha (Yawatmad district) etc. cave of Vidarbha region. We need to study all the sites very minutely. From Paoni excavation lot of engraved stone was reported. It was used in stupa. On that stone human form, stupa, Dhamma chakra, Kalparuksha, Bodhi tree, Bhandrasan etc. mark related to Hinyana Buddhism. From Pavnar, Ramtek, found Buddha sculpture.<sup>19</sup> (Meshram, 2007, p. 84)

Vidarbha is a very important area about study of Buddhism in this area related Buddhism every type of evidence found in this area for example stupa, Vihara, sculpture, archaeological sites, coins, antiquities etc.

All above evidence found in this article from period of pre- Maurya to Vakataka period. According to Dr. Pradeep Meshram Pauni stupa made before Mauryan period. But proper excavated material found from the Mauryan period and after Mauryan period. More research needs in this area about Buddhism. Pauni inscription having the name of common people not a big ruler. It is evidence of Buddhism was accepted by common people of Vidarbha region and they contribute to spread and developed the religion.

May be Buddhism inter in Vidarbha region in time of Buddha because Pauni Stupa having the evidence of pre-Mauryan period evidences and very developed from of stupa and Vihara. In this region Buddhism survive more than 1000 year. Hinyana and Mahayana Buddhism was survived here. Buddhism popular in Mahurzari, Mandhal, Ramtek, Bhadravati, Bhon, Pauni, Patur and Salburdi area.

Buddhism was speared in large scale in Satvahana period. Vidarbha was development social, economically, and educationally. Trade also increases. Adam having evidence of Indo-Roman trade. Educational institute developed in Vakataka period.

---

*Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology,  
Visva Bharati, Santiniketan,  
PO - Santiniketan, Bolpur, West Bengal - 731235*

#### References -

1. Dikshit, K. (1986). *Maharashtra in Maps*. Mumbai: Maharashtra State Board for Litetature and Culture.
2. Sawant, R. (2012). *Historical Archaeology of Vidarbha*. Bhopal, New Delhi: Indira Gandhi Rashtriya Manav Sangrahalaya, Aryan Books International.
3. Sawant, R. (2010). *Review of Archaeological Investigations in the Protohistoric*. *Man and Environment* XXXV(2), 45-65.
4. Joglekar, J. ( 2017). *A note on Archelian Findings near Nagardhan, Nagpur District, Maharashtra*. *Man and Environment* XLII, 114-117.
5. Dikshit, K. (1986). *Maharashtra in Maps*. Mumbai: Maharashtra State Board for Litetature and Culture.
6. Sawant, R. (2012). *Historical Archaeology of Vidarbha*. Bhopal, New Delhi: Indira Gandhi Rashtriya Manav Sangrahalaya, Aryan Books International.
7. Vaidya, M. S. (2016 Issn No : 0474-7269 Volume Lv No). *Newly Discovered Terracotta Figurines from Recent Exploration in Nagpur District, Vidarbha*. *The Odisha Historical Research Journal Odisha State Museum, Bhubaneswar* , 47.
8. Sawant, R. (2010). *Review of Archaeological Investigations in the Protohistoric*. *Man and Environment* XXXV(2), 45-65.
9. Meshram, P. ( 2007). *Vidarbhatil Buddha Dharmacha Itihaas*. Nagpur.: Shri Mangesh Prakashan.
10. Sawant, R. (2012). *Historical Archaeology of Vidarbha*. Bhopal, New Delhi: Indira Gandhi Rashtriya Manav Sangrahalaya, Aryan Books International.
11. Sawant, R. (2010). *Review of Archaeological Investigations in the Protohistoric*. *Man and Environment* XXXV(2), 45-65.
12. Sawant, R. (2010). *Review of Archaeological Investigations in the Protohistoric*. *Man and Environment* XXXV(2), 45-65.
13. Sawant, R. (2011). *Buddhism in Regional Perspective*. *Monasteries Shrines & Society*, Manak Publication, New Delhi, 84-111.
14. Deotare, B. (2005). *Discovery of structural Stupa at Bhon District Buldhana, Maharashtra*. *Puratattva (Pravarapur Special)*, 3, 1-16.
15. Sharma, J. J. (2005). *Mansar Excavation 1998-2004: Discovery of Pravarapur*. *Puramanthan ( Pravarapur Special)* 3, 1-16.
16. Nath, A. (1989). *Archaeology of the Wardha Wainganga Divide*. *Puratattva* 20, 97.
17. Kane, P. (1965). *Ancient Geography and Civilization of Maharashtra* . *Journal of Bombay of Royal Asiatic Society* Vol. XXIV (1914-17), 621.
18. Meshram, P. ( 2007). *Vidarbhatil Buddha Dharmacha Itihaas*. Nagpur.: Shri Mangesh Prakashan.
19. Meshram, P. ( 2007). *Vidarbhatil Buddha Dharmacha Itihaas*. Nagpur.: Shri Mangesh Prakashan.

# Understanding the relationship between unforgiveness and well-being among Indian adults: A thematic analysis

*Ajit Kumar Singh, Gyanesh Kumar Tiwari and Pramod Kumar Rai*

## Background

In the face of a transgression, people make several reactions to counter its negative impacts and the most desirable is forgiveness. Forgiveness occurs when people let go of their negative emotions toward the transgressors and avoid seeking revenge against them. (Pandey et al., 2020). The practice of forgiveness dates back to ancient times when religious teachers promoted it as a method of reducing interpersonal and intrapersonal conflicts. In certain situations, extending forgiveness is not possible due to various reasons. Unforgiveness is defined by Stackhouse et al (2018) as an internal state in which one's experiences in the aftermath of a transgression vary along with one or more of the following dimensions: negative emotions with rumination, unforgiving cognitions, and/or an altered perception of the offender.

Although forgiveness is the most desirable way to respond to wrongdoings, it is not always possible in many situations to grant forgiveness due to deleterious consequences it may have for victims. Earlier studies examined unforgiveness using the conceptual framework of forgiveness and suggested these constructs carry differences with some interdependence. (Wade & Worthington, 2003; Worthington & Wade, 1999) Recently, unforgiveness is being studied with other variables such as personality traits and self-concept. (Fatfouta et al., 2015; Worthington & Wade, 1999)

Contrary to earlier positions that emphasized unforgiveness to lead to only negative consequences for people, studies suggested certain benefits of holding forgiveness too. (Rapske et al., 2010; Stackhouse et al., 2018) Thus, wholesome studies showed unforgiveness to be appropriate, justifiable and morally legitimate in the face of some severe types of offences such as brutal murder, burglary and sexual abuse (Macaskill, 2005) and even for some small transgressions, (Rapske et al., 2010), others reported it to lead to some negative consequences that may contribute to the negative emotionality and to lower self-respect and self-concept. (Luchies et al., 2010).

## *The current study*

It is noticeable that there are contradictions regarding the consequences it may have for people, as some studies suggest certain benefits of unforgiveness related to health, well-being and interpersonal relationships (Bono et al., 2008) while others find

it to be maladaptive (Wade & Worthington, 2003; Worthington & Wade, 1999). Also, there is little research available to establish whether unforgiveness carries positive or negative consequences for individuals. Moreover, much of unforgiveness literature is theoretical and its tenets have yet to be tested empirically (Stackhouse et al., 2018; Worthington, 2006). There is much scope to carry out its scientific study on samples of diverse cultural groups since there are cultural differences in the meaning of transgressions and the self-construal of individuals from individualist and collectivist societies (Pandey et al., 2021). Also, there is limited research on the relationship between unforgiveness and well-being outcomes. Well-being comprises emotional, psychological and social well-being that captures all the relevant aspects of human functioning (Keyes, 2005). Given the universal prevalence and unavoidability of transgression experiences, ranging from low to high in severity, in the day-to-day life of the majority of the people and limited research on unforgiveness, the present study aims to understand the relationship between unforgiveness and well-being outcomes of an Indian adults' sample.

## **Methods and procedure**

### ***Design and participants***

A qualitative research design was employed to meet the study objectives. Twenty-three university students pursuing their graduate and postgraduate programmes at the various departments of Doctor Harisingh Gour University, Sagar, Madhya Pradesh, India (*Age Range* = 20-27 years, *Mean* = 23.09, *SD* = 1.78) were chosen through purposive and snowball sampling techniques. Out of these, 12 were males (*Age Range* = 20-27 years, *Mean* = 23, *SD* = 2.22) and 11 were females (*Age Range* = 21-25 years, *Mean* = 23.18, *SD* = 1.25). The majority of them belonged to lower-middle-class Hindu families with apparent normal physical and mental health.

### ***Interview process and data analysis***

Based on pertinent unforgiveness studies, (Ballester et al., 2011; Fanner, 2004; Harris & Thoresen, 2005; Jones Ross et al., 2018; Lozano, 2018; Rapske et al., 2010; Stackhouse et al., 2018; Worthington & Wade, 1999), a semi-structured interview protocol was developed. Participants were debriefed about the study objectives and written consent was taken. After making proper rapport, the researchers instructed participants to remember any experience/s in which someone harmed/upset/angered them and they did not forgive them. To clarify the situation explained by the participants, some probe questions were also asked. Interviews were audio taped with the permission of the participants. Twelve male and thirteen female participants were interviewed. Out of these, two females could not recall any unforgivable experiences so they were excluded from the study. Thus, the final data were collected from 23 participants.

The interview contents were transcribed verbatim and analyzed using the thematic analysis method (Braun & Clarke, 2006). The thematic analysis method involves familiarization with data, coding, generating themes, reviewing themes, defining and naming themes and writing up (Braun & Clarke, 2006). To generate the themes and sub-themes, a conference of the three researchers was organised where differences and disagreements were resolved. A written handbook was used to manage

the data collection and analysis process. An iterative approach was used to analyse the data. Saturation was reached after collecting the data on 19 participants. Four more data were collected to check the saturation. The inter-rater agreement for the codes was .81. Integrity and dependability of the analysis were maintained through regular discussion, inter-rated agreements, reading-rereading transcripts and using a realist approach to the data analysis process (Guest et al., 2012)

## Results

The data analysis showed that unforgiveness was not a rare experience for the participants and it carried positive as well as negative implications for their well-being. Two major themes with multiple subthemes were generated: positive and negative implications of unforgiveness for mental health and well-being.

### ***Theme 1: positive implications of unforgiveness for the well-being outcomes***

Participants described many positive consequences of holding forgiveness that may be assumed to promote their well-being outcomes. The positive implications of unforgiveness for their mental health were reflected in four subthemes: enhanced happiness/satisfaction, adaptation, self-worth and safety feeling.

#### *Subtheme 1: enhanced happiness/satisfaction*

Participants described that holding forgiveness helped them to make the transgressors and their pain-causing behaviours distant that, in turn, may have caused them to feel happy and satisfied. These reflections appeared in the following quotes:

I am feeling good now since I don't have to face him anymore. (F\_1)

I will not forgive him. It satisfies me because he had broken my trust. (F\_11)

I am feeling far better now since he is realising that what he has done was not appropriate. (M\_12)

#### *Subtheme 2: enhanced adaptation*

The majority of the participants reported that holding forgiveness enhanced their adaptability. They reported learning significant lessons of life from their transgression encounters. These were reflected in the following quotes:

I have learned many things from this incident. I can now deal more effectively with this and other similar kinds of future events. (F\_9)

When we forgive others, we forget what they did, but when we don't, we remember everything that they have done to us. It enhances our adaptation. (F\_8)

#### *Subtheme 3: improved self-worth*

The participants expressed that holding forgiveness helped them to reduce mental burden, increase meaningfulness, spare more time for self-care and lesser interference in their day-to-day life. These were reflected in the following quotes:

Now I don't have to do any formality. I don't care what he is doing. Now I can devote more time to fulfilling personal growth and important life goals. (M\_5)

Now I remain inclined to my useful activities. It is time-saving for me. (M\_10)

We don't interact with each other. So, he doesn't interfere in my life which is good for me. (F\_7)

#### *Subtheme 4: an enhanced sense of security*

Unforgiveness helped them to make a proper distance with the transgressors, develop appropriate strategies to deal with this and similar transgressions and motivate the transgressors to think over their negative behaviours that have caused transgressions. These may have caused them to feel safer than before. These appeared in the following excerpts:

I will not have to face any transgression again if I am not forgiving her. (F\_4)

If I am not forgiving him then I will be cautious and remain alert. Even if he tries to commit anything wrong, it can be prevented easily. (M\_6)

***Theme 2: negative implications of unforgiveness for the well-being outcomes***

In addition to certain benefits of holding forgiveness, the participants also described some negative consequences that bear direct implications for their well-being. Feeling of betrayal, personal threats, relational threats and perceived harassment were subthemes that reflected negative consequences of unforgiveness relevant to their well-being.

***Subtheme 1: a feeling of betrayal***

Many participants described that the offenders have done something that resulted in the breaching of their (victims) trust towards them (offenders). It was reflected in the following quotes:

I trusted him a lot but he misused me. So, I decided not to forgive him in my lifetime. (F\_3)

I had a girl friend who betrayed me when I need her most. She didn't call me. She didn't message me for a long time. (M\_3)

***Subtheme 2: personal threats***

Some participants reported that the transgression experiences posed threats to their regard and were unforgivable because of their impacts on personal life. These were reflected in the following quotes:

My mother is very strict. She always imposes her decision and refuses to listen to my perspective. It is very upsetting to me. (F\_5)

When I was graduating my roommate mentally harassed me. He tortured me for petty things that were unbearable to me. (M\_8).

***Subtheme 3: relational threats***

Some of the participants reflected that holding forgiveness caused them to face relational threats. The representative quotes describing these experiences are presented below:

I have a cousin. One day he came up with an argument with my parents and started verbally abusing them. I was deeply hurt and decided not to forgive him for insulting my parents. (F\_2)

My uncle verbally abused my father which was extremely hurtful to me and I will never forgive him for that. (M\_7)

***Subtheme 4: harassment***

Some of the participants also reported different types of harassment experiences that resulted in their unforgiveness to offenders. These are reflected in the following quotes:

While travelling on a bus during my school days, a stranger came to me and showed me some nude pictures. He asked me to touch his private part. Since I

was very young, I didn't understand how to react to the situation. I did nothing. This was the worst experience of my life. I will never forgive him in my life. (F\_6)

There was a boy in our school. He tried to molest me. At that time, I was very distressed and worried. (F\_10)

## Discussion

The study findings proved the contention that unforgiveness experiences lead to a variety of positive and negative consequences that may have significant implications for the well-being outcomes of the adult participants. The data analysis led to the development of two major themes. Contrary to some previous findings that reported only negative outcomes (Worthington & Wade, 1999), Theme 1 denotes that holding forgiveness may lead to many positive outcomes that may have a direct and significant bearing on the well-being of the participants. Theme 2 reflects that unforgiveness experiences cause many negative outcomes that may pose challenges to their well-being outcomes.

Contrary to previous findings which suggest that holding forgiveness acts as a precursor that leads to undesirable and inappropriate life outcomes (Rapske et al., 2010b; Worthington & Wade, 1999), the current study findings posit that it may have certain positive implications that may closely shape the well-being of people. For example, when the nature of the offence is severe, unethical and immoral and creates serious threats to the very existence of life of individuals, extending forgiveness may be fatal and thus, unforgiveness may prove to be a useful strategy to maintain well-being and to remain meaningful. Likewise, some transgressions pose serious threats to the personal, social, and/or relational life of victims and thus, granting forgiveness may cause serious harm to their mental health and well-being. For example, it may cause threats to their self-worth, and decrease self-esteem which may result in decreased adaptation. It may also increase the chances of revictimization that inadvertently leads to a lowered sense of security.

Unforgiveness, in many situations, may have some positive implications to maintain good mental health and well-being. For example, holding forgiveness decreases the chance of revictimization and helps to maintain a proper distance from the transgressor which bears a significant adaptive value. Unforgiveness also helps people to bring positive growth in the victim in some cases. It helps victims to learn life lessons and to prevent repeating the mistakes in future. The present study findings lend partial support to the previous research that suggests unforgiveness to preserve self-worth (Rapske et al., 2010). According to grudge theory (Exline & Baumeister, 2000), holding unforgiveness confers a measure of protection against future victimization and makes victims morally superior to offenders. It also helps victims to justify their expressions of anger and other negative emotions toward the offenders. These benefits may directly help victims to enhance their self-worth, to achieve happiness and satisfaction, and to develop a sense of security on one hand and may ensure better adaptation on the other (Exline & Baumeister, 2000). Thus, to some extent, unforgiveness not only improves the emotional well-being (happiness, satisfaction) of victims but also consolidates their psychological (self-acceptance, personal growth, autonomy and purpose in life) and social well-being (social actualization and social acceptance) aspects.

The study findings also suggest that unforgiveness causes a feeling of betrayal, induces personal and relational threats and leads to a feeling of harassment in victims. These study findings have been mirrored in previous studies too. For example, studies suggest that holding grudges negatively impacts well-being (Rye et al., 2004) and relationships (Bono et al., 2008). These may be assumed to denote challenges before the well-being outcomes of people.

The study findings may have significant theory and practice implications. It is noticeable that unforgiveness bears positive and negative consequences for victims and thus, it suggests that promoting forgiveness is not appropriate in all life situations. Understanding the role of unforgiveness in well-being may be of help in clinical and counselling situations. These new findings may act as a background to understand the constructs of self-development and well-being in the light of current findings of unforgiveness.

It may be concluded that unforgiveness was described to extend benefit to the victims on one hand and to pose some challenges to their well-being on the other. Enhanced happiness/satisfaction, adaptation, self-worth, and an enhanced sense of security were described as the major facilitators of well-being while the feeling of betrayal, personal threats, relational threats and harassment were reported as some obstacles.

### ***Limitations and future directions***

This study is not without limitations. Unforgiveness is related to the life experiences of people and it is assumed that the older we get the more experiences we gather. Thus, the recruitment of the participants with a young age range (20-36 yrs.) is the first limitation. The majority of the participants belong to the Hindu community which is another limitation, as each religion has its perspective of forgiveness and unforgiveness. There is a significant gender difference in the level of forgiveness and thus, gender differences in unforgiveness experiences of the participants may be examined in future studies. Future studies may also investigate unforgiveness concerning other religions such as Jainism, Buddhism etc.

---

Department of Psychology,

Doctor Harisingh Gour Vishwavidyalaya, 470003

### **References -**

1. Ballester, S., Chatri, F., Sastre, M. T. M., Rivière, S., & Mullet, E. (2011). Forgiveness-related motives: A structural and cross-cultural approach. *Social Science Information*, 50(2), 178–200. <https://doi.org/10.1177/0539018411398418>
2. Bono, G., McCullough, M. E., & Root, L. M. (2008). Forgiveness, Feeling Connected to Others, and Well-Being: Two Longitudinal Studies. *Personality and Social Psychology Bulletin*, 34(2), 182–195. <https://doi.org/10.1177/0146167207310025>
- Braun, V., & Clarke, V. (2006). Using thematic analysis in psychology. *Qualitative Research in Psychology*, 3(2), 77–101. <https://doi.org/10.1191/1478088706qp063oa>
- Exline, J. J., & Baumeister, R. F. (2000). Expressing forgiveness and repentance: Benefits and barriers. In M. E. McCullough, K. I. Pargament, & C. E. Thoresen (Eds.), *Forgiveness: Theory, research, and practice* (pp. 133–155). Guilford Press.

- Fanner, N. (2004). *The Lived Experience of Forgiveness/Unforgiveness in Victims of Violent Crime: An Empirical Phenomenological Study* [Masters Thesis, University of Kwa-Zulu Natal]. [https://researchspace.ukzn.ac.za/xmlui/bitstream/handle/10413/1898/Fanner\\_Nicola\\_2004.pdf?sequence=2](https://researchspace.ukzn.ac.za/xmlui/bitstream/handle/10413/1898/Fanner_Nicola_2004.pdf?sequence=2)
- Fatfouta, R., Gerlach, T. M., Schröder-Abé, M., & Merkl, A. (2015). Narcissism and lack of interpersonal forgiveness: The mediating role of state anger, state rumination, and state empathy. *Personality and Individual Differences*, 75, 36–40. <https://doi.org/10.1016/j.paid.2014.10.051>
- Guest, G., MacQueen, K. M., & Namey, E. E. (2012). *Applied thematic analysis*. Sage Publications.
- Harris, A., & Thoresen, C. (2005). Forgiveness, Unforgiveness, Health, and Disease. *Handbook of Forgiveness*.
- Jones Ross, R. W., Boon, S. D., & Stackhouse, M. R. D. (2018). Redefining unforgiveness: Exploring victims' experiences in the wake of unforgiven interpersonal transgressions. *Deviant Behavior*, 39(8), 1069–1081. <https://doi.org/10.1080/01639625.2017.1399747>
- Keyes, C. L. M. (2005). Mental Illness and/or Mental Health Investigating Axioms of the Complete State Model of Health. *Journal of Consulting and Clinical Psychology*, 73(3), 539–548. <https://doi.org/10.1037/0022-006X.73.3.539>
- Lozano, H. (2018). *Unforgiveness: An Alternative Space for People who Cannot Forgive* [Masters Thesis]. Simon Fraser University.
- Luchies, L. B., Finkel, E. J., McNulty, J. K., & Kumashiro, M. (2010). The doormat effect: When forgiving erodes self-respect and self-concept clarity. *Journal of Personality and Social Psychology*, 98(5), 734–749. <https://doi.org/10.1037/a0017838>
- Macaskill, A. (2005). Defining Forgiveness: Christian Clergy and General Population Perspectives. *Journal of Personality*, 73(5), 1237–1266. <https://doi.org/10.1111/j.1467-6494.2005.00348.x>
- Pandey, R., Tiwari, G. K., Parihar, P., & Rai, P. K. (2020). The relationship between self-forgiveness and human flourishing: Inferring the underlying psychological mechanisms. *Polish Psychological Bulletin*, 51(1), 23–36. <https://doi.org/10.24425/PPB.2020.132649>
- Pandey, R., Tiwari, G. K., Parihar, P., & Rai, P. K. (2021). Positive, not negative, self-compassion mediates the relationship between self-esteem and well-being. *Psychology and Psychotherapy: Theory, Research and Practice*, 94(1), 1–15. <https://doi.org/10.1111/papt.12259>
- Rapske, D. L., Boon, S. D., Alibhai, A. M., & Kheong, M. J. (2010a). Not Forgiven, Not Forgotten: An Investigation of Unforgiven Interpersonal Offenses. *Journal of Social and Clinical Psychology*, 29(10), 1100–1130. <https://doi.org/10.1521/jscp.2010.29.10.1100>
- Rapske, D. L., Boon, S. D., Alibhai, A. M., & Kheong, M. J. (2010b). Not Forgiven, Not Forgotten: An Investigation of Unforgiven Interpersonal Offenses. *Journal of Social and Clinical Psychology*, 29(10), 1100–1130. <https://doi.org/10.1521/jscp.2010.29.10.1100>
- Rye, M. S., Folck, C. D., Heim, T. A., Olszewski, B. T., & Traina, E. (2004). Forgiveness of an Ex-Spouse: How Does It Relate to Mental Health Following a Divorce? *Journal of Divorce & Remarriage*, 41(3–4), 31–51. [https://doi.org/10.1300/J087v41n03\\_02](https://doi.org/10.1300/J087v41n03_02)
- Stackhouse, M. R. D., Jones Ross, R. W., & Boon, S. D. (2018). Unforgiveness: Refining theory and measurement of an understudied construct. *British Journal of Social Psychology*, 57(1), 130–153. <https://doi.org/10.1111/bjso.12226>
- Wade, N. G., & Worthington, E. L. (2003). Overcoming Interpersonal Offenses: Is Forgiveness the Only Way to Deal With Unforgiveness? *Journal of Counseling & Development*, 81(3), 343–353. <https://doi.org/10.1002/j.1556-6678.2003.tb00261.x>
- Worthington, E. L. (2006). *Forgiveness and reconciliation: Theory and application*. Routledge.
- Worthington, E. L., & Wade, N. G. (1999). The Psychology of Unforgiveness and Forgiveness and Implications for Clinical Practice. *Journal of Social and Clinical Psychology*, 18(4), 385–418. <https://doi.org/10.1521/jscp.1999.18.4.385>

# Ecofeminist Jurisprudence: Nature, Gender and Law

*Pratyush Pandey, Sarita Pandey*

## Introduction

“God recognized at the creation the fact that the two great classes of mind are needed to work together. They are both necessary in every department of human effort. Neither can be discarded without results fatal both to justice and to morality”

---The Proceedings of the Woman's Rights Convention, 1852.

Aligned to similar perspective, the preamble of the Charter of the United Nation preserves the dignity and value of the human person and provides equal rights to men and women. Article 2 of the Universal Declaration of Human Rights affirms the principle of gender justice and states, “Everyone is entitled to all the rights and freedoms set forth in this Declaration, without distinction of any kind, such as race, colour, sex...” (The Universal Declaration of Human Rights, 1948).

The first conference to address the analogy of domination of women and that of nature, “Women and the Environment”, was organized at the University of California, Berkeley, in 1974, and was followed by a multiple number of other conferences. Initially, ecofeminists sought to accomplish two aims: first, to establish the connection between women and ecology and second, to point out the inadequacy of environmental theorists for accommodating the insights of feminism into it. In their writings, ecofeminist theorists tried to focus on the significance of the theory and how it establishes the unique relationship with other environmental theories (Gaard and Gruen 234). Law plays a vital role in order to achieve these two aims. The relationship between human and nature is influenced by law as it regulates the relationship by codifying specific strands of the cultural and natural narrative.

Law has always been used as the instrument of social change. Although law is considered as the product of society but it is responsible for the transformation of individual, social and national issues. Thus, the issues related to the ecofeminist theories can be very well tackled by taking the recourse of law.

This paper is divided into two parts. The first part deals with the conceptual framework of ecofeminism in order to establish the background for arguments to be advanced in the second part of the paper. The second part of the paper explores how law protects the legal interest of women in an effort to strengthen the ecofeminist jurisprudence.

### **Ecofeminism: conceptual contour and relevance**

The term 'Ecofeminism' was first used in Francoise d' Eaubonne's *Le Féminisme ou la Mort* (Feminism or Death), 1974. This book intended to create an awareness against the oppressive patriarchal structure that equates women and nature in order to dominate over them. Ecofeminism can be categorized as a feminist ecology or ecological feminism: it discusses various ways in which women and nature are connected. Therefore making significant contribution in understanding why the environment is a feminine issue and also, why feminist issues are related to environmental issues. "The exploitation of nature and animals is justified by feminizing them; the exploitation of women is justified by naturalizing them" (Warren 37).

Prof. Greta Gaard defines Ecofeminism in her book *Ecofeminism: Women, Animals, Nature* as "...a theory that has evolved from various fields of feminist inquiry and activism: peace movements, labor movements, women's health care, and the anti-nuclear, environmental, and animal liberation movements" (1). Ecofeminism helps to connect issues such as gender, race, class, and sexuality in theoretical terms with questions about the environment.

Ecofeminism includes a trans-specific, eclectic, holistic, and all-encompassing diverse stirrings. It is an effort to achieve certain basic principle of perceiving life. Vandana Shiva comments, "Feminism as ecology, and ecology as the revival of 'Prakriti', the source of all life, become the decentered powers of political and economic transformation and restructuring" (24).

The root of Ecofeminism lies in the social change movements of the 1960s and 1970s. Some of the American ecological philosophers and writers such as Rachel Carson, Aldo Leopold, Henry David Thoreau, and John Muir had tried to draw our focus towards the rapacious environmental destruction caused by industrialization and modernization. The critical books that had laid the foundation for ecofeminist discourse were Rachel Carson's "Silent Spring", Susan Griffin's *Woman and Nature: The Roaring Inside Her*, Mary Daly's *Gyn/Ecology*, and Carolyn Merchant's *The Death of Nature*.

Ecological feminism is an extraordinary tableau of heterogeneous perspectives of feminism such as Marxist feminism, Liberal feminism, Radical feminism, Socialist feminism, Black feminism and Third World feminism. Ecofeminism tends to include not only women, but all subordinate groups like the poor, people of color, children; and the natural components like land, water, animals, mountains etc.

The capitalist reductionist patriarchy ceases to recognize women as the alternative mode whose knowledge of nature is oriented to social benefits and sustenance. The combined effort of feminists and other marginalized groups in the environmental movements stirred the notion of ecofeminism, for instance, Chipko movement (1973) in North India, Green Belt movement (1977) in Kenya by Wangari Maathai, and Love Canal (1978) in New York by Lois Gibbs, against deforestation, desertification and environmental pollution. The death of nature is central to the threat to survival. In this time of 'toxic masculinity', ecofeminist movement includes an unprecedented number of women and ends up creating an unmatched number of women leaders all round the world.

Lori Gruen in her article "Dismantling oppression: An analysis of the connection

between women and animal” states, “Theoreticians, by creating a history in which man is separate from and superior to animals, establish a mechanism in which a separation from woman can be grounded” (qtd. in Greta Gaard 62). This separate man and woman sphere were based on the biological factors such as woman having reproductive capacity, shorter height, menstruation etc. and can be held responsible for projecting women as the weaker, inferior and vulnerable group. Therefore, women were restricted to the four walls, under the protection of stronger men. This could be traced through the human evolutionary phase, where women were prohibited to hunt, and thus gradually she was positioned as the other and marginalized group.

Droughts, storms, forest fire and other natural conditions cause much suffering. Thus nature, which is a means of survival, can also be ferocious at times. Woman being symbolic of nature which nurtures and brings forth life is also feared, “With the increased risks and uncertainties of farming life came an intensified desire to dominate. This domination of both natural forces and women was often sought through 'divine intervention'...Religious belief can thus also be seen as a particularly pernicious construction of women and animals as 'others' to be used” (Gruen 64).

In one of the first ecofeminist books *New Woman, New Earth* (1975), Rosemary Radford Ruether's comment is worth quoting here:

Women must see that there can be no liberation for them and no solution to the ecological crisis within a society whose fundamental model of relationships continues to be one of domination. They must unite the demands of the women's movement with those of the ecological movement to envision a radical reshaping of the basic socioeconomic relations and the underlying values of this [modern industrial] society. (204)

Ariel Salleh proposes that ecofeminism analyses the “critically embodied materialism” which thereby happens to be responsible for the oppression of women and nature. She opines that women's relation to “nature”, “capital” and “labour” has been constructed by patriarchy in a way that women's labour globally is crucial to the practice of materialism. This continued capital accumulation and extension of hegemony are not negotiable at the cost of exploitation and subjugation of women and nature. The concept of 'progress' through scientific and modern technologies is not a universal concept but rather a patriarchal structure which commodifies and destructs the growth, productivity and sustenance of women and nature.

In *The Second Sex*, Simon de Beauvoir explains that “Marriage is the destiny traditionally offered to women by society. It is still true that most women are married, or have been, or plan to be, or suffer for not being” (445). She advocates that the patriarchal civilization dedicated woman to chastity while provides the male rights of sexual freedom (Beauvoir 395).

Gruen claims that the medical research of reproductive system practiced on women and animals are at high risk for the human and non-human world. She opines that the “'Third World' women undoubtedly suffer the worst, in terms of both actual experimentation and the subsequent manipulation of reproductive choice” (Gruen 66). She discusses its hazardous effects in details and meanwhile gives us cross references of famous feminist critics. For instances, Gruen quotes Gene Corea, who has explored how

women may suffer from reproductive experimentation. In her article "The Mother Machine", Corea has written about the hormonal treatment to create super ovulation that tends to damage ovaries, the dangers of anaesthesia and surgical manipulations may damage ovaries and sometimes lead to the death of women. To express her views in words: "It may sound simple to just take a few eggs from a woman's ovary, fertilize them, and return them to her uterus, but in fact, the manipulations of the woman's body and spirit involved in this procedure are extreme" (68).

The tentacles of "Sado-ritual" (in Daly's term) syndrome against women by patriarchy are deeply rooted in almost all religions. Though some have been banned, some are still being practiced. Indian, 'sati' or 'suttee', Chinese foot-binding, African female-genital-mutilation, European witch burnings, and modern American Gynaecology and Psychiatry are the manifestations of Sado-ritual syndrome. The common reasons of these practices involve: an obsession with purity, the total erasure of responsibility for the atrocities rituals could inherently transfer, role of women as token torturers and scapegoats. Ritualized practices have compulsive orderliness, easily acceptable and normative.

Ironically marital rape or sexual assault on one's wife, where she has been exploited both physically and mentally, is not considered as a crime in India. In the 1600s there was a statement on marital rape exemption by the Chief Justice, England. He declared that if a husband rapes his lawful wife, he could not be taken as guilty. Their mutual contract and matrimonial consent is taken as if wife belongs to her husband, i.e. he holds all the power over her. In the 1970s, women activists in America raised their voice against marital rape exemption clause and equal protection to women. But India still lags behind to introduce any such law against marital rape. Marriage is taken as an option to protect girls. This makes clear the execution of law which is either obscure or dependent on the interpretation of patriarchy. Education and economic independence are still a dream for most of the Indian girls because this gives them the strength to be heard, to maintain their dignity and respectability.

### **Law and Gender Justice**

The issues related to gender justice and feminism are aptly addressed by International and National legislations. One of the landmark international legal instruments that called for nations to eliminate discrimination against girls and women is The Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women (CEDAW). This legal instrument not only eliminates the discrimination but also promotes equal rights in all the fields. CEDAW is considered as the international bill of rights for women, and is one of the prime international agreements that ushers the work of UN Women in achieving gender justice and empowering all women and girls.

The principle of gender justice has been very well established in the Constitution of India. Part III of the Indian Constitution deals with the Fundamental Rights under which discrimination with respect to gender is considered as violation of the Fundamental Rights of the person.

Article 14 of the Indian Constitution states that, "the State shall not deny to any person the equality before the law and equal protection of laws within the territory of India."

Article 15(1) of the Indian Constitution prohibits the State to discriminate against any citizen on the grounds only of religion, race, caste, sex, place of birth or any of them.

Article 15(3) permits the State to make special provisions for women and children.

Article 16 provides that, “there shall be equality of opportunity for all citizens and they shall not be discriminated on the basis of religion, race, caste and sex”. (The Constitution of India, 1950).

Further, it is the fundamental duty of every citizen, “to renounce practices derogatory to the dignity of women.” (Article 51A(e) of the Constitution of India, 1950). Apart from these legislations, Supreme Court of India through series of decisions protected the Women's Right.

In *Air India v. Nargesh Mirza*<sup>1</sup>, the Supreme Court struck down the clause that specified the termination of the employment of an air hostess on her first pregnancy which is considered as abhorrent and arbitrary to the notions of a civic community.

In *Pratibha Rani v. Suraj Kumar*<sup>2</sup>, the apex Court was of the view that the 'stridhan' property of a married women must be given to her custody, and she has a complete authority over it.

In another judgement<sup>3</sup>, Supreme Court interpreted the Section 6 of the Hindu Minority and Guardianship Act 1956 and held that during the lifetime of the father, mother can act as a natural guardian of the minor child if the father was not in the charge of the minor.

In *Vishaka and others v. State of Rajasthan*<sup>4</sup>, the Supreme Court protected the rights of working women against the sexual harassment at her work place. It was held that “sexual harassment of working women at her place of an employment amounts to violation of rights of gender equality and right to life and liberty which is clear violation of Article 14, 15 and 21 of the Indian Constitution”. The Court further observed that: “The meaning and content of the fundamental rights guaranteed in the Constitution of India are of sufficient amplitude to compass all the facets of gender equality.” (*Vishakha v. State of Rajasthan* 6).

In a very recent case of *Ministry of Defence v Babita Puniya*<sup>5</sup>, the Supreme Court held that women are qualified for the permanent commission in commanding roles of the defence forces. This decision is one of the classic decisions which made women to attain equality with reference to their male colleagues in respect of pensions, promotions, etc.

Further in the case of *Vineeta Sharma v. Rakesh Sharma*<sup>6</sup> the Supreme Court held that the daughters have equal right in the ancestral property irrespective of the facts that whether the father of the daughter was alive or not on September 9, 2005.

Supreme Court in *Shayra Bano v. Union of India*<sup>7</sup> declared the practice of *Triple Talaq* (under which the Muslim man can divorce the Muslim women by uttering *Talaq* thrice) as unconstitutional. It was held that such practice is against the basic tenets of holy *Quran*.

In a celebrated case of *Joseph Shine v. Union of India*<sup>8</sup>, Supreme Court decriminalised the Section 497 of the India Penal Code dealing with the Adultery. The court held that women can't be considered as the chattel of their husbands and such law is unconstitutional on the ground of violating the principle of liberty, dignity and equality.

After going through all these legislations and case laws, one can say that in order to achieve gender justice and strengthen the ecofeminist jurisprudence, law plays a pivotal role.

### **Conclusion**

According to Catherine A. MacKinnon, "Feminist jurisprudence is a new jurisprudence which seeks to create new relation between life and law" (635). The aim of ecofeminist jurisprudence is re(establishing) an egalitarian society, a global environment and sustainable development. Though it is debatable discourse, where some feminists (mainly western) find law reforms have touched upon only limited area of women's issues. These feminist opines that the legal rights are only restricted to granting formal equality to women, to make it successful it should ensure substantive equality. Also they advocate that laws enacted and implemented by the state agencies need to take the responsibilities for welfare services like child-care and health-care to ensure the substantive equality to eradicate the bias against women and strengthen their relationship with them. On the contrary, liberal feminists argue in favour of law reforms. According to them law plays a pivotal role in defining the relationship between man and woman and exploring possibilities of changing notions in order to maintain their rights. Law also protects the powerless by directing the power to some extent into relatively predictable forms, as an instance, women can also exercise their power to fight against exploitation. The law brings gradual change in the mindset and attitude of people. The subtle ways of law function in persuasive way, i.e. rather than prohibiting certain behaviour, it permits some behaviours, such as the Special Marriage Act, 1954, permits to marry in a secular form. It could be clearly seen how the introduction of Dowry (Prohibition Act), Child Marriage Act etc. brought social changes.

Therefore, instead of dismissing law, we need to rather shift our focus to reform only the discriminatory aspects of law. Also it must be accessible to its beneficiaries, i.e. instead of few women only all women need to be aware of and be able to enforce their legal rights. In India, most women do not have choice to step out of their patriarchal family system and therefore, can't afford to ignore law in order to protect these women against the atrocities. The legal feminism seems to be most appropriate in the Indian context that believes in equal rights to women. Also law should act on forcing men to respect women, in order to combat gender violence, enforcing property rights to women, changing social attitudes to women and compensating the discriminatory policies against women.

---

*Department of English, Arya Mahila PG College,  
(Banaras Hindu University) chet Ganj, varanasi-221002,*

### **References -**

- Abrams, M.H. *A Glossary of Literary Terms*. Wadsworth Cenage Learning, 2005.
- Adams, Carol J. "The Feminist Traffic in Animals". *Ecofeminism: Women, Animals, Nature*, edited by Greta Gaard, Temple University Press, 1993, pp. 195-218.
- Beauvoir, Simon De. *The Second Sex*. Vintage Books, 1949.
- "Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination against Women New York, 18 December 1979". *Universal Nations Human Rights: Office of the High Commissioner*, 18 Dec. 1979, <https://www.ohchr.org/en/professionalinterest/pages/cedaw.aspx>. Accessed 14 Jan. 2022.

- Daly, Mary. *Gyn/Ecology: The Metaethics of Radical Feminism*. Beacon Press, 1978.
- Gaard, Greta. *Ecofeminism: Women, Animals, Nature*. Temple UP, 1993.
- Gaard, Greta, and Lori Gruen. "Ecofeminism: Toward Global Justice and Planetary Health". *Society and Nature*, vol. 2, no. 1, 1993, pp. 1-35.
- Gruen, Lori. "Dismantling Oppression: An Analysis of the Connection Between Women and Animals". *Ecofeminism: Women, Animals, Nature*, edited by Greta Gaard, Temple University Press, 1993, pp. 60-90.
- Jain, M.P. *Indian Constitutional Law*. LexisNexis, 2016.
- Kheel, Marti. "From Heroic to Holistic Ethics: The Ecofeminist Challenge". *Ecofeminism: Women, Animals, Nature*, edited by Greta Gaard, Temple University Press, 1993, pp. 243-271.
- MacKinnon, A. Catherine. "Feminism, Marxism, Method and the State: Towards a Feminist Jurisprudence". *Journal of women in culture and society*, vol.8, no.4, 1983. JSTORE, <https://www.jstor.org/stable/3173687>. Accessed 12 Jan. 2022.
- Rich, Adrienne Cecile. *Of Woman Born*. Norton, 1995.
- Ruether, Radford Rosemary. *New Woman, New Earth: Sexist Ideologies and Human Liberation*. Seabury press, 1975.
- Salleh, Ariel. *Ecofeminism as Politics: Nature, Marx and the Postmodern*. Zed Books, 1997.
- . "Nature, Woman, Labor, Capital: Living the Deepest Contradiction". *Capitalism, Nature, Socialism*, vol.6, no.1, 1995.
- Shiva, Vandana. *Ecology and Politics of Survival: Conflicts over Natural Resources in India*. Sage Publications India, 1991.
- . *Staying Alive: Women, Ecology and Survival in India*. Kali for Women, 1988.
- "The Constitution of India, 1950". Government of India: Ministry of Law and Justice, <https://legislative.gov.in/constitution-of-india>. Accessed 14 Jan. 2022.
- "The Indian Penal Code, 1850". Government of India: Ministry of Law and Justice, <https://legislative.gov.in/sites/default/files/A1860-45.pdf>. Accessed 18 Jan. 2022.
- "Universal Declaration of Human Rights". United Nations, 10 Dec. 1948, <https://www.un.org/en/about-us/universal-declaration-of-human-rights>. Accessed 25 Jan. 2022.
- Wacks, Raymond. *Understanding Jurisprudence*. Oxford University Press, 2009.
- Warren, Karen, editor. *Ecofeminism: Women, Culture, Nature*. Indiana University Press, 1997.

# Gandhian Economic Philosophy in the 21<sup>st</sup> Century

---

*Sanjay Kumar Pandey*

*“The day the power of love overrules the love for power, the world will know peace.”*

*Mohandas Karamchand Gandhi*

Mahatma Gandhi has been regarded as one of the most influential successful persons the world has ever seen. He was unique in the sense that he blended spirituality with politics. He did not advocate religiosity in the political sphere. In fact, he was opposed to the politics in the name of religion. On the contrary, he stood for moral values in politics and national life. Gandhi's mission was not confined to seeking independence from the British, but to seek Truth as the reflection of God. Gandhi's struggle for independence by means of Satyagraha was just one of the many experiments that he carried out with truth.

For Gandhi, Truth, and not merely political goals, was the end and the devices such as nonviolence that he employed were means to achieve the supreme goal in whatever field he worked, social, political and economic. Thus, truth and nonviolence were closely interrelated and inseparable.<sup>1</sup>

Gandhi believed that all problems, be it political, social, economic, environmental or social, arise from human conflict. Conflict resolution was an important aspect of rebuilding and reconstructing society in general and the community at large.

The foundations of this rebuilding, according to Gandhi, were Truth and Nonviolence. Gandhi referred to this truth as Satyagraha. Satya is a Sanskrit word that means Truth. It doesn't only refer to being truthful and not lying but encompasses a deeper religious philosophy. This philosophy finds references in ancient Indian traditions of living in austerity in thought, speech and action. For Gandhi, Truth was the most important tool for creativity, for construction and for prosperity of any kind.

Religion for Gandhi was not what we see it today as, bracketed, conforming, lethal but quite the opposite. For Gandhi, religion is not the dogmatic framework of an organised doctrine propounded with a certain name, but, on the contrary it is an experience that binds one to the truth within and purges one's actions to become truthful. He did not support those who were keen to re-establish the religious dogma. Instead, he often advised them to “carry God to the poor in a bowl of rice rather than a bundle of high dogmas and logic”<sup>2</sup>. Religion, as it meant to Gandhi, was the soul of all his social and political actions and also the ethical framework that Gandhi followed.

Gandhi believed and propounded that Satyagraha was a powerful moral force. This force was more powerful than any political or physical force. The purpose of this strong and powerful moral force- Satyagraha – was to fight the tyranny and the authority that was instilled by the political forces.

This was not a sentimental force, but one that was steeped in scientific temperament that the world had not witnessed before.

This Satyagraha and this philosophy of moral force naturally found its way into how Gandhi viewed the economic state of the country during pre-independence.

Gandhi's use of moral force for his political demands, social reforms untouchability, Hindu-Muslim unity, welfare of the downtrodden classes, and emphasis on Swadeshi can be interpreted as a spiritual appeal to human soul, rather than a well thought-out political strategy. However, he was able to strike a balance between ground realities and his moral pursuits. Thus, the criticism that Gandhian method are not practicable in the contemporary world overlooks his successes in concrete and tangible shape. He was extremely successful in his political campaigns as well as in eradicating social evils such as Untouchability.

Gandhi was against large scale industrialization as he believed that it would deplete and destroy not just the people of India but also drown its rich culture and natural heritage. He propagated simple living and self-sufficient living. He believed very much in the power of India as an agrarian economy.

Let us analyze this in the context of the 21<sup>st</sup> century. Has this philosophy held true? Has a part of it been implemented? And can his philosophies be implemented?

The researcher believes that Gandhi's philosophy cannot be implemented in today's economic world. The analysis is as follows:

Gandhi's philosophy of Satyagraha and decentralization of the village economy would although give maximum power to the villages, safeguarding its culture and heritage, but at the same time would isolate village economies into separate communities at the micro level. In addition, there would be no national market and this would further lead to the Indian economy being left behind when it comes to the global economic market.

Let's take another of Gandhi's economic policies and analyze it in the present day context.

Gandhi fiercely campaigned for Khadi. He believed that Khadi should be the clothing that every Indian man, every Indian woman and child should wear. Khadi, basically homespun cloth, would in-turn make one self-sufficient and also promote the village industries. However, Gandhi has a larger goal with promoting Khadi.

The gap between the rich and the poor within the Indian community was increasing rapidly. The rich were getting richer and the poor were becoming even more down trodden. Khadi, in Gandhi's view, would bridge this gap.

In addition and very much rightly so, making one's own cloth was a classic case of defiance. A way of defiance that the world had not ever witnessed before. Gandhi directly, by spinning his own Khadi boycotted the British made cotton that had rendered millions of Indians poor and unemployed by taking the cotton processing to the British mills.

Fourthly, the political leaders of India used Khadi to connect to the people. The leaders were not different from the people, they wore the same Khadi, ate the same simple fare and were not industrialized like the rest of the British or the Upper Indian classes.

The philosophy of Khadi is very much relevant to our times today. There is no dearth of evidence that shows that the cloth making industry produces large amounts of waste that has led to mass destruction of the environment. The cotton industry all across the world, especially in Bangladesh and India, lets out harmful effluents into the Bay of Bengal. This has been caused by increase in demand for processed cotton. This increase has led to mass scale production of not only cotton but chemicals that are needed to process and colour the finished cloth to fit market standards.

But things are changing. It is ironical that the technology that led to mass scale production and destruction of village industries, and that caused unemployment and starvation has now become the savior to reinvigorate and rebuild various small scale village industries.

With the help of technology and transportation, individual village households can set up small and medium scale industries that helps them and their villages prosper.

The Boom in Information and Technology has brought closer the supplier to the demand. The farmer can now sell, thanks to great leaps in communication, to the seller. Let me reiterate this with a small example,

Many Himalayan villages benefit from selling Trout fish directly to sellers in cities. This sale and purchase has become possible because only because of progress in information and technology as well as transportation. The same example holds true for exports and imports. Many small artisanal households or organic farmers export their produce to many countries.

As in other fields, Gandhi's ideas on economics, too, are based on moral values rather than on Western model of development derived chiefly from profit oriented motives. Gandhi's ideas on economics have their origins in the oriental spiritual traditions of non-possession and restraint in consumption. What can be called Gandhian economics seems to take up the cause of the poor nations like India that had suffered due to the market-driven exploitative policies of capitalist systems. Gandhi's views on economics reflect the common man's perception about his well-being.

Modern Economics has taken its shape after the industrial revolution in the later part of the 18th century. It resulted in the craze for material progress made through the Growth Oriented development model. Today, economic growth is regarded as the best parameter of power, strength and virtue at all levels. International economic organizations have constantly been asking developing countries to accelerate their growth rate in order to integrate themselves into the process of globalization. But the disparity among societies that this model has created and the global melt-down that it has resulted into are easily ignored, and not attributed to the greed based development model. Gandhi comments:

Economics that hurts the moral well-being of an individual or nation is immoral and therefore, sinful. True economics never militates against the highest ethical standard; just all true ethics to be worth its name must at the same time be also good economics.<sup>3</sup>

Today, when Gandhi appears to be prophetic in rejecting the growth model of economic development, his economic idea becomes even more significant. In Hind Swaraj, Mahatma Gandhi severely criticized the western model of development and foresaw the imbalance and competition that it will create. He even went to the extent of calling it 'Satanic', and a product of 'Kaliyuga'. Gandhi was of the opinion that this system is meant for making men slaves of money and luxury. As a better alternative, he propounded the Sarvodaya model which brings good for all.<sup>4</sup> He said that economics has to be infused with spiritual values. His ethical economy, if implemented, aims at creating social prosperity in terms of cordial relationship, among different layers of society rather than accumulation of sheer material wealth in certain pockets, the same as India is witnessing today.

Even the developed and affluent societies that have adopted the greed-based economic model are undergoing a great deal of mental trauma and enduring the pain of the melt down, experiencing isolation, emptiness and are losing their own perspectives. Stress, depression and insecurity have become a sort of epidemic in the countries which are known to have achieved all the parameters of development. Gandhi predicted that an economic model devoid of moral values, howsoever great profit it might bring, would not bring satisfaction and happiness to mankind. Only that economic system which is based on concern for other fellow human beings and regulated by ideals rooted in permanent order of things would achieve the vision of a sustainable world.<sup>5</sup>

In such a global condition, Gandhi's doctrine of trusteeship should be examined in order to find out whether it offers a better alternative model of overall development. Gandhi said, "Nature produces enough for our day-to-day needs, and if everybody took just enough for himself and nothing more, there would be no pauperism in this world." In Gandhi's words, "True economics never militates against the highest ethical standards, just as all true ethics to be worth its name, must also be good economic". Michael H. Hart, a well-known commentator, says that "There is little doubt that Gandhi's policies, if universally adopted, would transform the world."<sup>6</sup>

### **Conclusion:**

Gandhi's philosophy of Satyagraha is immensely relevant today as much as ever. The COVID-19 pandemic in India and the migrant crisis that ensued during its first wave in early 2020 shows that much needs to be done at the village level so that people get employment and are not heavily dependent on commercial urban centers. If the people of the village stay in the village for longer periods, then the systems of Health, Education and governance will automatically improve as there would be people's pressure for a just and equitable life.

The concepts of Satyagraha and Nonviolence are the foundations of any progressive human society. A society in which Truth and Nonviolence prevail is a society with less conflicts and thereby more development – economic, social, cultural, environmental, political and moral.

It seems that we have much to do in this regard.

---

*Department of Political Science  
C.M.P Degree College. University of Allahabad  
Mahatma Gandhi Marg  
George Town, Prayagraj - Uttar Pradesh - 211002*

**References -**

1. *Anil Dutt Mishra: Gandhism after Gandhi (Mittal Publications, 1999) p: 103.*
2. *P. Parameswaran: Gandhi, Lohia & Deendayal (Chitrakoot: Deendayal Research Institute, 1978), p. 55.*
3. *Cited in B. N. Ghosh: Gandhian Political Economy: Principles, Practice and Policy (Ashgate Publishing, Ltd., 2007) p. 12.*
4. *Janardan Pandey: Gandhi and 21<sup>st</sup> Century. (Concept Publishing Company, 1998) p. 180.*
5. *Shanti Swamp Gupta: Economic Philosophy of Mahatma Gandhi (Concept Publishing Company, 1998) pp. 154-158.*
6. *Michael H. Hart: The 100 (Secaucus: Carol Pub Group, 1992) p. 519.*

# Participation in Self Help Group and Subsequent Social Capital Attainment

*Monica Verma*

## 1. Introduction

Microfinance is credited with a role in alleviating poverty among the poor in developing countries by providing financial services to people with no or low income, thereby promoting long-term socioeconomic development (Monteza, Blanco & Valdivieso 2015). The microfinance use standardised business strategies to support new business ventures, primarily launched by women, resulting in their empowerment (Beisland, Mersland & Strm 2015). Rankin 2002 (as cited by Langer 2009) notes that most microfinance programs are based on the Grameen Bank of Bangladesh model, which uses “solidarity groups” for its members, through which loans are made to a group versus to an individual. Armendariz and Morduch, 2007 (as cited by Langer 2009) noted that both, a household's access to collateral and the transaction costs associated with borrowing is affected because in group lending, collateral is collected on a group basis, and groups are formed among peoples who know each other, thereby reducing the transaction costs associated with gathering information about potential borrowers . According to Hulme and Mosley 1996 (as cited by Langer2009)Microfinance institutions (MFIs), the institutions that run microcredit programs, usually follow one of three models for managing borrowers: solidarity groups, cooperative groups, or individual borrowing.

Although microcredit programs have different objectives, they are generally aimed at improving the factors of individual and family human development- social capital and socio-economic status (two central aspects); which are considered as the key aspects of a multidimensional view of economic well-being and are closely related. The proponents of microfinance perceive changes in both as potentially direct outcomes of household participation in microfinance programs. Furthermore, together they encompass a more inclusive idea of poverty reduction that focuses on a wide range of human development factors.

Women account for half of the world's population and make a significant contribution to the global economy (Richardson 2018). Their participation in the workplace fosters a productive work environment and also helps them achieve a respectable social status and be socially empowered (Garikipati 2013). According to

studies, entrepreneurship can increase women's empowerment, and microfinance plays an important role in this field by providing loans to meet the financial needs of the poor, particularly women and reducing their reliance on several other informal sources of finance that are not bankable due to a lack of collateral (Richardson 2018; Pratley 2016). The study examines the change in socio economic status of the SHG members and its subsequent impact on the social capital.

## **2. Conceptual Framework**

The socioeconomic status of a household is widely viewed as an indicator of its relative economic and social standing. It include information such as parents' education or occupation, as well as family income , National Center for Education Statistics 2009 (as cited by Langer 2009) and in developing countries, consumption, nutrition, employment, net worth, contraceptive use, fertility, and children's schooling are also linked to socioeconomic status (Khandker 1998). Increased household income as a result of new entrepreneurial activities or increased education of household members in comparison to prior participation can improve socioeconomic status in comparison to prior participation (Langer 2009).

The modern economy is distinguished by a strong interest in explaining economic phenomena through non-economic factors (for example, cultural and institutional factors). This is reflected in the growing interest among economists in the concept of social capital (sometimes called an elusive factor in the development (intangible asset) due to its invisibility). Social capital is significant because it reflects trust between individuals who enter into financial contracts or engage in economic activities, and increased trust may encourage more economic activity. The scholars on social capital explain that it is necessary to have a certain level of it in order to engage in economic activities, but it can also be created or enhanced through certain group arrangements.

A growing body of evidence indicates that social capital is essential for societies to prosper economically and for development to be sustainable. Dolfisma and Dannreuther 2003; Foley and Edwards 1997 (as cited by Claridge 2004) noted that for reasons of content and ideology, social capital has no clear and indisputable meaning. Some refer it as "social organisation features such as trust, norms, and networks that can improve society's efficiency by facilitating coordinated actions" (Putnam, Leonardi and Nanetti 1993), for others it's 'trust, concern for one's associates, and a willingness to live by community norms and punish those who do not' (Bowles and Gintis 2002) and for yet another it's "the ability of people to work together in groups and organisations for common purposes." ( Fukuyama 1995). ' The World Bank, 2009 defines 'social capital ...norms and networks that allow for collective action. It includes the institutions, relationships, and customs that shape the quality and quantity of social interactions in a society' (as cited by Langer, A., 2009).

Trust is especially important between parties in finance because financial transactions are always risky, and risk can be mitigated by confidence Von Pischke 1991 (as cited by Langer 2009). Individuals may lack sufficient trust in one another to enter into contracts, resulting in market failure. It may aid in mitigating some of the market failures that lead to the need for financial market intervention in the first place.

Academics emphasise the importance of social pressure in loan repayment in developing countries. According to a World Bank survey of over 1,000 MFIs worldwide, more than 60% used group-lending contracts, a method developed by the Grameen Bank (Khandker 1998). Since group-lending contracts are used in microcredit programmes, social capital is of particular important because in addition to utilising existing social capital in the community, the group-lending contract structure creates a powerful incentive for repayment by creating "social collateral" (Khandker 1998).

Microfinance programmes through the village meetings which are necessary for the conduct of financial activities, aim to reduce isolation, particularly among women, Hulme and Mosley 1996 (as cited by Langer 2009) and thereby boost participants' social capital by involving them in group borrowing initiatives. According to Rankin 2002 (as cited by Langer 2009), mere participation in the group borrowing process is often viewed as a proxy for empowerment, and is understood to generate large amounts of social capital,' and thus, in theory microfinance programmes, not only promotes the development of social capital, but also draw on and strengthens existing sources. Rankin explains how "solidarity" groups within microfinance programmes are expected to mobilise their existing networks and leverage their trust in their fellow group members.

### ***Microfinance and Women's Empowerment***

Women's empowerment is critical to socio-economic development as it is seen as one of the most important factors in increasing global development efforts (Gram, Morrison, & Skordis-Worrall 2019). In countries (which also includes South Asian developing economies) where women are less empowered than men, the economic and social consequences for women are negative (James-Hawkins et al. 2016). In the year 2000, 189 countries signed the Millennium Development Goals (MDGs), which aimed to promote gender equality and women's empowerment (United Nations 2000). In 2015, the United Nations named women's empowerment and gender equality the fifth of 17 Sustainable Development Goals. (General Assembly of the United Nations 2015) As a result, several researchers have worked to expand on the existing literature by emphasising the importance of women's empowerment for the overall economy (Klasen & Schüler 2011; Taylor & Pereznieto 2014; Lippman et al. 2016).

Since last three decades, microfinance has been regarded as a valuable tool for poverty alleviation and financial inclusion of the unbanked (Khamar 2016). Researchers and policymakers agree that financial assistance and poverty are inextricably linked and microfinance institutions assist poor people in developing countries (Hulme & Rutherford 2002; Gennaioli et al. 2013). Although, currently women account for 92 percent of borrowers in South Asia, the world's largest microfinance market (Khamar 2016); yet, 1.3 billion women worldwide are denied access to MFI services (Demirgüç-Kunt & Klapper 2012). More women should be involved in this process, as they can not only earn money by investing the loan in profitable activities, micro-businesses, but also, improve their lifestyle and status (Gram, Morrison & Skordis-Worrall 2019; Khan & Noreen 2012; Malik & Courtney 2011).

Previous researches yielded mixed results when it came to analysing the impact of microfinance on women's empowerment. It is not that, microfinance empowers all women, but majority of women do feel empowered (Cheston 2002). Microfinance gives

poor people access to productive capital, which, when combined with human capital gained through education and training, and social capital gained through community building, enables people to rise out of poverty. Gender inequality in obtaining finance is one of the most significant barriers to empowering women, be it in Sub-Saharan African countries or South East Asia (Aterido, Beck, and Lacovone 2011). Unmarried women are widely regarded as uncreditworthy and are viewed as lenders with limited human capital in developed countries, such as less business experience and education (Menzie et al. 2004), less collateral (Carter et al. 2003), and the most impoverished credit background (Chowdhury 2009). In this way, women are disproportionately affected by gender discrimination as a result of their socioeconomic and cultural background, and these barriers ultimately disempower women, which is one of the reasons why microfinance has been criticised (Maclean, 2019; Ahmad & Khan 2016; Hulme & Arun 2011)]

Despite previous criticism, microfinance is still regarded as a type of financing that provides a variety of social and economic benefits, particularly to women. It presents an extraordinary opportunity for microfinance institutions to act deliberately in order to empower poor women and reduce the potentially negative impacts that some women face (Cheston & Kuhn 2004). These programmes along with providing women and men with access to savings and credit, also reach millions of people around the world by bringing them together in organised groups on a regular basis. The MFIs have largely replaced commercial banks due to their unique business model, which is primarily based on social collateral (Khavul 2010). Micro-loans have also been shown by some researchers to have a positive impact, particularly on mobility, control, decision-making authority, and social empowerment (Klasen & Schüller 2011). Microfinance appears to have generated the belief that microfinance development could provide a solution to the problems associated with the development of rural financial markets (Patnaik 2012)

Rajendra and Raya (as cited by Das 2012) noted that SHGs provided greater psychological and social empowerment than the economic empowerment. The impact of SHG is palpable in terms of instilling confidence, courage, skill development, and empowerment. SHGs members move freely with their groups and leaders and this encourages them to participate enthusiastically in various social welfare activities. The SHG can assist in changing economic conditions, social status, decision-making, and increasing women's participation in outdoor activities (Singh & Kaur 2012) and the pattern of social interaction. With all of these changes, many members of society gain a new status and take on new roles in the community. SHGs in social change imply not only a change in the outer form of a community or society, but also a change in the social institutions and ideas of the people who live in that society. In other words, it also applies to changes in the material aspects of life as well as changes in people's ideas, values, and attitudes (Das 2012)

Access to credit and women's empowerment are inextricably linked. Women's participation in economic activities, raises their status in the household, thereby empowering them at the household and societal levels (Jones, Snelgrove, and Muckosy 2006). Previous research has found that financing women's business ventures is easier than providing welfare for their households (Morris & Barnes 2005; Chemin 2008; Mawa 2008). As a result, they advocate for the development of more targeted strategies

and programmes to promote self-sufficiency and women's empowerment. MFIs by meeting a latent demand in this regard, play an imperative role (Lippman et al. 2016). Based on the current state of microfinance and its role in women's empowerment, this study makes a significant effort to investigate the impact of women's participation in SHGs on their socio-economic status and social capital attainment.

### ***Socio- economic status and Social Capital***

Researches show that socio-economic status (SES) is correlated with social capital, and suggests that the social networks in disadvantaged populations, such as low-SES groups, typically offer fewer opportunities for life advancement.

Social capital, which is considered to shape social interaction, can facilitate coordination and cooperation, lower business costs and ultimately contributing to economic growth. However, little is known about how social capital is created in impoverished communities and whether it can empower women. Researches show that the weekly group meetings, (a usual requirement of MFIs for loan repayment) generate higher levels of social capital through repeated social interaction that endures after the loans are repaid. It is also observed that Members of weekly repayment groups had lower default rates on subsequent loans, but they did not exhibit higher levels of female empowerment (Field et.al 2016)

Poverty alleviation has received a great deal of attention, as has the consideration of social capital, which has been identified as a critical factor in poverty reduction (Woolcock & Narayan 2000; Mustafa, Khursheed, & Fatima 2018). Women's empowerment and confidence are primarily determined by their resources and ability to make social and economic decisions (Maclean 2019).

## **3. Methodology**

### **3.1 Subject of Study**

Convenience sampling method is used for the investigation. 500 questionnaires were distributed to various all women SHGs in state of Gujarat, Uttar Pradesh and Andhra Pradesh, with 453 questionnaires returned and 392 valid. The valid response rate is 78.4.

### **3.2 Research Instrument**

A self-designed self-reporting questionnaire based on the previous studies is applied. The dimensions; namely, age, education, education of parents, occupation prior to SHG membership, religion, cast, economic status, stay in the locality and tradition in Social/Political activities; relating to Socio-Economic status (SES) of the respondents are considered, to analyze their impact on social capital variables; namely, capability, neighborhood attachment, support and advice, community felling, awareness & participation, trust, links and groups and networks which are generally considered to explain the social capital.

### **3.3 Research Process**

The questionnaires were administrated with help of the personal contacts to various SHGs in the state of Gujarat, Uttar Pradesh and Andhra Pradesh, with unified instructions. And the questionnaires, with no time limitation, were collected from 2019 August to May 2021. The questionnaires were checked one by one with invalid ones eliminated. SPSS is used for statistical analysis. The Mann-Whitney U test, the Kruskal-

Wallis H test, and the Jonckheere Terpstra test have been applied judiciously to test hypotheses both before and after data where ever possible.

#### 3.4 Hypothesis

This paper proceeds with the hypotheses that SHG women's social capital scores do not differ significantly based on their socioeconomic status.

#### **4. Data Analysis and Discussion**

Some researchers believe that social capital increases with age, while others believe the contrary. We investigate how social capital changes as people age. Table 1A investigates the effect of age on social capital scores prior to and after SHG membership to determine whether there is a relationship between respondents' age before joining SHGs and their social capital stock at the time and after SHG membership to determine whether age remains a factor in social capital after SHG membership. Except for the SC trust variable, all H test significance values are less than 0.05. As a result, women's social capital was influenced by their age prior to joining a SHG. Only neighbourhood attachment, support and advice, community feeling, and groups and networks, according to the JT test, show a significant positive relationship with increasing age. The significance values of the H test after SHG membership are less than 0.05 for Capability, Community Feeling, Trust, and Groups & Networks. The JT test reveals a significant positive relationship between the respondent's age and ability, neighborhood attachment, trust, links, and groups, and networks. Table 1B examines total social capital scores in relation to age. Both indices have H test significance values less than 0.05. Because of the JT test's lower significance values, it is concluded that age had a positive influence on social capital scores prior to SHG enrollment. However, the H test significance values for both social capital indices after joining SHGs are less than 0.05. The JT test also reveals a significant positive relationship between the indices of the respondents and the ages of the members. As a result, there is statistically significant difference in Social Capital stock between respondents based on their age. It is concluded that the respondents' age, both before and after joining the SHGs, has a positive relationship with some social capital variables and the total social capital stock. People's social capital scores rise as they age. However, because study's sample excludes women over the working age, the trend in social capital stock towards later life is not revealed

Education is regarded as a critical component in the development of social capital because it fosters a large number of friendship networks and improves one's ability to create and maintain them. Table 2A depicts the impact of education on social capital before and after SHG enrolment, as well as the after enrolment scores of social capital variables in relation to respondents' education to determine whether education remains a factor in determining social capital. Prior to enrollment in the SHG, the significance values of the H test for all elements are less than 0.05. It demonstrates that the SC components differ significantly depending on the level of education of the respondents. The Jonckheere-Terpstra test measures the relationship between social capital formation and educational attainment. When using JT statistics, the significance values for Support and Advice, Community Feeling, Awareness & Participation, Links, and Groups & Networks are all less than 0.05. As a result, it has been discovered that these elements have a positive relationship with education. Other variables show no

significant trend. Despite this, the H test significance values for Capability, Social Outlook & Awareness, Trust, Links, and Groups & Networks are all less than 0.05 after joining SHG. As a result, the social capital variables of members continue to vary significantly depending on their level of education. The JT test shows a significant positive trend in capability, awareness, and participation, as well as accessibility to links, groups, and networks, as the member's educational attainment increases. Table 2B investigates the effect of education on social capital indices prior to and after SHG membership. Prior to joining the SHG, the significance values for both versions of the tests are less than 0.05 for both tests. Prior to SHG enrollment, both the Social Capital Indices and education have a positive relationship. Similarly, the H test significance values for both social capital scores are less than 0.05 after joining SHG. The JT test reveals a statistically significant positive trend in respondents' Social Capital Index (SCI) as a function of education. Before SHG enrolment, educated respondents had better support and advice, community feeling, social outlook and awareness, links and groups and networks than others. They now have increased capacity, awareness, and participation, as well as access to links, groups, and networks. The total scores show a positive trend both before and after education. As a result, education has been identified as an important factor in the formation of social capital. The effect of parental education on respondents' social capital indices was also investigated (the results are not shown in the paper) using the same techniques. The result shows that social capital scores are not positively influenced by their parents' education it could be because approximately 16% were illiterate, approximately 21% were literate and approximately 52% were educated upto 5<sup>th</sup> standard.

Employment status of respondents prior to joining SHGs and starting micro businesses is investigated as a factor influencing their social capital stock. Prior to joining the SHG, respondents' occupational status is compared to their social capital scores to see if there is a link between the two. According to table 3A, all H test significance values prior to SHG membership are less than 0.05. The occupational status of the respondents is discovered to be a factor influencing their social capital. People who are self-employed have the highest mean rank, while those who are unemployed have the lowest. Except for trust, the JT test demonstrates an increase in social capital with employment. The H test significance values for all variables are less than 0.05 after joining SHGs. The social capital variables of members differ significantly depending on their occupation prior to joining the group. The JT test also reveals a significant positive relationship between prior occupational status and the majority of social capital variables. The total social capital scores are compared to respondents' prior employment to see if there is a relationship. The results are shown in Table 3B. The H test significance values for both indices are less than 0.05 for before and after joining SHG. This shows that the respondents' occupations prior to joining a SHG had an effect on their Social Capital stock at the time. The JT test (before joining) is also significant at the 5% level for both indices thereby demonstrating that the social capital stock is increasing across all employment levels, from the lowest for unemployed to the highest for self-employed. the JT test (after joining) reveals a significant positive relationship between respondents' improved occupational status and their Social Capital Indices prior to joining SHGs.

Most social capital variables and both social capital indices differ significantly before and after SHG membership based on the respondents' occupational status prior to SHG membership. The JT test also reveals a positive relationship between the two variables. As a result, it is possible to conclude that the social capital of SHG women varies significantly depending on their previous employment. As a result, one's employment can have a significant impact on the formation of social capital.

Religion has an impact on how people live their lives. In the name of religion or caste, people are easily mobilised. The impact of religion on social capital variables is investigated in Table 4A. The Hindu religion is practiced by the majority of the respondents (72 percent). With the exception of neighbourhood attachment and trust, all significance values prior to joining SHG are less than .05, meaning that the religion has influences aspects of women's social capital such as capability, support and advice, community feeling, social outlook, linking networks, and affiliation with groups and networks. It is indicated that the members' social capital variables differ significantly based on their religious affiliation, even after SHG membership as the H test has a significance value of less than 0.05 for all variables except Trust. Table 4B compares total social capital scores prior and post SHG membership to respondents' religion. Both indices are found to have significance values less than 0.05. It reveals that prior to joining a SHG, women's social capital stock was influenced by their religious affiliation. The significance values of the H test for both social capital scores are less than 0.05 after joining SHGs. Respondents' religious affiliation has a significant impact on both social capital scores. Most social capital variables and total social capital scores vary with religion both before and after SHG membership, according to the findings. As a result, religion is found to have a significant impact on SHG women's social capital scores.

The social background is thought to be an important determinant of social capital. An attempt is made to elicit any relationship between respondents' social backgrounds and social capital stock. Table 5A examine social capital variables before and after SHG membership in relation to respondents' caste. The vast majority of respondents (73%) are from backward castes, including backward Hindus and Muslims, with another 7% belonging to Scheduled Castes. As a result, roughly 80% of those contacted are members of socially disadvantaged groups. The social capital variables prior to SHG membership are found to differ significantly depending on the respondents' social strata as the H test significance values for all of the components (prior to joining SHG ) were less than 0.05. The JT test also reveals an increasing trend in respondents' social capital variables (except capability) as their social standing in terms of caste rises. Even after joining SHG the social capital variables of members continues to differ significantly depending on their caste. The H test significance values for Capability, Social Outlook & Awareness, and Groups and Networks are less than 0.05. There is no significant difference in neighbourhood attachment, availability of support and advice, community feeling, or trust after SHG membership. The JT test reveals a significant positive relationship between social background and capability, social outlook and awareness, and membership in groups and networks. Table 5B compares total social capital scores to respondents' caste. The H test significance values for both indices prior to joining SHG are less than 0.05. The JT statistic is also significant at a 5% level. As a

result, the respondents' social strata had an effect on their Social Capital scores both before and after joining the SHG. The JT test shows an upward trend in social capital scores as one moves up the traditional social structure. Similarly, the H test significance values for both social capital scores are less than 0.05 after joining SHG. The JT test reveals a significant positive relationship between respondents' Social Capital Index and the improvement of their social background. The total social capital index, on the other hand, shows no discernible trend. Prior to SHG membership, respondents' social capital scores varied significantly by caste, but this difference was found to have decreased after SHG membership. Even today, however, variables like capability, social outlook and awareness, and membership in groups and networks are found to differ significantly by caste.

The economic status of a person can have a significant impact on his or her social capital. The present results of the U test for economic status ; Below Poverty Line (BPL), Above Poverty Line (APL) and social capital variables are shown in Table 6A. All variables have significance values greater than 0.05, with the exception of membership in Groups and Networks. It was discovered after enrolling in SHGs that respondents' economic status had no effect on their social capital formation. Those who live above the poverty line, on the other hand, have a significant advantage over those who live below the poverty line when it comes to joining groups and networks. However, the effect of economic status is negligible ( $r = 0.099$ ). The current total social capital scores in relation to economic status are shown in Table 6B. The significance levels are greater than 0.05. It is concluded that respondents' economic status has no effect on their social capital scores at this time.

Staying in one place for an extended period of time is thought to increase social capital. When women marry, they are practically transplanted to a different location. This could put a crimp in their social relationships. Table 7A investigates the social capital variables prior to SHG membership and now, in relation to their duration of stay in the local community prior to SHG membership to determine whether the amount of time respondents spent in their respective communities influenced their social capital scores. Except for capability, all H test significance values are greater than 0.05 prior to SHG membership. The amount of time spent in a location prior to joining a SHG has no bearing on the social capital variables of SHG women at the time. Though the duration of stay is found to affect the capability score in the H test, there is no positive relationship between the two in the JT test. All H test significance values are greater than 0.05, with the exception of Trust, links, groups, and networks. It has been discovered that the length of stay in the area affects trust, links, groups, and networks. According to the JT test, there is a significant positive relationship between the amount of time spent in the area and current community feelings and trust.

Table 7B compares total social capital scores to length of stay prior to SHG membership. Both indices have significance values greater than 0.05. It was determined that respondents' length of stay in their respective areas prior to joining SHGs had no bearing on their social capital stock at the time. Whereas the H test significance values for both social capital indices are currently less than 0.05. The JT test also reveals a statistically significant positive relationship between respondents' SCI and the amount of time spent in the area.

Respondents' social capital scores were unaffected by their length of stay in the area prior to joining a SHG. As of now, it has been discovered that community feeling, trust, and the Social Capital Index have a positive relationship with length of stay.

The respondents were asked if they had a tradition of participating in social or political activities at home, where they were raised or have lived. Approximately 38% claim to have such a tradition. Table 8A depicts the impact of tradition on social capital variables prior to SHG membership. The mean ranks in all SC components are significantly higher for those who claim to have a history of participating in social/political activities than for others, and the significance values for all components are less than 0.05. Tradition has a moderate effect on capability, neighbourhood attachment, support and advice, community feeling, and trust, but a low effect on social outlook and awareness, groups and networks, and links as before SHG membership. Except for trust, the significance values are less than 0.05. even after SHG enrollment, those who have a tradition of participating in social/political activities have higher scores in most social capital variables than those who do not have such a tradition. Tradition has a moderate influence on neighbourhood attachment but a low influence on other variables. Table 8B examines the total social capital scores in relation to tradition. The U test significance values for both indices are less than 0.05. Those with a history of social/political involvement had higher social capital scores in both indices than others. The r value indicates that the factor had a moderate effect on respondents' social capital scores prior to SHG membership. The significance levels are lower than 0.05. Even after SHG enrollment, respondents' social capital scores are still heavily influenced by tradition. It is discovered to have a moderate effect on the first version of the social capital index and a comparatively low effect on the second version. It is concluded that having some tradition in social/political activities at home helps to provide people with the infrastructure they need to develop their social capital. Even today, the effect of tradition persists in that those who have a history of participating in social or political activities are more likely to have higher social capital scores than others.

## **5. Conclusion**

On the basis of the above empirical evidences we conclude that by participating in SHGs, women members are able to secure and enhance social capital but this social capital is more in terms of cognitive dimensions like trust (interpersonal and reciprocity) , norms and values; moderate in network structure and civic engagement; and minimal in social network, particularly linking. It is observed that with a higher pre-membership socio-economic status, women accumulate more social capital after becoming the member of SHGs, but it may not be proportionate. Apart from the empirical evidences the analysis of literature suggests that this relationship between pre-membership socio-economic status and accumulation of social capital is highly influenced by cast and; family occupations and higher income. Higher castes making it easier for them to approach people from all walks of life and better family occupations and higher income facilitate their access to officials of banks, block offices and NGOs. The income of the SHG members has improved. But as is seen that majority of SHG members in the sample are from backward caste whether SHG participation will result in qualitative economic, social upward mobility of its members is of greater concern and needs continues

monitration, evaluation and analysis. Further we all know; in order to have meaningful growth and upward mobility; development has to be sustainable for decades. Development always means participation for all from society to better the lives of every section of society. SHG will work only if the remaining state economic machinery are opened up and made inclusive.

| Table-1A : Kruskal-Wallis H Test and JT test |                |     |                         |        |       |         |       |          |     |                        |        |       |         |       |
|----------------------------------------------|----------------|-----|-------------------------|--------|-------|---------|-------|----------|-----|------------------------|--------|-------|---------|-------|
| Age and Social Capital                       |                |     |                         |        |       |         |       |          |     |                        |        |       |         |       |
| Variables                                    |                |     | Before joining the SHGs |        |       |         |       |          |     | After joining the SHGs |        |       |         |       |
|                                              | Age            | N   | Mean Rank               | H      | Sig.  | JT stat | Sig.  | Age      | N   | Mean Rank              | H      | Sig.  | JT stat | Sig.  |
| Trust                                        | Up to 25 Years | 35  | 195.91                  | 8.051  | 0.09  | 1.888   | 0.059 | Up to 30 | 14  | 155.21                 | 26.482 | 0     | 3.323   | 0.001 |
|                                              | 26-30 Years    | 108 | 178.67                  |        |       |         |       | 31-40    | 185 | 179.95                 |        |       |         |       |
|                                              | 31-35 Years    | 129 | 202.05                  |        |       |         |       | 41-50    | 134 | 212.42                 |        |       |         |       |
|                                              | 36-40 Years    | 56  | 185.14                  |        |       |         |       | 51-60    | 50  | 245.94                 |        |       |         |       |
|                                              | Above 40       | 64  | 225.66                  |        |       |         |       | Above 60 | 9   | 89.28                  |        |       |         |       |
| Linking Networks                             | Up to 25 Years | 35  | 204.59                  | 14.119 | 0.007 | 1.725   | 0.085 | Up to 30 | 14  | 169.82                 | 6.381  | 0.172 | 1.845   | 0.065 |
|                                              | 26-30 Years    | 108 | 169.71                  |        |       |         |       | 31-40    | 185 | 191.79                 |        |       |         |       |
|                                              | 31-35 Years    | 129 | 213.35                  |        |       |         |       | 41-50    | 134 | 191.41                 |        |       |         |       |
|                                              | 36-40 Years    | 56  | 176.27                  |        |       |         |       | 51-60    | 50  | 230.15                 |        |       |         |       |
|                                              | Above 40       | 64  | 221.03                  |        |       |         |       | Above 60 | 9   | 223.78                 |        |       |         |       |
| Groups & Networks                            | Up to 25 Years | 35  | 199.53                  | 19.441 | 0.001 | 2.331   | 0.02  | Up to 30 | 14  | 130.36                 | 19.501 | 0.001 | 3.762   | 0     |
|                                              | 26-30 Years    | 108 | 166                     |        |       |         |       | 31-40    | 185 | 183.8                  |        |       |         |       |
|                                              | 31-35 Years    | 129 | 214.13                  |        |       |         |       | 41-50    | 134 | 200.2                  |        |       |         |       |
|                                              | 36-40 Years    | 56  | 174.66                  |        |       |         |       | 51-60    | 50  | 252.43                 |        |       |         |       |
|                                              | Above 40       | 64  | 229.88                  |        |       |         |       | Above 60 | 9   | 194.72                 |        |       |         |       |
| Community Feeling                            | Up to 25 Years | 35  | 181.77                  | 16.489 | 0.002 | 3.023   | 0.003 | Up to 30 | 14  | 186.5                  | 13.831 | 0.008 | 3.557   | 0     |
|                                              | 26-30 Years    | 108 | 167.93                  |        |       |         |       | 31-40    | 185 | 175.95                 |        |       |         |       |
|                                              | 31-35 Years    | 129 | 212.6                   |        |       |         |       | 41-50    | 134 | 212.86                 |        |       |         |       |
|                                              | 36-40 Years    | 56  | 185.76                  |        |       |         |       | 51-60    | 50  | 223.34                 |        |       |         |       |
|                                              | Above 40       | 64  | 229.71                  |        |       |         |       | Above 60 | 9   | 241.89                 |        |       |         |       |
| Awareness and Participation                  | Up to 25 Years | 35  | 221.33                  | 13.904 | 0.008 | 0.795   | 0.426 | Up to 30 | 14  | 222.25                 | 5.144  | 0.273 | 1.069   | 0.285 |
|                                              | 26-30 Years    | 108 | 171.97                  |        |       |         |       | 31-40    | 185 | 186.83                 |        |       |         |       |
|                                              | 31-35 Years    | 129 | 212.45                  |        |       |         |       | 41-50    | 134 | 203.61                 |        |       |         |       |
|                                              | 36-40 Years    | 56  | 171.69                  |        |       |         |       | 51-60    | 50  | 195.38                 |        |       |         |       |
|                                              | Above 40       | 64  | 213.88                  |        |       |         |       | Above 60 | 9   | 255.5                  |        |       |         |       |
| Neighbourhood/ Locality attach ments         | Up to 25 Years | 35  | 154.16                  | 23.357 | 0.001 | 3.861   | 0     | Up to 30 | 14  | 210.04                 | 7.789  | 0.1   | 2.029   | 0.042 |
|                                              | 26-30 Years    | 108 | 166.5                   |        |       |         |       | 31-40    | 185 | 180.34                 |        |       |         |       |
|                                              | 31-35 Years    | 129 | 221                     |        |       |         |       | 41-50    | 134 | 214.03                 |        |       |         |       |
|                                              | 36-40 Years    | 56  | 195.8                   |        |       |         |       | 51-60    | 50  | 202.12                 |        |       |         |       |
|                                              | Above 40       | 64  | 221.5                   |        |       |         |       | Above 60 | 9   | 215.44                 |        |       |         |       |
| Availability of Support and Advice           | Up to 25 Years | 35  | 190.37                  | 14.116 | 0.007 | 1.969   | 0.049 | Up to 30 | 14  | 189.32                 | 3.245  | 0.518 | 1.589   | 0.112 |
|                                              | 26-30 Years    | 108 | 167.84                  |        |       |         |       | 31-40    | 185 | 188.76                 |        |       |         |       |
|                                              | 31-35 Years    | 129 | 220.09                  |        |       |         |       | 41-50    | 134 | 205.4                  |        |       |         |       |
|                                              | 36-40 Years    | 56  | 188.45                  |        |       |         |       | 51-60    | 50  | 202.11                 |        |       |         |       |
|                                              | Above 40       | 64  | 207.71                  |        |       |         |       | Above 60 | 9   | 203.17                 |        |       |         |       |
| Capability                                   | Up to 25 Years | 35  | 195.11                  | 10.13  | 0.038 | 0.724   | 0.469 | Up to 30 | 14  | 229.43                 | 13.764 | 0.008 | 2.377   | 0.017 |
|                                              | 26-30 Years    | 108 | 178.65                  |        |       |         |       | 31-40    | 185 | 183.42                 |        |       |         |       |
|                                              | 31-35 Years    | 129 | 218.6                   |        |       |         |       | 41-50    | 134 | 194.1                  |        |       |         |       |
|                                              | 36-40 Years    | 56  | 174.99                  |        |       |         |       | 51-60    | 50  | 236.46                 |        |       |         |       |
|                                              | Above 40       | 64  | 201.65                  |        |       |         |       | Above 60 | 9   | 227.89                 |        |       |         |       |

Source: Calculated

| Table-1B : Kruskal-Wallis H Test and JT test |                |                         |           |        |       |         |       |                        |     |           |        |       |         |       |
|----------------------------------------------|----------------|-------------------------|-----------|--------|-------|---------|-------|------------------------|-----|-----------|--------|-------|---------|-------|
| Age and Social Capital Scores                |                | Before joining the SHGs |           |        |       |         |       | After joining the SHGs |     |           |        |       |         |       |
|                                              | Age            | N                       | Mean Rank | H      | Sig.  | JT stat | Sig.  | Age                    | N   | Mean Rank | H      | Sig.  | JT stat | Sig.  |
| TSCI_                                        | Up to 25 Years | 35                      | 191.67    | 15.476 | 0.004 | 2.104   | 0.035 | Up to 30               | 14  | 162.61    | 11.571 | 0.021 | 3.352   | 0.001 |
|                                              | 26-30 Years    | 108                     | 168.13    |        |       |         |       | 31-40                  | 185 | 181.35    |        |       |         |       |
|                                              | 31-35 Years    | 129                     | 218.54    |        |       |         |       | 41-50                  | 134 | 204.8     |        |       |         |       |
|                                              | 36-40 Years    | 56                      | 178.61    |        |       |         |       | 51-60                  | 50  | 235.12    |        |       |         |       |
|                                              | 41 and Above   | 64                      | 218.24    |        |       |         |       | Above 60               | 9   | 222.5     |        |       |         |       |
| SCI                                          | Up to 25 Years | 35                      | 195.56    | 15.83  | 0.003 | 2.277   | 0.023 | Up to 30               | 14  | 124.36    | 26.97  | 0     | 4.17    | 0     |
|                                              | 26-30 Years    | 108                     | 169.42    |        |       |         |       | 31-40                  | 185 | 180.13    |        |       |         |       |
|                                              | 31-35 Years    | 129                     | 211.2     |        |       |         |       | 41-50                  | 134 | 207.49    |        |       |         |       |
|                                              | 36-40 Years    | 56                      | 176.84    |        |       |         |       | 51-60                  | 50  | 257.03    |        |       |         |       |
|                                              | 41 and Above   | 64                      | 230.28    |        |       |         |       | Above 60               | 9   | 145.39    |        |       |         |       |

Source: Calculated

| Table-2A : Kruskal-Wallis H Test and JT test |              |     |                         |              |       |              |       |                        |              |       |              |       |
|----------------------------------------------|--------------|-----|-------------------------|--------------|-------|--------------|-------|------------------------|--------------|-------|--------------|-------|
| Education and Social Capital                 |              |     |                         |              |       |              |       |                        |              |       |              |       |
| Variables                                    |              |     | Before joining the SHGs |              |       |              |       | After joining the SHGs |              |       |              |       |
|                                              | Education    | N   | Mean Rank               | H/Chi_Square | Sig.  | JT statistic | Sig.  | Mean Rank              | H/Chi_Square | Sig.  | JT statistic | Sig.  |
| Trust                                        | UP school    | 44  | 223.45                  | 17.808       | 0     | 1.908        | 0.056 | 203.5                  | 0.402        | 0     | -0.381       | 0.703 |
|                                              | High school  | 235 | 178.67                  |              |       |              |       | 195.7                  |              |       |              |       |
|                                              | PDC/HSS      | 76  | 210.89                  |              |       |              |       | 198.8                  |              |       |              |       |
|                                              | Degree/above | 37  | 248.14                  |              |       |              |       | 188.5                  |              |       |              |       |
| Linking Networks                             | UP school    | 44  | 196.2                   | 11.339       | 0.01  | 2.589        | 0.01  | 160.48                 | 25.943       | 0     | 4.888        | 0     |
|                                              | High school  | 235 | 183.35                  |              |       |              |       | 181.98                 |              |       |              |       |
|                                              | PDC/HSS      | 76  | 215.39                  |              |       |              |       | 242.85                 |              |       |              |       |
|                                              | Degree/above | 37  | 241.55                  |              |       |              |       | 236.38                 |              |       |              |       |
| Groups & Networks                            | UP school    | 44  | 182.81                  | 19.765       | 0     | 3.802        | 0     | 160.58                 | 24.196       | 0     | 4.738        | 0     |
|                                              | High school  | 235 | 180.38                  |              |       |              |       | 182.63                 |              |       |              |       |
|                                              | PDC/HSS      | 76  | 238.89                  |              |       |              |       | 239.86                 |              |       |              |       |
|                                              | Degree/above | 37  | 228.09                  |              |       |              |       | 238.27                 |              |       |              |       |
| Community Feeling                            | UP school    | 44  | 213.45                  | 16.832       | 0.001 | 2.482        | 0.013 | 197.68                 | 3.507        | 0.32  | 1.323        | 0.186 |
|                                              | High school  | 235 | 178.22                  |              |       |              |       | 190.2                  |              |       |              |       |
|                                              | PDC/HSS      | 76  | 222.09                  |              |       |              |       | 200.94                 |              |       |              |       |
|                                              | Degree/above | 37  | 239.88                  |              |       |              |       | 226                    |              |       |              |       |
| Awareness and Participation                  | UP school    | 44  | 193.56                  | 31.995       | 0     | 4.605        | 0     | 161.6                  | 19.072       | 0     | 4.248        | 0     |
|                                              | High school  | 235 | 173.79                  |              |       |              |       | 185.19                 |              |       |              |       |
|                                              | PDC/HSS      | 76  | 237.55                  |              |       |              |       | 235.4                  |              |       |              |       |
|                                              | Degree/above | 37  | 259.93                  |              |       |              |       | 229.93                 |              |       |              |       |
| Neighbourhood/ Locality attachments          | UP school    | 44  | 236.3                   | 11.164       | 0.011 | 0.151        | 0.88  | 202.45                 | 4.945        | 0.176 | 1.303        | 0.193 |
|                                              | High school  | 235 | 182.84                  |              |       |              |       | 188.98                 |              |       |              |       |
|                                              | PDC/HSS      | 76  | 208.46                  |              |       |              |       | 199.13                 |              |       |              |       |
|                                              | Degree/above | 37  | 211.38                  |              |       |              |       | 231.8                  |              |       |              |       |
| Availability of Support and Advice           | UP school    | 44  | 233.1                   | 31.847       | 0     | 2.581        | 0.01  | 210.85                 | 6.497        | 0.09  | 0.964        | 0.335 |
|                                              | High school  | 235 | 170.77                  |              |       |              |       | 188.2                  |              |       |              |       |
|                                              | PDC/HSS      | 76  | 232.33                  |              |       |              |       | 202.25                 |              |       |              |       |
|                                              | Degree/above | 37  | 242.81                  |              |       |              |       | 220.35                 |              |       |              |       |
| Capability                                   | UP school    | 44  | 223.88                  | 13.831       | 0.003 | 1.581        | 0.114 | 169.95                 | 24.556       | 0     | 4.649        | 0     |
|                                              | High school  | 235 | 179.84                  |              |       |              |       | 184.64                 |              |       |              |       |
|                                              | PDC/HSS      | 76  | 214.72                  |              |       |              |       | 218.28                 |              |       |              |       |
|                                              | Degree/above | 37  | 232.31                  |              |       |              |       | 258.68                 |              |       |              |       |

Source: Calculated

| Table-2B : Kruskal-Wallis H Test and JT test |              |     |                         |              |       |         |       |                        |              |       |         |       |
|----------------------------------------------|--------------|-----|-------------------------|--------------|-------|---------|-------|------------------------|--------------|-------|---------|-------|
| Education and Social Capital scores          |              |     | Before joining the SHGs |              |       |         |       | After joining the SHGs |              |       |         |       |
|                                              | Education    | N   | Mean Rank               | H/Chi_Square | Sig.  | JT Stat | Sig.  | Mean Rank              | H/Chi_Square | Sig.  | JT Stat | Sig.  |
| TSCI_                                        | UP school    | 44  | 215.32                  | 20.857       | 0     | 2.843   | 0.004 | 174.56                 | 17.95        | 0     | 4.009   | 0     |
|                                              | High school  | 235 | 176.02                  |              |       |         |       | 182.53                 |              |       |         |       |
|                                              | PDC/HSS      | 76  | 224.31                  |              |       |         |       | 230.3                  |              |       |         |       |
|                                              | Degree/above | 37  | 247.09                  |              |       |         |       | 241.92                 |              |       |         |       |
| SCI                                          | UP school    | 44  | 205.08                  | 17.648       | 0.001 | 2.915   | 0.004 | 174.49                 | 10.777       | 0.013 | 3.129   | 0.002 |
|                                              | High school  | 235 | 178.38                  |              |       |         |       | 186.74                 |              |       |         |       |
|                                              | PDC/HSS      | 76  | 223.86                  |              |       |         |       | 224.72                 |              |       |         |       |
|                                              | Degree/above | 37  | 245.18                  |              |       |         |       | 226.7                  |              |       |         |       |

Source: Calculated

| Table-3A : Kruskal-Wallis H Test and JT test |                    |     |                         |              |      |              |       |                        |              |       |              |       |
|----------------------------------------------|--------------------|-----|-------------------------|--------------|------|--------------|-------|------------------------|--------------|-------|--------------|-------|
| Prior Occupation and Social Capital          |                    |     |                         |              |      |              |       |                        |              |       |              |       |
| Variables                                    | Occupation         | N   | Before joining the SHGs |              |      |              |       | After joining the SHGs |              |       |              |       |
|                                              |                    |     | Mean Rank               | H/Chi_Square | Sig. | JT statistic | Sig.  | Mean Rank              | H/Chi_Square | Sig.  | JT statistic | Sig.  |
| Trust                                        | Unemployed         | 14  | 120.18                  | 38.42        | 0    | 1.872        | 0.061 | 151.25                 | 24.915       | 0     | 3.885        | 0     |
|                                              | Housewife          | 203 | 186.15                  |              |      |              |       | 174.7                  |              |       |              |       |
|                                              | Labourer           | 99  | 184.7                   |              |      |              |       | 221.28                 |              |       |              |       |
|                                              | Pvt/temp. employee | 54  | 229.06                  |              |      |              |       | 216.26                 |              |       |              |       |
|                                              | Self employed      | 22  | 313.77                  |              |      |              |       | 266.39                 |              |       |              |       |
| Linking Networks                             | Unemployed         | 14  | 109.14                  | 66.997       | 0    | 5.293        | 0     | 135                    | 63.059       | 0     | 6.169        | 0     |
|                                              | Housewife          | 203 | 168.09                  |              |      |              |       | 161.05                 |              |       |              |       |
|                                              | Labourer           | 99  | 216.53                  |              |      |              |       | 228.32                 |              |       |              |       |
|                                              | Pvt/temp. employee | 54  | 229.33                  |              |      |              |       | 241.11                 |              |       |              |       |
|                                              | Self employed      | 22  | 343.5                   |              |      |              |       | 310                    |              |       |              |       |
| Groups & Networks                            | Unemployed         | 14  | 91.39                   | 53.767       | 0    | 3.687        | 0     | 136.64                 | 41.569       | 0     | 4.16         | 0     |
|                                              | Housewife          | 203 | 172.75                  |              |      |              |       | 172.2                  |              |       |              |       |
|                                              | Labourer           | 99  | 209.32                  |              |      |              |       | 208.92                 |              |       |              |       |
|                                              | Pvt/temp. employee | 54  | 247.42                  |              |      |              |       | 236.24                 |              |       |              |       |
|                                              | Self employed      | 22  | 299.89                  |              |      |              |       | 305.41                 |              |       |              |       |
| Community Feeling                            | Unemployed         | 14  | 102.79                  | 51.329       | 0    | 3.462        | 0.001 | 188.43                 | 24.504       | 0     | 4.329        | 0     |
|                                              | Housewife          | 203 | 175.98                  |              |      |              |       | 172.3                  |              |       |              |       |
|                                              | Labourer           | 99  | 201.63                  |              |      |              |       | 216.84                 |              |       |              |       |
|                                              | Pvt/temp. employee | 54  | 238.06                  |              |      |              |       | 225.48                 |              |       |              |       |
|                                              | Self employed      | 22  | 320.41                  |              |      |              |       | 262.23                 |              |       |              |       |
| Awareness and Participation                  | Unemployed         | 14  | 140.57                  | 44.404       | 0    | 4.297        | 0     | 193.5                  | 34.001       | 0     | 4.737        | 0     |
|                                              | Housewife          | 203 | 173.32                  |              |      |              |       | 170.84                 |              |       |              |       |
|                                              | Labourer           | 99  | 206.86                  |              |      |              |       | 209.02                 |              |       |              |       |
|                                              | Pvt/temp. employee | 54  | 229.1                   |              |      |              |       | 230.33                 |              |       |              |       |
|                                              | Self employed      | 22  | 319.39                  |              |      |              |       | 295.77                 |              |       |              |       |
| Neighbourhood/Local attachments              | Unemployed         | 14  | 117.14                  | 55.806       | 0    | 2.412        | 0.016 | 215.46                 | 46.656       | 0     | 5.827        | 0     |
|                                              | Housewife          | 203 | 178.52                  |              |      |              |       | 161.89                 |              |       |              |       |
|                                              | Labourer           | 99  | 183.37                  |              |      |              |       | 218.04                 |              |       |              |       |
|                                              | Pvt/temp. employee | 54  | 269.4                   |              |      |              |       | 252.65                 |              |       |              |       |
|                                              | Self employed      | 22  | 293.05                  |              |      |              |       | 269.05                 |              |       |              |       |
| Availability of Support and Advice           | Unemployed         | 14  | 119.96                  | 55.292       | 0    | 3.764        | 0     | 143.29                 | 14.58        | 0.006 | 1.631        | 0.103 |
|                                              | Housewife          | 203 | 173.31                  |              |      |              |       | 189.96                 |              |       |              |       |
|                                              | Labourer           | 99  | 196.64                  |              |      |              |       | 203.32                 |              |       |              |       |
|                                              | Pvt/temp. employee | 54  | 255.77                  |              |      |              |       | 202.01                 |              |       |              |       |
|                                              | Self employed      | 22  | 313.05                  |              |      |              |       | 246.5                  |              |       |              |       |
| Capability                                   | Unemployed         | 14  | 122.57                  | 63.422       | 0    | 3.458        | 0.001 | 128.11                 | 49.127       | 0     | 5.146        | 0     |
|                                              | Housewife          | 203 | 170.83                  |              |      |              |       | 168.83                 |              |       |              |       |
|                                              | Labourer           | 99  | 192.99                  |              |      |              |       | 228.51                 |              |       |              |       |
|                                              | Pvt/temp. employee | 54  | 282.85                  |              |      |              |       | 233.38                 |              |       |              |       |
|                                              | Self employed      | 22  | 284.2                   |              |      |              |       | 260.73                 |              |       |              |       |

Source: Calculated

| Table-3B : Kruskal-Wallis H Test and JT test |                    |     |                         |              |      |         |       |                        |              |      |         |      |
|----------------------------------------------|--------------------|-----|-------------------------|--------------|------|---------|-------|------------------------|--------------|------|---------|------|
| Prior Occupation and Social Capital scores   |                    |     | Before joining the SHGs |              |      |         |       | After joining the SHGs |              |      |         |      |
|                                              | Education          | N   | Mean Rank               | H/Chi_Square | Sig. | JT Stat | Sig.  | Mean Rank              | H/Chi_Square | Sig. | JT Stat | Sig. |
| TSCI                                         | Unemployed         | 14  | 102.86                  | 72.583       | 0    | 4.138   | 0     | 156.71                 | 63.395       | 0    | 6.177   | 0    |
|                                              | Housewife          | 203 | 169.23                  |              |      |         |       | 160.71                 |              |      |         |      |
|                                              | Labourer           | 99  | 197.95                  |              |      |         |       | 219.94                 |              |      |         |      |
|                                              | Pvt/temp. employee | 54  | 265.86                  |              |      |         |       | 248.36                 |              |      |         |      |
|                                              | Self employed      | 22  | 330.95                  |              |      |         |       | 319.23                 |              |      |         |      |
| SCI                                          | Unemployed         | 14  | 100                     | 52.172       | 0    | 3.094   | 0.002 | 139.54                 | 38.808       | 0    | 4.231   | 0    |
|                                              | Housewife          | 203 | 176.51                  |              |      |         |       | 172.36                 |              |      |         |      |
|                                              | Labourer           | 99  | 196.57                  |              |      |         |       | 211.38                 |              |      |         |      |
|                                              | Pvt/temp. employee | 54  | 248.25                  |              |      |         |       | 231.82                 |              |      |         |      |
|                                              | Self employed      | 22  | 315                     |              |      |         |       | 301.8                  |              |      |         |      |

Source: Calculated

| Table-4A : Kruskal-Wallis H Test   |           |     |                         |              |       |                        |              |       |
|------------------------------------|-----------|-----|-------------------------|--------------|-------|------------------------|--------------|-------|
| Religion and Social Capital        |           |     |                         |              |       |                        |              |       |
| Variables                          |           |     | Before joining the SHGs |              |       | After joining the SHGs |              |       |
|                                    | Religion  | N   | Mean Rank               | H/Chi_Square | Sig.  | Mean Rank              | H/Chi_Square | Sig.  |
| Trust                              | Hindu     | 285 | 200.98                  | 6.44         | 0.067 | 189.56                 | 5.765        | 0.056 |
|                                    | Muslim    | 53  | 160.87                  |              |       | 200.36                 |              |       |
|                                    | Christian | 54  | 207.82                  |              |       | 229.34                 |              |       |
| Linking Networks                   | Hindu     | 285 | 199.07                  | 11.07        | 0.001 | 199.35                 | 22.619       | 0     |
|                                    | Muslim    | 53  | 154.12                  |              |       | 137.43                 |              |       |
|                                    | Christian | 54  | 224.52                  |              |       | 239.41                 |              |       |
| Groups & Networks                  | Hindu     | 285 | 190.58                  | 18.904       | 0     | 193.29                 | 22.619       | 0     |
|                                    | Muslim    | 53  | 169.08                  |              |       | 141.52                 |              |       |
|                                    | Christian | 54  | 254.63                  |              |       | 267.41                 |              |       |
| Community Feeling                  | Hindu     | 285 | 203.22                  | 12.795       | 0.002 | 207.61                 | 11.702       | 0.003 |
|                                    | Muslim    | 53  | 145.81                  |              |       | 154.96                 |              |       |
|                                    | Christian | 54  | 210.79                  |              |       | 178.65                 |              |       |
| Awareness and Participation        | Hindu     | 285 | 194.22                  | 16.992       | 0.04  | 195.57                 | 10.551       | 0.005 |
|                                    | Muslim    | 53  | 158.26                  |              |       | 163.53                 |              |       |
|                                    | Christian | 54  | 246.07                  |              |       | 233.75                 |              |       |
| Neighbourhood/Locality attachments | Hindu     | 285 | 204.23                  | 5.406        | 0.067 | 213.25                 | 24.064       | 0     |
|                                    | Muslim    | 53  | 171.76                  |              |       | 159.68                 |              |       |
|                                    | Christian | 54  | 179.97                  |              |       | 144.25                 |              |       |
| Availability of Support and Advice | Hindu     | 285 | 199.22                  | 6.445        | 0.04  | 208.91                 | 26.744       | 0     |
|                                    | Muslim    | 53  | 163.16                  |              |       | 143.9                  |              |       |
|                                    | Christian | 54  | 214.86                  |              |       | 182.62                 |              |       |
| Capability                         | Hindu     | 285 | 208.61                  | 13.738       | 0.001 | 198.36                 | 24.675       | 0     |
|                                    | Muslim    | 53  | 151.65                  |              |       | 143.66                 |              |       |
|                                    | Christian | 54  | 176.63                  |              |       | 238.53                 |              |       |

Source: Calculated

| Table-4B : Kruskal-Wallis H Test   |           |     |                         |              |       |                        |              |      |
|------------------------------------|-----------|-----|-------------------------|--------------|-------|------------------------|--------------|------|
| Religion and Social Capital scores |           |     | Before joining the SHGs |              |       | After joining the SHGs |              |      |
|                                    | Religion  | N   | Mean Rank               | H/Chi_Square | Sig.  | Mean Rank              | H/Chi_Square | Sig. |
| TSCI_                              | Hindu     | 285 | 201.71                  | 10.915       | 0.004 | 201.53                 | 21.027       | 0    |
|                                    | Muslim    | 53  | 150                     |              |       | 134.97                 |              |      |
|                                    | Christian | 54  | 214.62                  |              |       | 230.34                 |              |      |
| SCI                                | Hindu     | 285 | 196.48                  | 11.458       | 0.003 | 190.68                 | 27.133       | 0    |
|                                    | Muslim    | 53  | 159.26                  |              |       | 157.5                  |              |      |
|                                    | Christian | 54  | 233.16                  |              |       | 265.51                 |              |      |

Source: Calculated

| Table-5A : Kruskal-Wallis H Test and JT test |                 |     |                         |              |       |          |       |                        |              |       |          |       |
|----------------------------------------------|-----------------|-----|-------------------------|--------------|-------|----------|-------|------------------------|--------------|-------|----------|-------|
| Caste and Social Capital                     |                 |     |                         |              |       |          |       |                        |              |       |          |       |
| Variables                                    | Caste           | N   | Before joining the SHGs |              |       |          |       | After joining the SHGs |              |       |          |       |
|                                              |                 |     | Mean Rank               | H/Chi_Square | Sig.  | JT stats | Sig.  | Mean Rank              | H/Chi_Square | Sig.  | JT stats | Sig.  |
| Trust                                        | SC/ST           | 29  | 133.74                  | 23.246       | 0     | 4.774    | 0     | 192.17                 | 1.893        | 0.388 | 1.212    | 0.225 |
|                                              | Backward castes | 288 | 190.63                  |              |       |          |       | 192.76                 |              |       |          |       |
|                                              | Forward castes  | 75  | 243.32                  |              |       |          |       | 212.55                 |              |       |          |       |
| Linking Networks                             | SC/ST           | 29  | 160.09                  | 15.526       | 0     | 3.881    | 0     | 207.55                 | 6.413        | 0.04  | 1.665    | 0.096 |
|                                              | Backward castes | 288 | 188.9                   |              |       |          |       | 188.16                 |              |       |          |       |
|                                              | Forward castes  | 75  | 239.78                  |              |       |          |       | 224.24                 |              |       |          |       |
| Groups & Networks                            | SC/ST           | 29  | 178.5                   | 6.502        | 0.039 | 2.502    | 0.012 | 190.38                 | 20.013       | 0     | 3.784    | 0     |
|                                              | Backward castes | 288 | 190.86                  |              |       |          |       | 183.47                 |              |       |          |       |
|                                              | Forward castes  | 75  | 225.1                   |              |       |          |       | 248.9                  |              |       |          |       |
| Community Feeling                            | SC/ST           | 29  | 163.26                  | 10.4         | 0.006 | 3.14     | 0.002 | 240.59                 | 5.174        | 0.075 | -1.65    | 0.099 |
|                                              | Backward castes | 288 | 190.88                  |              |       |          |       | 194.37                 |              |       |          |       |
|                                              | Forward castes  | 75  | 230.94                  |              |       |          |       | 187.62                 |              |       |          |       |
| Awareness and Participation                  | SC/ST           | 29  | 171.66                  | 18.468       | 0     | 4.026    | 0     | 199.76                 | 14.389       | 0.001 | 2.926    | 0.003 |
|                                              | Backward castes | 288 | 186.19                  |              |       |          |       | 184.85                 |              |       |          |       |
|                                              | Forward castes  | 75  | 245.7                   |              |       |          |       | 239.97                 |              |       |          |       |
| Neighbourhood/Local<br>ity attachments       | SC/ST           | 29  | 144.72                  | 8.366        | 0.015 | 2.467    | 0.014 | 197.21                 | 1.957        | 0.376 | -1.14    | 0.256 |
|                                              | Backward castes | 288 | 197.31                  |              |       |          |       | 200.62                 |              |       |          |       |
|                                              | Forward castes  | 75  | 213.41                  |              |       |          |       | 180.41                 |              |       |          |       |
| Availability of<br>Support and Advice        | SC/ST           | 29  | 150.55                  | 9.54         | 0.008 | 3.041    | 0.002 | 217.72                 | 2.072        | 0.355 | -1.16    | 0.248 |
|                                              | Backward castes | 288 | 194.11                  |              |       |          |       | 195.83                 |              |       |          |       |
|                                              | Forward castes  | 75  | 223.43                  |              |       |          |       | 190.87                 |              |       |          |       |
| Capability                                   | SC/ST           | 29  | 143.47                  | 7.267        | 0.026 | 1.816    | 0.069 | 185.17                 | 13.26        | 0.001 | 3.282    | 0.001 |
|                                              | Backward castes | 288 | 199.64                  |              |       |          |       | 187.85                 |              |       |          |       |
|                                              | Forward castes  | 75  | 204.95                  |              |       |          |       | 234.1                  |              |       |          |       |

Source : Calculated

| Table-5B : Kruskal-Wallis H Test and JT test |                 |     |                         |              |       |          |      |                        |              |       |          |       |
|----------------------------------------------|-----------------|-----|-------------------------|--------------|-------|----------|------|------------------------|--------------|-------|----------|-------|
| Caste and Social Capital scores              |                 |     |                         |              |       |          |      |                        |              |       |          |       |
|                                              | Caste           | N   | Before joining the SHGs |              |       |          |      | After joining the SHGs |              |       |          |       |
|                                              |                 |     | Mean Rank               | H/Chi_Square | Sig.  | JT stats | Sig. | Mean Rank              | H/Chi_Square | Sig.  | JT stats | Sig.  |
| TSCI_                                        | Sc/St           | 29  | 143.33                  | 14.73        | 0.001 | 3.801    | 0    | 205.09                 | 7.329        | 0.026 | 1.915    | 0.055 |
|                                              | Backward castes | 288 | 192.26                  |              |       |          |      | 187.7                  |              |       |          |       |
|                                              | Forward castes  | 75  | 233.35                  |              |       |          |      | 226.96                 |              |       |          |       |
| SCI                                          | Sc/St           | 29  | 144.14                  | 16.532       | 0     | 4.074    | 0    | 190.86                 | 14.985       | 0.001 | 3.286    | 0.001 |
|                                              | Backward castes | 288 | 191.22                  |              |       |          |      | 185.25                 |              |       |          |       |
|                                              | Forward castes  | 75  | 237.03                  |              |       |          |      | 241.89                 |              |       |          |       |

Source: Calculated

| Table-6A : Mann-Whitney U test                              |                           |     |           |         |        |       |
|-------------------------------------------------------------|---------------------------|-----|-----------|---------|--------|-------|
| Economic Status and Social Capital Variables as at present. |                           |     |           |         |        |       |
| Variables                                                   | Economic Status of Member | N   | Mean Rank | U       | Z      | Sig.  |
| Trust                                                       | BPL                       | 197 | 199.96    | 18526.5 | -0.612 | 0.54  |
|                                                             | APL                       | 195 | 193.01    |         |        |       |
| Linking Networks                                            | BPL                       | 197 | 189.73    | 17873.5 | -1.197 | 0.231 |
|                                                             | APL                       | 195 | 203.34    |         |        |       |
| Groups & Networks                                           | BPL                       | 197 | 185.33    | 17007   | -1.966 | 0.049 |
|                                                             | APL                       | 195 | 207.78    |         |        |       |
| Community Feeling                                           | BPL                       | 197 | 193.47    | 18610   | -0.544 | 0.586 |
|                                                             | APL                       | 195 | 199.56    |         |        |       |
| Awareness and Participation                                 | BPL                       | 197 | 190.71    | 18066   | -1.028 | 0.304 |
|                                                             | APL                       | 195 | 202.35    |         |        |       |
| Neighbourhood/Locality Attachments                          | BPL                       | 197 | 199.8     | 18557   | -0.589 | 0.556 |
|                                                             | APL                       | 195 | 193.16    |         |        |       |
| Availability of Support and Advice                          | BPL                       | 197 | 190.27    | 17980   | -1.43  | 0.153 |
|                                                             | APL                       | 195 | 202.79    |         |        |       |
| Capability                                                  | BPL                       | 197 | 196.19    | 19146   | -0.062 | 0.95  |
|                                                             | APL                       | 195 | 196.82    |         |        |       |
| Total                                                       |                           | 392 |           |         |        |       |

Source: Calculated

| Table-6B : Mann-Whitney U test           |                           |     |           |         |        |       |
|------------------------------------------|---------------------------|-----|-----------|---------|--------|-------|
| Economic Status and Social Capital Index |                           |     |           |         |        |       |
|                                          | Economic Status of Member | N   | Mean Rank | U       | Z      | Sig.  |
| TSCI_(After)                             | BPL                       | 197 | 192.15    | 18350.5 | -0.764 | 0.445 |
|                                          | APL                       | 195 | 200.89    |         |        |       |
| SCI(After)                               | BPL                       | 197 | 189.39    | 17806   | -1.251 | 0.211 |
|                                          | APL                       | 195 | 203.69    |         |        |       |
| Total                                    |                           | 392 |           |         |        |       |

Source: Calculated

| Table 7A Kruskal-Wallis H Test and JT test |                             |                     |           |              |       |          |       |                     |           |              |       |          |       |
|--------------------------------------------|-----------------------------|---------------------|-----------|--------------|-------|----------|-------|---------------------|-----------|--------------|-------|----------|-------|
| Duration of stay and Social Capital stock  |                             |                     |           |              |       |          |       |                     |           |              |       |          |       |
| Variables                                  | Stay in the area (in Years) | Before joining SHGs |           |              |       |          |       | After joining SHGs. |           |              |       |          |       |
|                                            |                             | N                   | Mean Rank | H/Chi_Square | Sig.  | JT stats | Sig.  | N                   | Mean Rank | H/Chi_Square | Sig.  | JT stats | Sig.  |
| Trust                                      | Up to 5                     | 91                  | 194.31    | 1.688        | 0.793 | 1.022    | 0.307 | 9                   | 260.39    | 16.074       | 0.003 | 2.859    | 0.004 |
|                                            | 6 to 10                     | 96                  | 186.63    |              |       |          |       | 39                  | 153.24    |              |       |          |       |
|                                            | 11 to 15                    | 73                  | 196.16    |              |       |          |       | 82                  | 182.83    |              |       |          |       |
|                                            | 16 to 20                    | 64                  | 202.95    |              |       |          |       | 144                 | 191.46    |              |       |          |       |
|                                            | Above 20                    | 68                  | 207.67    |              |       |          |       | 118                 | 221.57    |              |       |          |       |
| Linking Networks                           | Up to 5                     | 91                  | 182.44    | 3.15         | 0.533 | 1.718    | 0.086 | 9                   | 296.72    | 17.34        | 0.002 | 0.143    | 0.887 |
|                                            | 6 to 10                     | 96                  | 196.92    |              |       |          |       | 39                  | 150.21    |              |       |          |       |
|                                            | 11 to 15                    | 73                  | 193.44    |              |       |          |       | 82                  | 215.9     |              |       |          |       |
|                                            | 16 to 20                    | 64                  | 201.38    |              |       |          |       | 144                 | 187.48    |              |       |          |       |
|                                            | Above 20                    | 68                  | 213.42    |              |       |          |       | 118                 | 201.69    |              |       |          |       |
| Groups & Networks                          | Up to 5                     | 91                  | 207.55    | 3.067        | 0.547 | -0.328   | 0.743 | 9                   | 250.83    | 16.133       | 0.003 | 1.49     | 0.136 |
|                                            | 6 to 10                     | 96                  | 184.06    |              |       |          |       | 39                  | 145.68    |              |       |          |       |
|                                            | 11 to 15                    | 73                  | 194.92    |              |       |          |       | 82                  | 212.68    |              |       |          |       |
|                                            | 16 to 20                    | 64                  | 208.14    |              |       |          |       | 144                 | 183.73    |              |       |          |       |
|                                            | Above 20                    | 68                  | 190.01    |              |       |          |       | 118                 | 213.49    |              |       |          |       |
| Community Feeling                          | Up to 5                     | 91                  | 190.41    | 2.814        | 0.589 | 1.462    | 0.144 | 9                   | 211.94    | 8.555        | 0.073 | 2.416    | 0.016 |
|                                            | 6 to 10                     | 96                  | 186.03    |              |       |          |       | 39                  | 156.73    |              |       |          |       |
|                                            | 11 to 15                    | 73                  | 198.84    |              |       |          |       | 82                  | 183.77    |              |       |          |       |
|                                            | 16 to 20                    | 64                  | 199.88    |              |       |          |       | 144                 | 201.92    |              |       |          |       |
|                                            | Above 20                    | 68                  | 213.73    |              |       |          |       | 118                 | 210.69    |              |       |          |       |
| Awareness and Participation                | Up to 5                     | 91                  | 193.51    | 1.664        | 0.797 | 0.218    | 0.827 | 9                   | 203.28    | 0.335        | 0.987 | 0.031    | 0.976 |
|                                            | 6 to 10                     | 96                  | 197.43    |              |       |          |       | 39                  | 203.09    |              |       |          |       |
|                                            | 11 to 15                    | 73                  | 203.86    |              |       |          |       | 82                  | 191.93    |              |       |          |       |
|                                            | 16 to 20                    | 64                  | 182.86    |              |       |          |       | 144                 | 195.63    |              |       |          |       |
|                                            | Above 20                    | 68                  | 204.14    |              |       |          |       | 118                 | 198.04    |              |       |          |       |
| Neighbourhood/ Locality attachments        | Up to 5                     | 91                  | 184.06    | 7.047        | 0.133 | 1.942    | 0.052 | 9                   | 209.22    | 7.26         | 0.123 | 1.685    | 0.092 |
|                                            | 6 to 10                     | 96                  | 181.32    |              |       |          |       | 39                  | 152.79    |              |       |          |       |
|                                            | 11 to 15                    | 73                  | 217.5     |              |       |          |       | 82                  | 193.13    |              |       |          |       |
|                                            | 16 to 20                    | 64                  | 197.08    |              |       |          |       | 144                 | 204.18    |              |       |          |       |
|                                            | Above 20                    | 68                  | 211.49    |              |       |          |       | 118                 | 202.94    |              |       |          |       |
| Availability of Support and Advice         | Up to 5                     | 91                  | 194.87    | 1.253        | 0.869 | 0.222    | 0.824 | 9                   | 209.61    | 9.041        | 0.06  | 1.735    | 0.083 |
|                                            | 6 to 10                     | 96                  | 190.45    |              |       |          |       | 39                  | 169.45    |              |       |          |       |
|                                            | 11 to 15                    | 73                  | 208.98    |              |       |          |       | 82                  | 202.51    |              |       |          |       |
|                                            | 16 to 20                    | 64                  | 194.68    |              |       |          |       | 144                 | 187.86    |              |       |          |       |
|                                            | Above 20                    | 68                  | 195.54    |              |       |          |       | 118                 | 210.81    |              |       |          |       |
| Capability                                 | Up to 5                     | 91                  | 192.95    | 9.957        | 0.041 | 1.365    | 0.172 | 9                   | 228.89    | 7.743        | 0.101 | 1.133    | 0.257 |
|                                            | 6 to 10                     | 96                  | 176.64    |              |       |          |       | 39                  | 175.03    |              |       |          |       |
|                                            | 11 to 15                    | 73                  | 221.81    |              |       |          |       | 82                  | 203.54    |              |       |          |       |
|                                            | 16 to 20                    | 64                  | 182.36    |              |       |          |       | 144                 | 184.49    |              |       |          |       |
|                                            | Above 20                    | 68                  | 215.44    |              |       |          |       | 118                 | 210.89    |              |       |          |       |
| Total                                      |                             | 392                 |           |              |       |          |       |                     |           |              |       |          |       |

Source: Calculated

| Table 7B Kruskal-Wallis H Test and JT test. |                             |                     |           |              |      |          |       |                     |           |              |       |          |       |
|---------------------------------------------|-----------------------------|---------------------|-----------|--------------|------|----------|-------|---------------------|-----------|--------------|-------|----------|-------|
|                                             | Stay in the area (in Years) | Before joining SHGs |           |              |      |          |       | After joining SHGs. |           |              |       |          |       |
|                                             |                             | N                   | Mean Rank | H/Chi_Square | Sig. | JT stats | Sig.  | N                   | Mean Rank | H/Chi_Square | Sig.  | JT stats | Sig.  |
| TSCI                                        | Up to 5                     | 91                  | 193.84    | 3.971        | 0.41 | 1.146    | 0.252 | 9                   | 271.28    | 15.841       | 0.003 | 1.694    | 0.09  |
|                                             | 6 to 10                     | 96                  | 181.23    |              |      |          |       | 39                  | 141.76    |              |       |          |       |
|                                             | 11 to 15                    | 73                  | 210.25    |              |      |          |       | 82                  | 203.74    |              |       |          |       |
|                                             | 16 to 20                    | 64                  | 192.7     |              |      |          |       | 144                 | 190.32    |              |       |          |       |
|                                             | Above 20                    | 68                  | 210.44    |              |      |          |       | 118                 | 211.4     |              |       |          |       |
| SCI                                         | Up to 5                     | 91                  | 201.33    | 2.87         | 0.58 | 0.445    | 0.656 | 9                   | 259.83    | 18.658       | 0.001 | 2.212    | 0.027 |
|                                             | 6 to 10                     | 96                  | 180.31    |              |      |          |       | 39                  | 137.59    |              |       |          |       |
|                                             | 11 to 15                    | 73                  | 200.57    |              |      |          |       | 82                  | 203.74    |              |       |          |       |
|                                             | 16 to 20                    | 64                  | 207.63    |              |      |          |       | 144                 | 187.33    |              |       |          |       |
|                                             | Above 20                    | 68                  | 198.06    |              |      |          |       | 118                 | 217.3     |              |       |          |       |
| Total                                       |                             | 392                 |           |              |      |          |       |                     |           |              |       |          |       |

Source: Calculated

| Table 8A Mann-Whitney U test<br>Tradition and Social Capital stock |           |     |                     |       |        |      |               |                     |         |        |      |               |
|--------------------------------------------------------------------|-----------|-----|---------------------|-------|--------|------|---------------|---------------------|---------|--------|------|---------------|
| Variables                                                          | Tradition | N   | Before joining SHGs |       |        |      |               | After joining SHGs. |         |        |      |               |
|                                                                    |           |     | Mean Rank           | U     | z      | Sig. | Effect size-r | Mean Rank           | U       | z      | Sig. | Effect size-r |
| Trust                                                              | Yes       | 148 | 241.2               | 11441 | -6.186 | .000 | 0.312         | 208.46              | 16286   | -1.642 | .101 | -             |
|                                                                    | No        | 244 | 169.39              |       |        |      |               | 189.25              |         |        |      |               |
| Linking Networks                                                   | Yes       | 148 | 230                 | 13098 | -4.602 | .000 | 0.232         | 232.09              | 12788   | -4.876 | .000 | 0.25          |
|                                                                    | No        | 244 | 176.18              |       |        |      |               | 174.91              |         |        |      |               |
| Groups & Networks                                                  | Yes       | 148 | 226.36              | 13636 | -4.154 | .000 | 0.21          | 234.28              | 12464.5 | -5.152 | .000 | 0.26          |
|                                                                    | No        | 244 | 178.39              |       |        |      |               | 173.58              |         |        |      |               |
| Community Feeling Mean                                             | Yes       | 148 | 240.5               | 11543 | -6.066 | .000 | 0.306         | 237.71              | 11956.5 | -5.733 | .000 | 0.29          |
|                                                                    | No        | 244 | 169.81              |       |        |      |               | 171.5               |         |        |      |               |
| Awareness and Participation                                        | Yes       | 148 | 217.14              | 15001 | -2.851 | .004 | 0.144         | 231.76              | 12838   | -4.846 | .000 | 0.24          |
|                                                                    | No        | 244 | 183.98              |       |        |      |               | 175.11              |         |        |      |               |
| Neighbourhood/Locality attachments                                 | Yes       | 148 | 247.79              | 10465 | -7.256 | .000 | 0.367         | 247.94              | 10443   | -7.113 | .000 | 0.36          |
|                                                                    | No        | 244 | 165.39              |       |        |      |               | 165.3               |         |        |      |               |
| Availability of Support and Advice                                 | Yes       | 148 | 248.81              | 10313 | -7.276 | .000 | 0.367         | 224.57              | 13901   | -4.994 | .000 | 0.25          |
|                                                                    | No        | 244 | 164.77              |       |        |      |               | 179.47              |         |        |      |               |
| Capability                                                         | Yes       | 148 | 256.86              | 9122  | -8.375 | .000 | 0.423         | 224.35              | 13934   | -4.316 | .000 | 0.22          |
|                                                                    | No        | 244 | 159.89              |       |        |      |               | 179.61              |         |        |      |               |
|                                                                    | Total     | 392 |                     |       |        |      |               |                     |         |        |      |               |

Source: Calculated

| Table 8A Mann-Whitney U test<br>Tradition and Social Capital stock |           |     |                     |       |        |      |               |                     |         |        |      |               |
|--------------------------------------------------------------------|-----------|-----|---------------------|-------|--------|------|---------------|---------------------|---------|--------|------|---------------|
| Variables                                                          | Tradition | N   | Before joining SHGs |       |        |      |               | After joining SHGs. |         |        |      |               |
|                                                                    |           |     | Mean Rank           | U     | z      | Sig. | Effect size-r | Mean Rank           | U       | z      | Sig. | Effect size-r |
| Trust                                                              | Yes       | 148 | 241.2               | 11441 | -6.186 | .000 | 0.312         | 208.46              | 16286   | -1.642 | .101 | -             |
|                                                                    | No        | 244 | 169.39              |       |        |      |               | 189.25              |         |        |      |               |
| Linking Networks                                                   | Yes       | 148 | 230                 | 13098 | -4.602 | .000 | 0.232         | 232.09              | 12788   | -4.876 | .000 | 0.25          |
|                                                                    | No        | 244 | 176.18              |       |        |      |               | 174.91              |         |        |      |               |
| Groups & Networks                                                  | Yes       | 148 | 226.36              | 13636 | -4.154 | .000 | 0.21          | 234.28              | 12464.5 | -5.152 | .000 | 0.26          |
|                                                                    | No        | 244 | 178.39              |       |        |      |               | 173.58              |         |        |      |               |
| Community Feeling Mean                                             | Yes       | 148 | 240.5               | 11543 | -6.066 | .000 | 0.306         | 237.71              | 11956.5 | -5.733 | .000 | 0.29          |
|                                                                    | No        | 244 | 169.81              |       |        |      |               | 171.5               |         |        |      |               |
| Awareness and Participation                                        | Yes       | 148 | 217.14              | 15001 | -2.851 | .004 | 0.144         | 231.76              | 12838   | -4.846 | .000 | 0.24          |
|                                                                    | No        | 244 | 183.98              |       |        |      |               | 175.11              |         |        |      |               |
| Neighbourhood/Locality attachments                                 | Yes       | 148 | 247.79              | 10465 | -7.256 | .000 | 0.367         | 247.94              | 10443   | -7.113 | .000 | 0.36          |
|                                                                    | No        | 244 | 165.39              |       |        |      |               | 165.3               |         |        |      |               |
| Availability of Support and Advice                                 | Yes       | 148 | 248.81              | 10313 | -7.276 | .000 | 0.367         | 224.57              | 13901   | -4.994 | .000 | 0.25          |
|                                                                    | No        | 244 | 164.77              |       |        |      |               | 179.47              |         |        |      |               |
| Capability                                                         | Yes       | 148 | 256.86              | 9122  | -8.375 | .000 | 0.423         | 224.35              | 13934   | -4.316 | .000 | 0.22          |
|                                                                    | No        | 244 | 159.89              |       |        |      |               | 179.61              |         |        |      |               |
|                                                                    | Total     | 392 |                     |       |        |      |               |                     |         |        |      |               |

Source: Calculated

Faculty of Management Studies,  
Marwadi University, Rajkot, Gujarat - 360003

## References -

- Ahmad, N., & Khan, H. (2016). *Measuring women's disempowerment in agriculture in Pakistan (Vol. 1512)*. Intl Food Policy Res Inst.
- Aruna, M., & Jyothirmayi, M. R. (2011). *The role of microfinance in women empowerment: A study on the SHG bank linkage program in Hyderabad (Andhra Pradesh)*. Indian Journal of Commerce & Management Studies ISSN, 2229, 5674.
- Assembly, G. (2015). *Resolution adopted by the General Assembly on 11 September 2015. A/RES/69/315 15 September 2015. New York: United Nations. Retrieved March 25, 2020, from [https://www.unescwa.org/sites/www.unescwa.org/files/un\\_resolutions/a\\_res\\_69\\_315\\_e.pdf](https://www.unescwa.org/sites/www.unescwa.org/files/un_resolutions/a_res_69_315_e.pdf)*.

- Aterido, R., Beck, T., & Iacovone, L. (2011). *Gender and finance in Sub-Saharan Africa: Are women disadvantaged?* World Bank Policy Research Working Paper, (5571).
- Beisland, L. A., Mersland, R., & Strøm, R. Ø. (2015). *Audit quality and corporate governance: evidence from the microfinance industry*. *International Journal of Auditing*, 19(3), 218-237.
- Bowles, S., & Gintis, H. (2002). *Social capital and community governance*. *The economic journal*, 112(483), F419-F436.
- Carter, N., Brush, C., Greene, P., Gatewood, E., & Hart, M. (2003). *Women entrepreneurs who break through to equity financing: the influence of human, social and financial capital*. *Venture Capital: an international journal of entrepreneurial finance*, 5(1), 1-28.
- Chemin, M. (2008). *The benefits and costs of microfinance: evidence from Bangladesh*. *The journal of development studies*, 44(4), 463-484.
- CHESTON, S. Y. L. K. (2004). *Empowering Women through Microfinance*. Microcredit Summit. New York.
- Cheston, S., & Kuhn, L. (2002). *Empowering women through microfinance*. Draft, Opportunity International, 64, 1-64.
- Chowdhury, A. (2009). *Microfinance as a poverty reduction tool: a critical assessment*.
- Claridge, T. (2004). *Social capital and natural resource management*. Unpublished Thesis, University of Queensland, Brisbane, Australia.
- Das, S. K. (2012). *Socio-economic empowerment of women through SHG-banking linkage programme: A boon for development*. *International Journal of Management & Business Studies*, 2(1), 39-46.
- Demirgüç-Kunt, A., & Klapper, L. F. (2012). *Measuring financial inclusion: The global index database*. World bank policy research working paper, (6025).
- Feigenberg, B., Field, E., & Pande, R. (2013). *The economic returns to social interaction: Experimental evidence from microfinance*. *Review of Economic Studies*, 80(4), 1459-1483.
- Feigenberg, B., Field, E., Pande, R., Rigol, N., & Sarkar, S. (2014). *Do group dynamics influence social capital gains among microfinance clients? Evidence from a randomized experiment in urban India*. *Journal of Policy Analysis and Management*, 33(4), 932-949.
- Field, E., Jayachandran, S., Pande, R., & Rigol, N. (2016). *Friendship at work: Can peer effects catalyze female entrepreneurship?* *American Economic Journal: Economic Policy*, 8(2), 125-53.
- Fukuyama, F. (1995). *Trust: The social virtues and the creation of prosperity* Free Press. New York.
- Garikipati, S. (2013). *Microcredit and women's empowerment: Have we been looking at the wrong indicators?* *Oxford Development Studies*, 41(sup1), S53-S75.
- Gennaioli, N., La Porta, R., Lopez-de-Silanes, F., & Shleifer, A. (2013). *Human capital and regional development*. *The Quarterly journal of economics*, 128(1), 105-164.
- Gram, L., Morrison, J., & Skordis-Worrall, J. (2019). *Organising concepts of 'women's empowerment' for measurement: a typology*. *Social Indicators Research*, 143(3), 1349-1376.
- Hulme, D., & Arun, T. (2011). *What's wrong and right with microfinance*. *Economic and Political Weekly*, 23-26.
- James-Hawkins, L., Peters, C., VanderEnde, K. E., Bardin, L., & Yount, K. M. (2016). *Women's empowerment and its relationship to current contraceptive use in low, lower-middle, and upper-middle income countries: A systematic review of the literature*. *Global Public Health*.
- Jones, L., Snelgrove, A., & Muckosy, P. (2006). *The double-X factor: harnessing female human capital for economic growth*. *International Journal of emerging markets*.
- Khamar, M. (2016). *Global Outreach & Financial Performance Benchmark Report, 2014*. Report prepared for MIX. Washington, DC: Microfinance Information Exchange. [www.themix.org/sites/default/files/publications/mix\\_global\\_regional\\_benchmark\\_report\\_2014\\_0.pdf](http://www.themix.org/sites/default/files/publications/mix_global_regional_benchmark_report_2014_0.pdf) (accessed 20 December 2017).
- Khan, R. E. A., & Noreen, S. (2012). *Microfinance and women empowerment: A case study of District Bahawalpur (Pakistan)*. *African Journal of Business Management*, 6(12), 4514-4521.
- Khandker, S. R. (1996). *Grameen Bank: Impact, costs, and program sustainability*.
- Khandker, S. R. (1998). *Fighting poverty with microcredit: experience in Bangladesh*. Oxford University Press.

- Khavul, S. (2010). *Microfinance: creating opportunities for the poor*. *Academy of management perspectives*, 24(3), 58-72.
- Klasen, S., & Schüler, D. (2011). *Reforming the gender-related development index and the gender empowerment measure: Implementing some specific proposals*. *Feminist Economics*, 17(1), 1-30.
- Langer, A. (2009). *Socioeconomic status and social capital levels of microcredit program participants in India*.
- Leonardi, R., Nanetti, R. Y., & Putnam, R. D. (2001). *Making democracy work: Civic traditions in modern Italy*. Princeton, NJ: Princeton university press.
- Lippman, S. A., Neilands, T. B., Leslie, H. H., Maman, S., MacPhail, C., Twine, R., ... & Pettifor, A. (2016). *Development, validation, and performance of a scale to measure community mobilization*. *Social Science & Medicine*, 157, 127-137.
- Maclean, K. (2019). *Women and microfinance in the global south: Empowerment and disempowerment outcomes*.
- Malik, S., & Courtney, K. (2011). *Higher education and women's empowerment in Pakistan*. *Gender and education*, 23(1), 29-45.
- Matin, I., Hulme, D., & Rutherford, S. (2002). *Finance for the poor: from microcredit to microfinancial services*. *Journal of international development*, 14(2), 273-294.
- Mawa, B. (2008). *Impact of micro-finance towards achieving poverty alleviation*. *Pakistan Journal of Social Sciences*, 5(9), 876-882.
- Mehta, S. K., Mishra, D. H. G., & Singh, A. (2011, February). *Role of self help groups in socio-economic change of vulnerable poor of Jammu region*. In *International Conference on Economics and Finance Research IPEDR (Vol. 4, pp. 519-523)*.
- Menzies, T. V., Diochon, M., & Gasse, Y. (2004). *Examining venture-related myths concerning women entrepreneurs*. *Journal of Developmental Entrepreneurship*, 9(2), 89.
- Monteza, M. D. P. P., Blanco, J. L. Y., & Valdivieso, M. R. (2015). *The educational microcredit as an instrument to enable the training of women*. *Procedia-Social and Behavioral Sciences*, 197, 2478-2483.
- Morris, G., & Barnes, C. (2005). *An assessment of the impact of microfinance: a case study from Uganda*. *Journal of Microfinance/ESR Review*, 7(1), 4.
- Mosley, P., & Hulme, D. (1998). *Microenterprise finance: is there a conflict between growth and poverty alleviation*. *World development*, 26(5), 783-790.
- Mustafa, F., Khurshed, A., & Fatima, M. (2018). *Impact of global financial crunch on financially innovative microfinance institutions in South Asia*. *Financial Innovation*, 4(1), 1-11.
- Patnaik, C. P. (2012). *Micro Finance Role In Poverty Alleviation And Economic Growth-A Study In Gajapati District*. *International Journal of Social Science and Interdisciplinary Research*, 1(3), 46-55.
- Pratley, P. (2016). *Associations between quantitative measures of women's empowerment and access to care and health status for mothers and their children: a systematic review of evidence from the developing world*. *Social Science & Medicine*, 169, 119-131.
- Putnam, R., Leonardi, R., & Nanetti, R. (1993). *Making democracy work*. Princeton, NJ: Princeton University Press.
- Richardson, R. A. (2018). *Measuring women's empowerment: A critical review of current practices and recommendations for researchers*. *Social Indicators Research*, 137(2), 539-557.
- Singh, S., & Kaur, S. (2012). *Impact of Self-help Groups on Empowerment of Women*. *Journal of Community Mobilization and Sustainable Development*, 7(2), 255-258.
- Taylor, G., & Perezniето, P. (2014). *Review of evaluation approaches and methods used by interventions on women and girls' economic empowerment*. *Overseas Development Institute*, 1-62.
- Woolcock, M., & Narayan, D. (2000). *Social capital: Implications for development theory, research, and policy*. *The world bank research observer*, 15(2), 225-249.

# **Cricketers Performance Enhancement Via Focussed Meditation Monitoring (FMM) and Guided Selection Method**

---

*K. Mahesh., D. Prasanna Balaji*

## **Introduction**

In every nation the sports industry is one of the important sectors. Cricket is a global game that initializes each country's respect contributing to its globalized recognition and sense of international honour. Wining the Cricket game is considered to be a pride of every nation. To accomplish the victory every player's mental strength and physical fitness is more important. There are several coaching and training to maintain the physical fitness. But to handle the mental peer pressure a cricketer undergoes during the matches are high. There are very less technologies and coaching on mental training.

Wining time peer pressure is the toughest stress for a batsman. Some of them somehow handles and attains victory. But, some batsman takes it very hard and lacks the victory in last stage. In recent times a cricket batsman admitted that due to the game situation he when to a peer pressure at end and went to depression. There are some matches that ended with some ugly fights, spats and provocation among the players.

In general an international sport requires a lot of sacrifices being in limelight, handling partiality and commitments that leads to stress among players. The ball spin, wicket details can be visualized by the technology in [1,2]. Same as that the performance enhancement of the players can be monitored and projected.

One of the keys to cricket mental training is learning to actively participate in your own recovery and relaxation, allowing you to develop a calm mind. Several cricket players admitted that they had battled the monster of depression without letting anyone know. These anxiety and depression may ruin the game and their respective careers too. Excessive stress on players leads to performance degradation and a little stress leads to out of focus on game.

## **Cricket Mental Coaching**

There are several crickets coaching related to the game and physical fitness. As cricket is not only a physical game it is also a mental game, but there are only few mental training. A proper mental coaching enhances the performance state of the players and the game play. An Optimal Performance state gains a balance of calmness and stress. A

mindfulness of calm is a performance ready mind, where mind and body are in tuned to act in synchrony.



**Figure 1. cricket coaching diagram**

In the above diagram both the physical and mental training for the cricketers are discussed. In physical training the learning related to the gameplay and bat/ball positioning and fielding techniques are trained. Also, the physical fitness of each player are trained and monitored constantly. The cricket mental training covers the performance relaxation through yoga/meditation.

The contributions of the paper are discussed as follows:

- The main aim of this study is to monitor the stress levels of the cricketers. The stressors, appraisals, and consequent emotions experienced by cricketer in cricket are validated throughout the performance.
- To reduce the stress/anxiety and improve self-confidence in cricketers the system suggests a continuous yoga/meditation practice.
- The regular yoga practise is prescribed and monitored via Focussed Meditation Monitoring (FMM). Then, a set of cricketers are picked the performance level before and after yoga practise among the cricketers are noted and analysis are made accordingly.

### **Literature Survey**

The inevitable pressure faced by athletes to boost performance aggravating pre-competition anxiety and everyday anxiety are handled by meditation by Terry and Slade in 1995. Further the system projects two main theories (a) Centeric attention to current activities and (b) expertise acceptance which can be gained via attentive meditation.

#### ***Focussed Attentive Yoga and Open-monitoring yoga (FAY-OMY)***

Current studies have recommended FAY and OMY for monitoring the players performance. These two methods are sufficient to handle the cognitive-control management. Colzato et al. 2012 in [4] Colzato et al. 2015 in [5] stated that FAY increases top-down management and strengthens higher support for relevant information. Open-monitoring weakens the top-down management and reduces top-down support.

Birrer et al. in [6], stated that 'When a person has control in anxiety level, stress and reflective thinking then the player attains capacity to achieve best athletic performance. Kabat-Zinn in [7] stated a mindfulness of meditation in everyday life

achieving the attentiveness of one's focus is not a tough job. It can be progressed by a proper exercise and regular practise on daily basis. The researchers suggested that yoga is suitable for displaying relationships of the components of the reciprocal stress process.

Cottraux et al., [8] projected a cognitive therapy to control emotion in delineate. When the therapy training is given mental condition and attentiveness must be clear and in the theory focussing on one's experience and goal is important. The process is handled in a very non-judgmental way through sensorial, mental, cognitive, and feeling aspects. Davidson et al., [9] the positive result on well-being and meditation system helps in increasing performance. Hölzel et al. in [10,11] a mindfulness and attentiveness can be achieved in learning emotions, and memory. The goal should be set and focus on self-referential processing, and perspective attaining is very important.

### Methodology Implementation

In the proposed method proper yoga training is given with regular guidance. Including yoga/meditation into the daily routine helps boosting the energy, stamina, stability and flexibility of our body. In yoga there are several positions that strengthen our body, mind and help to manage them equally. Especially, for cricketers there are specific practices/positions named as Ardha Chandrasana, Paschimottanasana, and Uttanasana to increase the body and mind stamina.

### Guided selection Technique

A guided selection option is provided to choose the yoga asanas (Ardha Chandrasana, Paschimottanasana, Uttanasana etc..) according to the players choice or performance. Here, a set of Yoga Asanas related to relaxation, mindfulness and stress buster techniques are provided.



Figure 2. system architecture

### Focussed Meditation Monitoring (FMM)

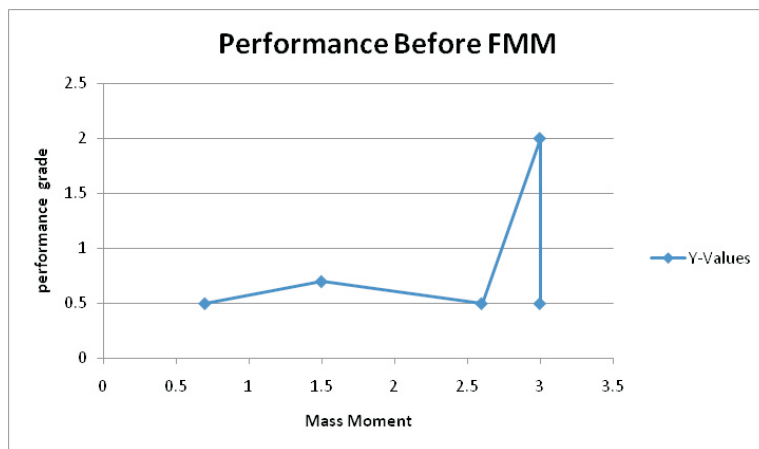
The system not only formulates a regular yoga practice it also insists a proper monitoring and produce an organized sessions for a set of players. A set of time a regular yoga/meditation is followed for the cricketers then the performance is calculated. Definitely there will be drastic changes in the performance. The players who followed a proper yoga/meditation will gain an improvement in their performance. The improvisation will be in stamina, focus and acceptance. These improvisations would surely reflect in the game with a power-packed performance of each player. A regular practice of yoga asana keeps the cricketers focussed all the time, it helps to easily handle

any tough situations, it increases the self-confidence, it reduces the peer pressure and removes the mental block ages providing a clear vision on the game.

Depending on the demand of players' efficiency them meditation-enhancing interventions are done. In cricket the players is trained to improve the skills, individual abilities, and needs are more likely to succeed or to attain victory. Same as physical training mental strength and stability is also important, which can be attained only through yoga/meditation.

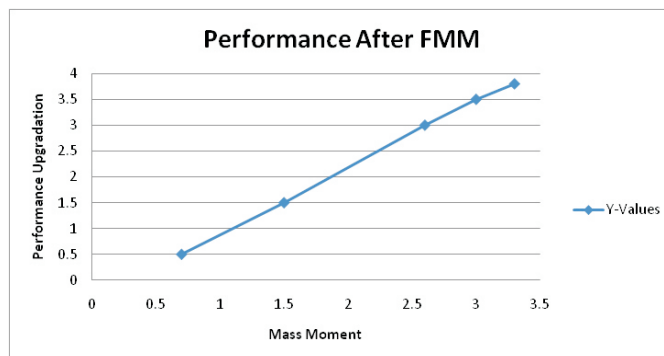
### Result Analysis

A training data set is collected from kaggle using matplotlib the performance of the players before meditation and after meditation are collected, analyzed and processed. A library is maintained to monitor the enhanced performance of the cricketers after regular yoga practise. A set of players are examined for accounting the proposed mechanism.



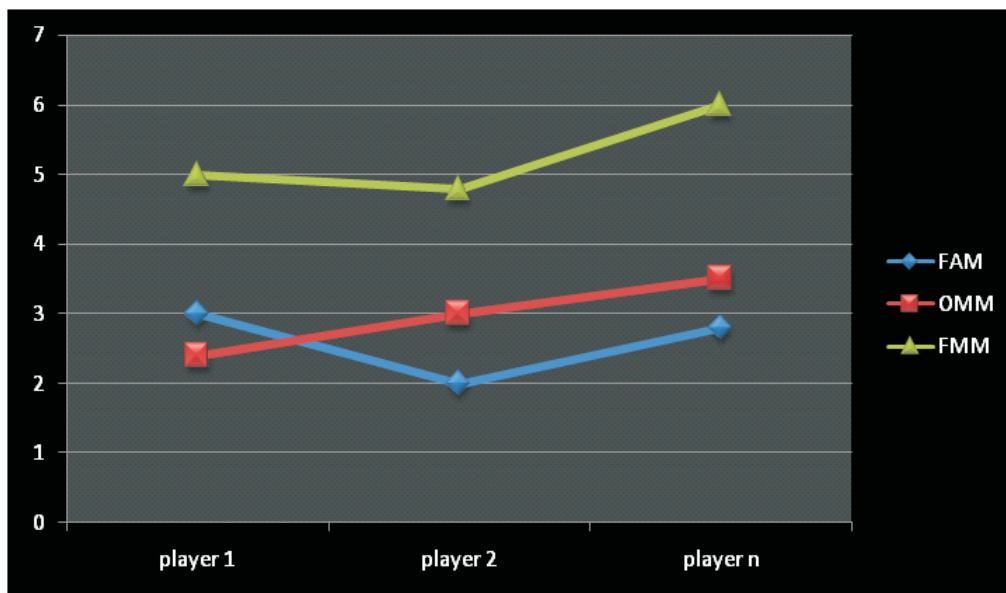
**Figure 3. Players Performance before FMM**

In the graph above the mass moment of the players before the meditation is analyzed and reported. The report conveys that the performance of the cricketers before meditation is comparatively low. Some players with more stamina are in relaxed state and can perform better. But, most of the players lack in concentration, stamina, self-confidence, which lowers the performance in game play.



**Figure 4. Players Performance After FMM**

In the graph above the mass moment of the players after the meditation is analyzed and reported. The report conveys that the performance of the cricketers after regular meditation is comparatively High. Also, a proper focussed monitoring meditation (FMM) is set to analyze the gradual increase in performance level. Here most of the players are with more stamina and in relaxed state that can perform better. The mass moments are captured and their performance enhancement are noted and shown to them. This increases the concentration, stamina, self-confidence of players. This change definitely shows a higher performance in game play changing the entire game.



**Figure 5. Comparison Existing vs Proposed**

The above graph deliberates the performance evaluation before and after yoga and FMM. A set of players are chosen and compared. The first set players are players who do not follow the yoga. The second sets of players are players who practise yoga regularly. Both the players are compared between the FMM.

### Conclusion

The system concludes by proposing a successful meditation-based intervention (yoga) to enhance the performance to boost the cricket players' stamina and self-confidence. A guided selection option is used to choose the best-suited yoga asanas and techniques specific to cricket. Further the proposed technique is used for the development of personalized, individually focussed meditation training programs. Also, the system set up a Focused Mediation Monitoring (FMM) system to monitor the performance increase among players after proper yoga/meditation. Due to the regular practise of yoga the players attain a relaxation state that helps them to avoid unnecessary failures and achieve the step towards the victory.

### **Future Enhancement**

In future the open monitoring can be applied to achieve high-level enhancement. The system are planned to be applied in other sports too.

---

*Department of Physical Education & Sports Sciences  
(Affiliated to Bharathidasan University) National college (Autonomous)  
Tiruchirappalli, Tamil Nadu. - 620001*

*Head & Director of Research, Department of Physical Education & Sports Sciences  
(Affiliated to Bharathidasan University)  
National College (Autonomous)  
Tiruchirappalli. Tamil Nadu - 620001*

### **References -**

- [1] Deshpande R, Shakya R, Mittal S (2018) The role of the seam in the swing of a cricket ball. *J Fluid Mech* 851:50–82.
- [2] Lock GD, Edwards S, Almond DP (2010) Flow visualization experiments demonstrating the reverse swing of a cricket ball. *Proc Inst Mech Eng Part P J Sports Eng Technol* 224(3):191–199.
- [3] Terry, P. C., & Slade, A. (1995). Discriminant effectiveness of psychological state measures in predicting performance outcome in karate competition. *Perceptual and Motor Skills*, 81(1), 275–286.
- [4] Colzato, L. S., Ozturk, A., & Hommel, B. (2012). Meditate to create: the impact of focused-attention and open-monitoring training on convergent and divergent thinking. *Frontiers in Psychology*, 3(116), 1–5.
- [5] Colzato, L. S., Sellaro, R., Samara, I., Baas, M., & Hommel, B. (2015). Meditation-induced states predict attentional control over time. *Consciousness and Cognition*, 37, 57–62.
- [6] Bernier, M., Thienot, E., Cordon, R., & Fournier, J. F. (2009). Mindfulness and acceptance approaches in sport performance. *Journal of Clinical Sport Psychology*, 25(4), 320–333.
- [7] Kabat-Zinn, J. (1994). *Wherever you go, there are you: Mindfulness meditation in everyday life*. New York: Hyperion.
- [8] Cottraux, J. (2007). *Thérapie cognitive et émotions: Latroisième vague [cognitive therapy and emotions: the third wave]*. Paris: ElsevierMasson.
- [9] Davidson, R. J., Kabat-Zinn, J., Schumacher, J., Rosenkranz, M., Muller, D., Santorelli, S. F., et al. (2003). Alterations in brain and immune function produced by mindfulness meditation. *Psychosomatic Medicine*, 65(4), 564–570.
- [10] Hölzel, B. K., Ott, U., Gard, T., Hempel, H., Weygandt, M., Morgen, K., & Vaitl, D. (2008). Investigation of mindfulness meditation practitioners with voxel-based morphometry. *Social Cognitive and Affective Neuroscience*, 3(1), 55–61.
- [11] Hölzel, B. K., Carmody, J., Vangel, M., Congleton, C., Yerramsetti, S. M., Gard, T., & Lazar, S. W. (2011). Mindfulness practice leads to increases in regional brain gray matter density. *Psychiatry Research: Neuroimaging*, 191(1), 36–43.

# **What Justice Is : An Inquiry into Nagarjuna's Contemplation on 'happiness' and 'liberation' in *Ratnavali***

---

***David Khomdram***

The very idea of Justice is deeply rooted in Rawls's opening sentence of *A Theory of Justice* – "Justice is the first virtue of social institution, as truth is of systems of thought." But on the other hand, Rawls insisted that it should transcend the calculus of social interest and political bargaining. He further claims that the implementation of an erroneous theory of justice marks the lack of a better one, or the inability to transcend the calculus or bargaining implies the incompetency of the existing theories. Thus he writes, "Being first virtues of human activities, truth and justice are uncompromising" (Rawls, 1999, p. 4)

According to Rawls, justice, being a virtue of social institutions and its related human activities, should not compromise. This uncompromising character of justice, like that of the truth, is what fascinates us. This fascination is not the metaphysical or mystical one but purely a philosophical one. Even Mill observed, "...it is one thing to believe that we have natural feelings of justice, and another to acknowledge them as an ultimate criterion of conduct." Rawls and others of course tried to demystify in their own ways, and we are not judging their proposals in and out. Our attempt is to understand the fascinating character of 'uncompromising' in its fullest sense. This includes relieving ourselves from demystifying it. We intend to explore a whole lot of things that is inhaled by the very notion - 'uncompromising'. More precisely, our inquiry is thoroughly upon the statement – "Justice is uncompromising". This is the point where we defect from the popular postulation of the idea of justice, where most – including Rawls – attempted not to fall short of such qualification; the qualification of being uncompromising. But the very existential character of the statement - "Justice is uncompromising" – paves the way to some other direction; "justice" as "uncompromising". Before any kind of metaphysical speculation of the meaning arises in terms of its foundational values, and before any kind of nihilistic blindness befell, let us indulge in something which is worldly and at the same time purely philosophical,

Therefore, among all the possible indications of "uncompromising", we intend to explore within the domain of Buddhist intention of qualifying the term. Honestly, we could have started straight with the notion of 'justice', but we are also aware of the fact that 'justice', as we know it, is a consequence. This is evident in the history of its

explication across time. On the other hand, we are also convinced that the ontological absence of the idea of justice leads us to identify with its means as its cause. For instance, in "justice as fairness" and "justice as dharma", both fairness and dharma caused justice, but they were used synonymously. But, if they bring their argument up to the sense that "fairness" itself is 'justice' or "dharma" itself is 'justice', then our argument here in this paper will represent one of their arguments.

Thus, deferring the idea 'justice' and focusing on the predicate – 'is uncompromising' – in our discourse, pulls us back more towards the identity statement, predication, an assertion like, " the so-and-so is the so-and-so", making us more philosophical. But to our astonishment, ironically, unearthing the predicate also redefined the binarity within the domain of popular logocentric philosophy, defying all its fundamental tenets.

Now, these two predicaments also provide the evidence that somewhere, in something, we embrace the dualism and at the same time transcend it. Buddha calls this "wholesome". 'Compromising' in Rawlsian context, implies the flexibility in terms of integrity and the associated values, and the opposite means stiffness, as rigid as anything could be, an impenetrable perimeter, etc. 'Compromising' also implies the immaturity of the theory, principles, or policy that should usually cause justice.

Now according to Buddhist philosophy, wherever there is cause and effect, the principle of impermanence binds them – *pratityasamudpāda* – rooting out the logocentric core. Thus, ".....Perfect Buddha, the best of teacher ..... taught that whatever is dependently arisen is unceasing, unborn, unannihilated, not permanent, not coming, not going, without distinction, without identity, and free from conceptual construction." The principle of impermanence or momentariness itself invites imperfection, changeability, randomness, etc. This condition settles the bewilderment of making justice as a consequence in the pure sense of the term; with the very framework of binarity or dualism. The settlement provides the status of the 'idea' [the idea of justice] to transcend beyond the level of dualism towards something supramundane. [When we use the term 'supramundane', it does not represent the 'supramundane seat', as an extraterrestrial domain above this mundane world, rather it only testifies the inevitable 'transcendence'.] Therefore, when we accord ourselves to the statement – "justice" as "uncompromising", the elaboration of 'uncompromising' in terms of a detour, we intend to prove that justice itself is "uncompromising" rather than "justice should not be compromised" where it works as a transitive verb.

The paper delves into the works of Nagarjuna, the founder of Madhyamaka school of Buddhism. Following Rawls's assertion of justice as related to man vis-à-vis society; individual and groups or masses, the paper focus exclusively on Nagarjuna's work "*Ratnāvali*" translated as 'The Precious Garland', which he composed as an advice to the king. But David S. Ruegg maintains, "It is observed that the precepts taught in the *Ratnāvali* are useful not only to a king but to all beings." (Ruegg, 1981, p. 26)

In *Ratnāvali*, Nāgārjuna was expounding the art of actions, liberation, and decision making, or rather 'an enlightened decision' or 'a liberated decision'. This notion of 'enlightened/liberated decision' motivates the paper to unearth the picture of justice implicit within the verses.

In the world of academic philosophy, Nāgārjuna needs no introduction because his works and reputation precede him. The popular theory of emptiness (*shunyavāda*)

runs deep in all his utterances which he founded on the basis of  
*pratityasamudpāda* through *catuskoti*;

"Everything is real and is not real,

Both real and not real,

Neither real nor not real,

This is Lord Buddha's teaching." (Nagarjuna, *Mulamadhyamakakarika*; The fundamental wisdom of the middle way, 1995, pp. XVIII, 8)

The deconstructive nature of *sunyatā* is also the building block of all the work [Including the works related to ethics and politics]. It is the same blood that runs in the veins of the Madhyamaka School of philosophy. Therefore, we are not surprised to discover the scent of it in his advises, which is supposed to be a guiding principle to rule, to manage, to govern or administer.

The Great Buddha once uttered; "That deed which I am desirous of doing with the body is a deed of my body that would conduce neither to the harm of self, nor to the harm of others, nor to the harm of both, this deed of body is wholesome, productive of happiness, results in happiness, - a deed of body like this, Rāhula, may be done by you." This is how Buddha advises his son Rāhula on his conduct or deeds as a way of exhorting him on his terrestrial journey. This somehow transcends the popular sense of altruism. The wholesomeness of the deed here is strongly anticipated in what Rawls called 'uncompromising' [but not in his main theory of justice], because the question of injustice never arises in such un-manipulating deeds. This "uncompromising wholesomeness" is neither the dividend which can further be disintegrated into constituent parts, nor it is the absolute without parts. What is prominent, and what runs deep in Nāgārjuna's thinking is the logic of 'neither-nor' which is directed to the two extremes of dualism. What lies ahead, for the sake of our endeavor, is to examine if this logic of 'neither-nor' could satisfy the notion of 'uncompromising'.

To begin with, Nāgārjuna dwells on three cardinal prerequisites in the preparatory stage towards understanding and delivering justice: faith, wisdom, and action. Here action is universal and at the same time dependent on the former two. Now these prerequisites, according to Nāgārjuna, are instrumental in attaining happiness and liberation. The state of happiness, he called it 'high status' and the state of liberation as 'definite goodness'. (Nagarjuna, RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland, 1998, pp. -4) We believe he anointed these titles for some implicit reasons. High Status, which he means happiness or at least represented by it, is very specific. The meaning of happiness is not bound by the classical interpretation of fulfilling or regulating one's desire, though it is one of the expressions or state of the being. The very title he anointed for it – 'high status' – entails the raising, an upliftment, transcendence, going beyond the popular conception. This higher state transcends the very hierarchy born out of linearity; beyond 'p' and 'not-p'.

In the same way, 'definite goodness' for liberation is nothing less than the case of happiness. This is the promised goodness; the uncompromising goodness, which he deemed to be perfectly matched with the Buddhist conception of liberation. We all are familiar with Buddhist's multifarious conception of nirvana, but Nāgārjuna's dealing is more convincing for the sake of this paper. Literally, it is easy to comprehend the meaning of liberation, and it obviously implies transcendence but, still qualifying liberation or transcendence as 'definite goodness' remains to be interrogated further.

According to Nāgārjuna, practicing 'high status', opens up the way toward 'definite goodness'.

*"In one who first practices high status,  
Definite goodness arises later;  
For having attained high status,  
One comes gradually to definite goodness.*

*High status is considered to be happiness,  
Definite goodness is liberation  
The quintessence of their means  
Is briefly 'faith and wisdom'." (Nagarjuna, RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland, 1998, pp. 3-4)*

**High Status:**

For Nāgārjuna, happiness is gained on the level of high status. And on the other hand, high status is a consistent practice; an unrelenting endeavor over a series of virtues which he summarizes as:

*"Desire, hatred, ignorance, and  
The actions they generate are non-virtues  
Non-desire, non-hatred, non-ignorance,  
And the actions they generate are virtues". (Nagarjuna, RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland, 1998, p. 20)*

*"From non-virtues come all sufferings  
And likewise all bad transmigrations  
From virtues, all happy transmigrations  
And the pleasures of all lives." (Nagarjuna, RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland, 1998, p. 21)*

*"Desisting from all non-virtues  
And always engaging in virtues  
With body, speech, and mind –  
These are called the three forms of practice." (Nagarjuna, RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland, 1998, p. 22)*

Therefore Nāgārjuna's *seudaimonism* is the constant practice to desist from all non-virtues and always engaging in virtues. Now, always engaging in virtues while, at the same time, desisting from all non-virtues, is also a complete state of turmoil; a constant war upon a series of dilemmas, confusion, undecidables, etc. In other words, it is a perfect depiction of a 'conflict'. But, this conflict is also a solution or a resolution to the dualism between virtues and non-virtues. This state, which is the constant state of practice, is not allowed to take sides because the 'virtue' for Nāgārjuna is the state of transcendence. The hanging state of practice/conflict resolves the dualism by transcending them while the 'state' itself never rests onto some other platform. Nāgārjuna again writes;

*"Through the concentrations, immeasurable, and formlessness  
One experiences the bliss of Brahmā and so forth  
Thus in brief are the practices  
For high status and their fruits". (Nagarjuna, 1998, p. 24)*

Simply avoiding non-virtue and embracing virtue is purely a mechanical choice;

a choice between 'p' and 'not-p'. This means, a mere choice of 'p' over 'not-p', though may be very difficult, is already decided, and this contradicts the very notion of immeasurable and formlessness. Such notions – immeasurable and formlessness – are treated in the domain of undecidables and undeterminables.

Now, what really justifies the notion of immeasurable and formlessness, and what really belongs to the domain, is the 'conflict' or the 'practice'. This 'conflict' is the constant practice, expanding itself without a definite perimeter in time and space. Briefly, this infinitude exactly belongs to the domain of undecidables and undeterminables. These practices, according to Nāgārjuna freed one from becoming vicious creatures/beings – which are also symbols of injustice – and making them godly. (Nagarjuna, 1998, pp. 23-24)

That being said, if this 'conflict' delivers, or assumed to deliver, justice, then it should also retain the status of 'uncompromising' because compromising the 'conflict' is to corrupt the 'practice' itself, which would further corrupt man and all humans. Thus, one is just in this state of 'conflict' or in the 'high status'. Cicero writes, "...justice, in which virtue displays itself with the most distinguished luster, and from which men are termed good...." (Cicero, 1902, pp. 15-16)

### **Definite Goodness:**

Before we repeatedly use the word 'just' or 'justice', let us illuminate ourselves with the 'definite goodness'. Nāgārjuna writes; "One who sees how cause and effect are produced and destroyed, does not regard the world as really existent or really non-existent." (Nagarjuna, RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland, 1998, p. 38) The *shunyavāda* of Nāgārjuna kept on insisting to extinguish both the self and the aggregates.

*"If the self were the aggregates,*

*It would have arising and ceasing*

*If it were different from the aggregates*

*It would not have the characteristics of the aggregates."* (Nagarjuna, 1995, pp. XVIII 1)

The five aggregates or skandhas; natural form/body (*rupa*), feeling (*vedana*), perceptions (*saññā*), predisposition from past impressions (*saṃskāra*), and consciousness (*viññāna*), these are considered to be the properties of the self. But they are mutually dependent [mutually dependent between self and aggregates]. "Just as it is said that an image of one's face is seen depending on a mirror, but does not really exist [as face], so the conception of I exists dependent on the aggregates. But like the image of one's face, the 'I' does not at all really exist." (Nagarjuna, RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland, 1998, pp. 31-32) He continues, "Just as without depending on a mirror, the image of one's face is not seen, so too the conception of I does not exist without depending on the aggregates". (Nagarjuna, RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland, 1998, p. 33)

Now the mutual dependence of the self and the aggregates, while confirming the impermanence of neither of them independently, let us abstain from grasping onto the "I" and "mine"; that is the self and the aggregates essentially.

*"Having seen thus that the aggregates as untrue*

*The conception of I is abandoned*

*And due to abandoning the conception of I*

*The aggregates arise no more."* (Nagarjuna, RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland, 1998, p. 30)

Nāgārjuna further observed;

*"Whatever comes into being dependent on another*

*Is not identical to that thing*

*Nor is it different from it*

*Therefore it is neither non-existent in time nor permanent".* (Nagarjuna, 1995, pp. XVIII-10)

This explains why Nāgārjuna redefined the nature of cause and effect as something extinguishable. [This also opens a whole new dialogue in the world of philosophy, but for space and time, we must defer the dialogue in some near future]. This very conviction also paves the way for the middle path whose perspective transcends the dualism of existent and non-existent. This transcending from the dualism is the principle and immortal truth preached by the enlightened ones, whom he addresses as "patrons of the world". The characteristic of this transcending goes without identity, without distinction. He writes;

*"By the buddhas, patrons of the world*

*This immortal truth is taught*

*Without identity, without distinctions*

*Not non-existent in time, not permanent."* (Nagarjuna, Mulamadhyamakakarika; The fundamental wisdom of the middle way, 1995, pp. XVIII-11)

Therefore, he writes, "In liberation, there is no self and so are no aggregates." And so, "The extinction of the misconception of things and non-things is called nirvana." Nāgārjuna further writes, "Because existence and non-existence are extinguished by wisdom, there is a passage beyond meritorious[virtue](Nagarjuna, 1998, p. 45) and ill deeds[non-virtue]...." and, ".....Thereby one not relying on duality is liberated." (Nagarjuna, 1998, p. 51)

### **The Uncompromising Conflict:**

That being said, resuming to our argument, and since, according to Nāgārjuna 'high status' is followed by 'definite goodness', the happiness at high status is recognized, at least by us, in the form of a constant turmoil or conflict in the domain of undecidables, generate the specific idea of liberation which is inherent in the very practice but deferred to be realized later when the very idea of liberation is elaborated as transcending the dualism.

Now, where is the place of 'justice' within this discourse? Nāgārjuna constantly refers to the buddhas or the enlightened ones as 'patrons of the world'. This could readily mean the protector or guardian. Any leader or a monarch ought to consider himself a protector or guardian of the humanity at large. Therefore, Nāgārjuna is showing the necessity of the leader or any other human beings to get themselves enlightened, to become the true patrons of the world. The concept of the 'patrons of the world' also incorporates the idea of justice as an essence inevitably inherent throughout. Without justice, the concept of guardianship or protector loses its sense in whole. Nothing remains to be affirmed out of them in the absence of justice. According to David Hume, "General peace and order are the attendants of justice or general abstinence from the possessions of others...." (Hume, 1975, pp. APPENDIX-III)

Again, justice being the first virtue of social institution (according to Rawls), and considering the world as a social institution, the guardianship of it – both the king and the subject – should be groomed by the idea of the 'justice' inside-out.

Nāgārjuna writes;

*"The practices are the best policy  
It is through them that the world is pleased  
Neither here nor in the future  
Is one cheated by a world that has been pleased."* (Nagarjuna, RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland, 1998, p. 128)  
*"The world is displeased  
By the policies of non-practice  
Due to the displeasure of the world  
One is not pleased here or in the future."*(Nagarjuna, RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland, 1998, p. 129)

Now, for the King, as Lord of the Earth, and as a source of justice; as the originator of the policies, buddhahood is the essential qualification. This enlightenment or buddhahood is nothing short of a godly task. The slightest deviation committed by a misfit could turn the tide the other way around. For this reason, Nāgārjuna prescribed the prerequisites; that is faith and wisdom ['Faith' for Nāgārjuna is the right determination to continue with the practices]. (Nagarjuna, 1998, pp. -5-6) From the very outset of the paper, and from our intellectual journey, we are constantly reminded of virtues and, so justice(s), being the first virtue for social institutions, as reminded by Rawls, has been dominating this paper and others. No doubt, we set out to establish the very 'idea' but Nāgārjuna seems to be carrying it in a different way. For him, even the conception of virtuous and non-virtuous action is the work of an ignorant one. That being said, we seemed to realize that justice cannot simply be a virtue because, the opposite that should arise would create a dualism, and that situation will drag us down to the level of ignorance.

*"If the doctrine (sunyatā) is not understood thoroughly*

*The conception of an I prevails*

*Hence come virtuous and non-virtuous actions*

*Which give rise to good and bad rebirths."* (Nagarjuna, RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland, 1998, p. 124)

Therefore, incessant observance of the 'practice' driven by 'faith' and 'wisdom', and not relying on dualism will make one a Universal Monarch. (Nagarjuna, RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland, 1998, pp. 175,76,77)

This Universal Monarch, for us, is the source of justice. On the other hand, the Monarch should make justice uncompromising. If one has to deliver justice – an uncompromising one – one must proclaim oneself as being guided by faith and wisdom. Once this has been uttered, it is taken to be granted, in Nāgārjuna's context, that one has transcended the level of dualism through constant practice.

For the sake of our argument, this level where one is transcended is the only condition that could be understood or conceived as 'uncompromising'. Anything short of this level would deem itself to be a level where zero justice prevails because the shortage would surely invalidate the 'un' out of 'uncompromising' and thus 'compromising'. Again, the transcendence, revealed by Nāgārjuna, is not a promised paradise with a certain degree of ontological existence, but rather realized as a state of constant turmoil/conflict – Nāgārjuna called it 'practice' – a drifting leaf on the realm of undecidables and undeterminables. The seriousness of this claim lies in the fact that, once the practice is stopped, the duality arises, and once the duality is in play, we let loose the dialectics, and hence the necessity of the notion of "uncompromising" is dropped down.

## **The Conclusion:**

Therefore, for Nāgārjuna, delivering justice as consequence is secondary to the understanding of its true form. We are trying to depict 'justice' in its wholesomeness, in the form of a picture painted by Nāgārjuna. Maybe we might expect justice after liberation, as consequence, as a follow-up from a perfect antecedent. This is the practical part which is open for observation. Now, knowing "justice" as "uncompromising" is the most necessary and challenging part, and this, for Nāgārjuna, is indebted in Lord Buddha's teaching. If 'justice' is 'uncompromising', then 'uncompromising' is attained when liberated, or 'liberation' itself is always uncompromised. And liberation here is to transcend the binarity or dualism. But, transcendence is possible only on the level of 'high status' or 'conflict' or 'practice'. Therefore, "justice" as "uncompromising" is the constant practice that is in the form of a conflict in the domain of undecidables.

*"Thereby know that the ambrosia*

*Of the Buddha's teaching is called profound*

*An exclusive doctrine passing*

*Far beyond 'is' and 'is not'." (Nagarjuna, RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland, 1998, p. 62)*

---

*Imphal College, Govt. of Manipur, Kwakeithel  
Imphal-West-795001, Manipur*

## **References -**

- Buddha. (1995). Majjhima Nikaya: The Middle Length Discourse of the Buddha. (B. N. Bodhi, Trans.) USA: Wisdom Publication.*
- BURTON, D. (2001). EMPTINESS APPRAISED. DELHI: MOTILAL BANARSIDASS.*
- Cicero. (1902). De Officiis. London: Arthur L. Humphreys.*
- Derrida. Rountable.*
- FENNER, P. (1990). THE ONTOLOGY OF THE MIDDLE WAY. KLUWER ACADEMIC PUBLISHER: NETHERLANDS.*
- Hume, D. (1975). An Enquiry Concerning the Principles of Morals. London: Oxford University Press.*
- J.S.Mill. (1987). Utilitarianism. Harmondsworth: Penguin.*
- KOMITO, D. R. (1987). NAGARJUNA'S SEVENTY STANZAS; BUDDHISTS PSYCHOLOGY OF EMPTINESS. USA: SNOW LION PUBLICATION.*
- Nagarjuna. (1995). Mulamadhyamakakarika; The fundamental wisdom of the middle way. (J. L. Garfield, Trans.) New York: Oxford University Press.*
- Nagarjuna. (1998). RATNAVALI, Nagarjuna's Precious Garland. (J. Hopkins, Ed., & J. Hopkins, Trans.) New York: Snow Lion Publication.*
- Rawls, J. (1999). A Theory of Justice. Massachusetts: Harvard University Press.*
- Ruegg, D. S. (1981). A History of Indian Literature; Madhyamaka School. Wiesbaden.*
- SANTINA, D. P. (2002). CAUSALITY AND EMPTINESS, THE WISDOM OF NAGARJUNA. SINGAPORE: BUDDHIST RESEARCH SOCIETY.*
- WESTERHOFF, J. (2009). NAGARJUNA'S MADHYAMIKA. NEW YORK: OXFORD UNIVERSITY PRESS.*

## **End Note -**

1. This is highlighted in the first chapter of Ratnāvali (Nagarjuna, Nagarjuna's Precious Garland, 1998)
2. This is found in the Verses-22 of Ratnāvali

# Right to Self Determination and Gender Recognition of Transgenders

*Veena Venugopal*

*"I am what I am, so take me as I am"*

- Johann Wolfgang von Goethe

The Government of India approved The Transgender Persons (Protection of Rights) Bill, 2016 in August 2016 with an intention to protect the rights of transgender people in India. The biggest criticism faced by this bill was its lack of empathy towards the transgender community itself. Even when it claimed to be for the protection of the transgender community it failed to include any response to the national-led discussions when the draft bill was distributed in early 2016 for public comment.<sup>1</sup> Another large flow is placed in the part where the word "transgender" is defined. According to the bill a "transgender" is: neither wholly female nor wholly male; or a combination of female or male; or neither female nor male; and whose sense of gender does not match with the gender assigned to that person at the time of birth, and include trans-men and trans-women, persons with inter sex variations and gender-queers.<sup>2</sup> This reflects the deep rooted belief of the state where a person's gender can only be categorized as male or female and "transgender" is only a state of mind. By giving a definition where the "transgender" is considered as a combination of both or being neither, the State was refusing to recognize those trans- individuals who prefer to identify themselves as neither "male" or "female." In other words, the State refused to distinguish between a person's sexuality and his or her genders assigned at birth — in a biological sense.<sup>3</sup>

To overcome the shortcomings of the bill a Standing Committee was constituted in 2016 with Shri Ramesh Baisas chairperson and various stakeholders like Vidhi Centre for legal policy, Sampoorana working group, Amnesty international India etc., appeared before the committee to present their proposals for a change in the definition and various other recommendations. The influence of this committee's report is reflected in the Transgender Persons' (Protection of Rights) Bill, 2018 which amended the definition of transgender making it slightly more advanced than its predecessor. The bill was passed by the parliament on 26 November 2019 and received presidential assent on 5 December 2019.

According to the Transgender Persons (Protection of Rights) Act, 2019 (hereinafter referred to as Act) a "transgender person" means a person whose gender does

not match with the gender assigned to that person at birth and includes trans-man or trans-woman (whether or not such person has undergone Sex Reassignment Surgery or hormone therapy or laser therapy or such other therapy), person with intersex variations, gender queer and person having such socio-cultural identities as kinner, hijra, aravani and jogta.<sup>4</sup> Even though this definition is considered an improvement from the earlier one, the problem in this lies in the fact that identifying oneself as a transgender still need to be medically established.

### **Right to self – determination of transgender**

Ironical as it might seem, one part of the Act speaks of non-discrimination and right to self-perceived gender identity the other requires for a medical certificate to prove their gender identity. The idea that there is a gender norm, from which certain gender identities “vary” or “depart” is based on a various preconceptions that must be challenged first if we want all humankind to enjoy human rights.<sup>5</sup> The fact that a transgender person has to make an application to the District Magistrate for issuing a certificate of identity as a transgender person<sup>6</sup> and the rules prescribe for a certificate of a psychologist to be attached with the application to verify their claim<sup>7</sup> shows the unwillingness of our state to go beyond the medical model of gender. These provisions are explicitly contradictory to the 'Nalsa' and 'Navtej Singh Johar' judgments which upheld the right of all citizens to the self determination of their gender. The Supreme Court declared equal rights for transgender people, by recognizing their right to self-determination and the promotion of gender identity in order to prevent discrimination based on gender identity. The court recognized that gender identity was based on self-determination and not on surgery or medical procedure and recognized the right to self-determination.

Through the *National Legal Services Authority v. Union of India*<sup>8</sup> (NALSA) judgement the Supreme Court expanded the concept of 'sexuality' under the Constitution to include 'gender'. It held that both sexes and biological attributes encompassed the different aspects of sex. While biological features may include genitals, chromosomes and secondary sexes, sex will include a personal image as well as a deep psychological or emotional feeling of sexual identity and a human character. The Court held that gender identity refers to the inherent concept of being a man, a woman, or a transgender person and that Article 21 of the Constitution protects the right to life of the person being a part of it. The Court ruled that the gender identity of the person to whom it belongs should be determined by the person concerned and that gender identity is part of the person's dignity and is the context of “personal independence” and “free will”.<sup>9</sup>

Most importantly the Supreme Court identified the importance of affirming that a transgender is every bit equal to any other citizen in this country and stated that discrimination on the ground of 'sex' under Articles 15 and 16 includes discrimination on the ground of gender identity. The right to sexual expression is part of the human right to life, independence and dignity. The court thus held that transgender people have the right to express their gender as a man, a woman or a transgender person by disregarding medical sex reassignment and have the right to express their chosen gender.

Justice Sikri stated that “If democracy is based on the recognition of the individuality and dignity of man, as a fortiori we have to recognise the right of a human

being to choose his/her sex/gender identity which is integral to his/her personality and is one of the most basic aspect of self- determination, dignity and freedom.”<sup>10</sup> Therefore, the legal recognition of gender identity is part of the right to dignity and freedom guaranteed under our Constitution.

The principles of privacy, self-determination, autonomy and personal integrity are the fundamental rights guaranteed to members of the transgender community under Article 19(1)(a) of the Indian Constitution, and the State is bound to protect and recognize citizens' rights. Gender ownership is considered to be the essence of a person's personality and a person's sexual expression would be protected under Section 19 (1) (a) of the Constitution as it reflects the dignity and identity of the people. This is the core principle that trans persons have been fighting for in their struggle for equality in the world over. It is a founding principle that a person has the right to self- determine their gender identity irrespective of medical, hormonal or psychological treatment and this was explicitly laid down in the NALSA judgement.

This principle of self-determination imposed on NALSA was followed by the Supreme Court in 'Navtej' where Justice DipakMisra in the context of both gender identity and sexual orientation held that “at the core of the concept of identity lies self-determination, realization of one's own abilities visualizing the opportunities and rejection of external views with a clear conscience that is in accord with constitutional norms and values or principles that are, to put in a capsule, —constitutionally permissible. As long as it is lawful, one is entitled to determine and follow his/her pattern of life.”<sup>11</sup>

So it is evident that the NALSA and Navtej, recognized the right to self-determination based on personal choice, and has clearly rejected the medical model of gender identity recognition. The medical model understands transgender- identity as a medical condition - one that requires treatment, which includes sex-oriented surgery or hormone therapy. The medical model also seeks to make ordinary people by incorporating them into existing forms of bisexuality. Both of these views were clearly rejected by the Supreme Court in support of the self-determination model and yet the Transgender Persons (Protection of Rights) Act, 2019 demands for certificate of psychologist meaning a medical record to prove the identity of a trans-person.

### **Discrimination**

When a state discriminates against transgender and fail to provide them with equal right and equal opportunities, it does not just fail the individual it is failing a society. Depriving an individual of his right to gender identity and gender expression is a grave human right violation. When a man/ women uses his or her ID card or PAN card or Passport to prove his/ her identity a transgender person is required to avail a certificate to prove their identity in order to get an ID card from the authorities. The only thing differentiating them with the rest of the citizens of our country is their gender identity and they are made to feel like an outcaste from the day they express themselves. Unfortunately for most of them the discrimination begins from their own house and schools. People closer to them are the first to strike. Some families try to correct the behaviour of a transgender child by beating them up for behaving as per their instincts. Apart from physical violence like getting beaten up and sexually assaulted they face

mental agony on an everyday basis for being who they are. Coerced and threatened and deprived of their liberty all because the state itself is unwilling to come out of its long build notion of binary genders. A person's right to be recognized as unique and distinguishable is part of their self-expression and one of the most fundamental of rights. It's the duty of the state to protect this right.

### **Recognition of Right to Gender Identity**

It's the growing need of the hour that we dig deep into the reports and resolutions put before us by various United Nations Committees for the protection of transgender community to understand the standard to be maintained by the State while drafting laws for the safeguard of the transgender community.

One of the key areas of focus of the Human Rights Committee, a body of independent experts which monitor the implementation of the ICCPR<sup>12</sup> by the State parties is the protection of rights of the transgender community. According to Mr. Victor Madrigal-Borloz, The Independent Expert on protection against violence and discrimination based on sexual orientation and gender identity, *"Protecting LGBT people from violence and discrimination does not require the creation of a new set of LGBT-specific rights, nor does it require the establishment of new international human rights standards. The legal obligations of States to safeguard the human rights of LGBT people are well established in international human rights law on the basis of the Universal Declaration of Human Rights and subsequently agreed international human rights treaties"*.<sup>13</sup>

The Right to gender recognition is derived from the rights to (1) personal autonomy, which includes self-determination, (2) informational privacy or right to confidentiality, (3) health, and (4) bodily integrity.<sup>14</sup>

Personal autonomy or the freedom to make decisions about and for one-self is a general principle that underlies in various provisions of the UDHR. It speaks about the right of an individual to "freely development their personality." An important aspect of protecting personal autonomy is protecting individuals' freedom to determine one's own identity.<sup>15</sup> Former judge of the European court of Human rights J. Loukis Loucaides has once remarked that "For man to be able to function freely, in the full sense of the term, he must have the possibility of self-definition and self-determination: the right to be himself. Thus, the achievement of effective protections of freedom of the person requires legal recognition and safeguarding of his personality."<sup>16</sup>

The right to privacy is yet another right upon which the right to recognition is founded. The right to confidentiality permits an individual to control sensitive information about them. The International Covenant on Civil Political Rights (ICCPR) states that "no one shall be subjected to arbitrary or unlawful interference with his privacy."<sup>17</sup> Even though the ICCPR does not define privacy, the UN Human Rights Committee has acknowledged people's privacy interests in controlling "information concerning a person's private life."<sup>18</sup> A transgender has every right not to reveal their gender status if there is fear of being a target of discrimination of any kind.<sup>19</sup>

In addition to the right to self-determination and privacy, the trans-genders right to gender recognition is also rooted in their human right to health. Sometimes a transgender who want to identify themselves as a man or women undergo treatment for

gender dysphoria.<sup>20</sup> According to the world professional Association for Transgender Health 'gender dysphoria' means the discomfort or the distress caused by a disparity between an individual's gender identity and sex assigned to them at birth. The reason why they decide to undergo a surgery to change their gender could be either dysphoria or the distress caused by the society they live in where they are forced to choose a gender to fall within the binary to avoid the stigma that comes with identifying themselves as Transgender. Along with physical health, the mental health of a transgender is also put to test in every walk of life. Till an individual is not able to feel at peace with their own identity we cannot call ourselves progressive and take pride in the legislation drafted for the protection of the transgender community.

Bodily integrity is the final anchor on which the right to gender recognition is founded on. This right indicates the right of an individual to decide how to treat one's body. No trans-person should be forced to undergo any medical procedure or surgery against his will by the state or anyone else. Even though the right to bodily integrity is not expressly protected under any law it can be inferred from provisions of some international documents like the American convention of human rights.<sup>21</sup> Article 5 of the convention speaks about the states obligation to protect every person's physical, mental and moral integrity.<sup>22</sup> This reflects the intention of the international community to protect the right to bodily integrity of every individual.

In order for a transgender to enjoy their right to recognition all the above mentioned rights has to be honoured and it's the duty of the state to make sure that every citizen of this country is treated equally and all the rights and freedoms are enjoyed by everyone alike.

### **Universal Declaration of Human Rights**

Article 6 of the Universal Declaration of Human Rights deals with the right of every individual to be recognized as a person before the law. According to article 6, "Everyone has the right to recognition everywhere as a person before the law". The relevance of this article is so much so that when the UDHR focused on the need to lay down the civil and political rights it needed a provision which will make sure that those rights will be enjoyed by all. So Article 6 applies across all spectrums of rights and without it the purpose of document itself will cease. If an individual is not recognized as a person under law all the other rights will be threatened.<sup>23</sup>

### **The International Covenant on Civil and Political Rights**

The covenant is a reflection of the principles that ensured inherent dignity of a person enshrined in the United Nations Charter and Article 1 of the ICCPR deals with the right to self-determination. Every human being is given the freedom to determine their political status and live freely. It also makes it an obligation on the part of the state to promote the realization of the right of self-determination in conformity with other provisions in the covenant. And article 16 of the covenant states that 'Everyone shall have the right to recognition everywhere as a person before the law'.<sup>24</sup> Section 16 is short but deep. To a degree, legal recognition is the basis for enjoying all the rights of the Covenant, as in the absence of a legal right such rights cannot be guaranteed by any state within the framework of domestic law. And it is basically inseparable from the

recognition which the Covenant offers in its Preamble to 'the inherent dignity' of the human, man or woman or transgender from which all human rights stem.

### **Conclusion**

Self-determined gender is an integral part of a person's free choice and autonomy in relation to roles, feelings, expression and behaviours, and his identity. Here the responsibility of States is to provide access to gender recognition in a manner constant with the right to freedom from discrimination, right to equal protection of the law, right to privacy and identity and the freedom of expression.

The right to equal recognition before the law is the central guiding principle of all other rights and freedoms. In exercise, it's miles connected to entitlements in relation to health, schooling, housing, access to social security and employment and as for the fulfilment of all these obligations by the State authorities depends on the recognition of the individual's identity.

Most of the lack of legal recognition makes the victims so unaware of their identity that it evokes what can be described as a fundamental breach of State obligations. As one expert point out, when a state refuse to recognize the trans-gender's legal identity without a certificate from a doctor, they are unknowingly sending out a message as to 'what' is a proper citizen.<sup>25</sup> When a person is deprived of his identity consequentially he is deprived of his right to health; discrimination, stigma and harassment in educational settings; discrimination in the workplace, in the home and in the attainment of social security; child rights violations; and improper restrictions on the rights to freedom of expression, peaceful assembly and association, the right to freedom of movement and residence, and the right to leave any country, including his own.

Similarly, equal recognition before the law is a fundamental element of an effective defence system against arrest or detention, torture and ill-treatment, as it is clear that in all cases of deprivation, the proper identification of individuals is the first guarantee of the State's accountability.<sup>26</sup>

Illogical and stigmatizing medical classifications referring to gender identification and expression are used to justify subjecting trans human beings, even at a very young age, to coercive sterilization, hormone remedy, surgical procedures, and psychiatric sessions thereby violating their basic human rights. For some of them the unsafe or unhygienic conditions in which these surgeries are done prove lethal and they lead to 'preventable' and premature deaths. The transgender community in our country continue to face abusive and destructive behaviour from the people surrounded by them. Forced, coercive and involuntary treatments and procedures done on them to 'transform' their identity leads to severe life-long physical and mental pain and suffering and it violate their right to be free from torture and other cruel, inhuman or degrading treatment.

Being Transgender is part of the rich diversity of human nature. It's a deep concern of the human right advocates that transgender children and adults continue to be pathologized based on international and national medical classifications.<sup>27</sup> In 2016, the Committee on the Rights of the Child alongwith an expert group of United Nations human rights advocates, the Inter-American Commission on Human Rights, the African Commission on Human and Peoples' Rights and the Commissioner for Human Rights of the Council of Europe pressed Governments around the world to reform medical

classifications and to adopt measures to prevent all forms of forced treatments and coercive procedures on transgender persons. The United Nations Development Programme has developed a tool to allow countries to access the present position of their laws and policies and modify their rules and practices in a way that meets human rights standards.<sup>28</sup>

Legal recognition of transgender people has been identified as an important step in gaining numbers of the Sustainable Development Goals which include gender equality, ensuring healthy living and achievement commitment to "never leave anyone behind". It is important to meet the obligations of the international human rights treaty commitment to respect, protect and fulfil the rights of transgender people.

---

Department of Legal Studies  
University of Madras  
Navalar Nagar, Chepark,  
Triplicane, Chennai, Tamil Nadu - 600005

#### References -

1. Dutta, Aniruddha and Raina Roy, "Decolonizing Transgender in India: Some Reflections." *Transgender Studies Quarterly* 1(3):320–336, 2014
2. *The Transgender Persons (Protection of Rights) Bill, 2016 (India)* Retrieved March 12, 2022 [http://orinam.net/content/wp-content/uploads/2016/08/TGBill\\_LS\\_Eng-1.pdf](http://orinam.net/content/wp-content/uploads/2016/08/TGBill_LS_Eng-1.pdf)
3. DAVE, NAISARGI N, *QUEER ACTIVISM IN INDIA: A STORY IN THE ANTHROPOLOGY OF ETHICS* (Duke University Press 2012)
4. *Transgender Persons (Protection of Rights) Act, 2019, S. 2(k), No. 40, Act of parliament 2019*
5. *Report of the Independent Expert on protection against violence and discrimination based on sexual orientation and gender identity dated 12 July 2018 (13.03.2022, 9.29PM)* <https://documentsddsny.un.org/doc/UNDOC/GEN/N18/220/41/PDF>
6. *Transgender Persons (Protection of Rights) Act, 2019, S. 5, No. 40, Act of parliament*
7. *The Transgender Persons (Protection of Rights) Rules, 2020, Rule 4* [https://thc.nic.in/Central%20Governmental%20Rules/Transgender%20Persons%20\(Protection%20of%20Right\)%20Rules,%202020.pdf](https://thc.nic.in/Central%20Governmental%20Rules/Transgender%20Persons%20(Protection%20of%20Right)%20Rules,%202020.pdf)
8. *National Legal Services Authority v Union of India* AIR 2014 SC 1863.
9. *Id.* at 49
10. *Id.* at 20
11. *Navtej Singh Johar & Others v. Union of India*, (2018) 10 SCC 1
12. *International Covenant on Civil and Political Rights*
13. *A/76/152: Protection against violence and discrimination based on sexual orientation and gender identity-Note by the Secretary General* (13/03/2022 at 11.00PM) <https://www.ohchr.org/en/documents/thematic-reports/a76152-protection-against-violence-and-discrimination-based-sexual.pdf>
14. Joseph Raz, *On the Nature of Rights*, 93, *Mind*, 194, 197-199 (1984) <https://www.jstor.org/stable/2254002>
15. *Universal Declaration of Human Rights*, Article 22
16. L.G. Loucaides, *Personality and Privacy Under the European Convention on Human Rights*, *Essays on the Developing Law of Human Rights*, 83-84 (1995)
17. *International Covenant on Civil Political Rights*, Article 17
18. *UN Human Rights Committee, General Comment , No. 16, The Right to Respect of Privacy, Family, Home and Correspondence, and Protection of Honour and Reputation para 10* (1998).

19. Frank La Rue, *Report of the Special Rapporteur on the Promotion and Protection of the Right to Freedom of Opinion and Expression*, UN Doc. A/HRC/17/27 (12 May 2011), para. 58.
20. World Professional Association for Transgender Health (WPATH), *Standards of Care for the Health of Transsexual, Transgender, and Gender Nonconforming People*, 5 (7th Version) (2016).
21. *American Convention on Human Rights*, adopted at the Inter-American Specialized Conference on Human Rights, San José, Costa Rica, 22 November 1969
12. *Refugee Survey Quarterly*, Vol. 24, Issue 2, pg 159 (14.03.2022 10.00PM) [https://www.cartercenter.org/resources/pdfs/peace/democracy/des/amer\\_conv\\_human\\_rights.pdf](https://www.cartercenter.org/resources/pdfs/peace/democracy/des/amer_conv_human_rights.pdf) retrieved on
23. <https://www.standup4humanrights.org/layout/files/30on30/UDHR70-30on30-article6-eng.pdf>
24. <https://treaties.un.org/doc/publication/unts/volume%20999/volume-999-i-14668-english.pdf>
25. UNDP, *Transgender health and human rights: discussion paper*, 2013
26. *Report of the Office of the United Nations High Commissioner for Human Rights dated 4 May 2015*
27. OHCHR, “Pathologization: being lesbian, gay, bisexual and/or trans is not an illness”.
28. Asia Pacific Transgender Network and UNDP, *Legal gender recognition, A Multi-Country Legal and Policy Review in Asia* p. 11 (14.03.2022, 12.00AM) [https://www.undp.org/content/dam/rbap/docs/Research%20&%20Publications/hiv\\_aids/rbap-hhd-2017-legal-gender-recognition.pdf](https://www.undp.org/content/dam/rbap/docs/Research%20&%20Publications/hiv_aids/rbap-hhd-2017-legal-gender-recognition.pdf)

# Surrogacy: Ethical and Legal Issues in India

---

*Sunaina and Ritika Sharma*

## **I. Introduction**

The parents bring forth the child biologically, whereas the child shapes the parents socially. Infertility is a social stigma in India society. It wreaks distressing effect on the life of a woman for not fulfilling her primary responsibility of procreation and particularly of son to carry forward the lineage. In a patriarchal society like India a woman's respect and her marital stability is contingent to the fact that whether she can embrace motherhood or not. But sometimes due to certain medical conditions a woman is unable to carry the pregnancy. Till recently the only ray of hope for these childless couples was adoption. With enormous advancements in medical science, particularly in the field of artificial human reproductive technologies (ART) has come to rescue of such individuals and provided them with various options to parent a genetically related child. There are various options in ART like artificial insemination, In-Vitro fertilization, embryo transfer etc. Here in surrogacy comes as a supreme saviour and their desire to cherish parenthood is fulfilled.

## **II. Surrogacy-meaning:**

The term surrogacy has been derived from the Latin 'surrogatus' which means a substitute i.e. a person recruited to act in place of another. As per the Black's Law Dictionary surrogacy means the process of carrying and delivering a child for another person.<sup>1</sup> In other words it can be said that surrogacy is a practice whereby a woman carries pregnancy for another couple and after the delivery, hand over the child to the intending parents. Surrogacy has been categorized into following types:

### **II.I. Gestational Surrogacy:**

A pregnancy in which the intending mother who is also the genetic mother provides the egg, which is fertilised, and the surrogate mother carries the foetus and gives birth to the child. In this type of surrogacy there is no genetic link between the surrogate mother and the child and she is only a gestational carrier.

### **II.II. Traditional surrogacy:**

A pregnancy in which surrogate mother provides her egg, which is fertilised with the sperms of intending father by the help of artificial insemination, and carries the foetus and gives birth to a child for intending parents. Whereas, in this type of surrogacy, the surrogate is also the genetic mother of the child.

Surrogacy is classified into commercial or altruistic depending on whether monetary remuneration is given to surrogate of her service for carrying pregnancy for another besides medical expenses or not.

### **III. Historical Background Of Surrogacy**

It was in the year **1884** when first successful artificial insemination of a woman was completed by American physician William Pancoast.<sup>2</sup> In 1975 the first ethically completed IVF embryo transfer was successful.<sup>3</sup> The first legal surrogacy agreement in the history of surrogacy was drafted by lawyer Noel Keane in 1978. The year 1978 saw the successful birth of Louise Brown with the help of in-vitro fertilization on July 25, 1978, in the UK through the efforts of Dr. Robert G. Edwards and Dr. Patrick Steptoe. India's first IVF baby, Kanupriya, alias Durga was born sixty seven days later on October 3, 1978 through the efforts of Dr. Subhas Mukherjee and his two colleagues in Kolkata. The first case of commercial surrogacy was reported in the world in the year 1980 between a traditional surrogate and the intended parents. Elizabeth Kane (a pseudonym) received \$10,000 to carry the pregnancy for another couple.<sup>4</sup>

### **IV. Baby M Case**

In 1985, Mary Beth Whitehead, entered into a contract with William Stern, and his wife, Elizabeth who due to certain underlying medical conditions was unable to embrace motherhood for \$10,000 to carry the pregnancy and to deliver child for them. But after giving birth to a baby girl (Baby M) she was unable to part with the child and refused to give the custody of the child to the Sterns starting a long custody battle in 1986. The New Jersey Supreme Court held that the surrogacy contract was not enforceable because it conflicts with the law and public policy of the State. Although the court recognised the desire of infertile couples to have genetically related child, but they found payment of money to a 'surrogate' mother illegal, perhaps criminal, and potentially degrading to women. Although in this case the court granted the custody of the girl to the natural father, as it was in the best interests of the infant, but both the relinquishment of the surrogate mother's parental rights and the adoption of the child by the wife/stepparent was declared void. Thus it restored the surrogate as the mother of the child and granted her visitation right.<sup>5</sup>

### **V. Legal And Ethical Issues**

Surrogacy has been termed by many authors as 'gift of life' to those couples who have exhausted all ways of becoming a parent. However it brings with itself certain complex ethical and legal issues which are as follows:

### **VI. Commodification of child**

Critics argue that surrogacy may be characterized as child selling, and treats children as commodities that can be bought or sold for a price. Surrogates are recruited by middlemen and they make huge profits. The commercialisation of surrogacy poses risks of baby selling, turning impoverished women into baby producers and the possibility of sex selection at a price. Surrogacy degrades a pregnancy to a service and a baby to a product. Experience shows that like any other commercial dealing the 'customer' lays down his/ her conditions before purchasing the goods.<sup>6</sup> Surrogacy also profoundly violates the rights of the child, under the United Nations Convention on the Rights of the Child. Article 2 bans the sale of children, and Article 35 provides that 'State Parties shall

take all appropriate national, bilateral and multilateral measures to stop the abduction of, the sale of, or traffic in children for any purpose or in any manner.<sup>7</sup>

### **VII. Exploitation of the surrogate**

Most Indian women give their consent to act as surrogate mothers due to their poverty and are often forced by their spouses or middlemen or doctors or commissioning parents for earning money. These women have no right to take decision regarding their own body and life.<sup>8</sup> Especially in cases of commercial surrogacy, the commissioning parents and the surrogate are not on equal standing. The illiterate surrogates, mostly from a disadvantaged backgrounds, are unable to understand the consequences of the surrogacy contract which they have signed and have zero bargaining power. Medical practitioners, looking for gains from the procedure, are also likely to influence the potential surrogate by misrepresenting or not disclosing all the relevant information.<sup>9</sup> Many a times the terms of the contract are not understood by the surrogate as there is no legal advice available to them at the time of signing the contract and the contract being in English, a language in which they are not well versed leaving the surrogates with little or no knowledge of what they have agreed to undertake and their consequences, thereby making the contract favourable for the commissioning couples and profitable for the middlemen.

### **VIII. Health risks for surrogate mother**

The process of surrogacy poses serious risks to the physical and psychological health of the surrogate, especially the psychological and emotional health post child birth and during relinquishing the child. It is seen that after handing over the child to the commissioning parents the surrogate mother experiences guilt, regret, anger, frustration and depression because of giving up her child and suffers emotional trauma which is why it is said that counselling of the surrogate is very important and it is mandatory in some countries.

Investigative journalist Scott Carney described the condition of an Indian surrogacy clinic where surrogates were living in crowded rooms and were given limited and under nourish diets and forced to have caesarean sections labour and delivery process is smooth.<sup>10</sup> The process of gestational surrogacy involves repeated cycles of IVF, continued hormonal interventions into the surrogate's body leading to a routine of injections, medications which in the long term causes severe ill effects on the health of the surrogates such as development of gestational diabetes and high blood pressure, bleeding etc.

### **VIV. Degrades the dignity of women**

Surrogacy contracts reduce women to the value of their wombs, critics characterizes it as 'womb on rent'. Surrogacy turns a normal biological function of a woman's body into a commercial contract and they are considered as 'baby factory'. Surrogacy services are promoted and advertised. After hiring by middlemen, these women are shifted into hostels for the whole duration of pregnancy where the surrogates are allowed to meet their families only on weekends so that their pregnancy is a 'secret' as the society looks down upon them, as they equate surrogacy with 'prostitution' or 'slavery'. The worst part is that in case of miscarriage, they are underpaid and many a times surrogacy contracts lacks life insurance cover of surrogates and post- natal care.

Surrogate mothers should be treated as human beings who have the right to bodily autonomy like complete knowledge about the medical intervention and possible risks associated with it, the right to refuse caesarean surgeries etc. Commercial surrogacy should be acceptable only if surrogate mothers' emotional, physical and psychological health is taken care off.

#### **VV. Wastage of human embryo**

Surrogacy is an artificial reproductive technology, in which firstly with the help of in vitro fertilisation the egg and sperm are fertilised which develops into an embryo, after which, the developed embryo is transferred to the womb of surrogate mother. This process generally involves several trials so as to ensure success. Thus it involves wastage of human embryo. Senior advocate Shekhar Naphade said, "...human embryo is human life in the miniature form and permitting the trade in the same amounts to trafficking in human beings and the same is prohibited by law."<sup>11</sup>

#### **VVI. Parentage and custody of the child**

It is the innocent child who suffers the most in this arrangement due to divorce of intending parents or physical abnormalities and citizenship issue in cross border surrogacy. There are also incidents where before the birth of the child, the commissioning parents die. In such a situation the child becomes unwanted and faces uncertainties regarding his or her rights and future. In *Jaycee B. v. Superior Court of Orange County*<sup>12</sup> a child was born to a surrogate mother using sperm and eggs from anonymous donors because the commissioning parents could not create their embryo using the in vitro fertilization techniques. However one month prior to the birth of the baby Jaycee the intended parents John and Luanne separated and John tried to revoke his obligations under the surrogacy contract in order to avoid paying for child support. Luanne demanded both custody and support from her ex-husband. The legal battle continued for three years and the child did not have a legal parent for that duration. The California court granted interim custody of the baby Jaycee to Luanne and ordered John to pay for child support.

Children born with congenital physical or mental disabilities like Down's Syndrome are often abandoned by the intending parents. In the case of Baby Gammy, a couple from Western Australia, 56-year-old David John Farnell and his wife Wendy, hired a surrogate in Thailand. She was a 21-year-old food vendor named Pattharamon Janbua, who agreed to become a gestational carrier so that she could pay off family debts and educate her two young children. She was pregnant with twins, but in the fourth month, the male twin was found to have Down's Syndrome. She gave birth two months prematurely, the intended parents took the healthy, female twin to Australia, leaving Gammy, the critically ill, male twin with Ms. Janbua, who said she would raise him as her own.<sup>13</sup>

Surrogacy is the story of Abraham, Sarah, and Hagar in the Bible. Sarah, Abraham's wife, was barren. In order to maintain his lineage, Abraham went to Hagar, a maid, who he later married. Hagar gave birth to a son, Ishmael. Sarah became jealous of Hagar and Hagar did not want to give the baby up to Sarah to raise with Abraham (Genesis 16). Another example of surrogacy in the Bible comes from Jacob and his wives, Rachel and Leah. While Leah gave birth to four sons, Rachel remained barren. She

became jealous of Leah and gave Jacob her maidservant, Bilhah, to be a surrogate mother for her. Bilhah gave birth to two sons: Dan and Naphtali (Genesis 30:3). Another Biblical precedent for surrogacy is Mosaic Law, which provided for levirate marriage (a type of marriage in which the brother of a deceased man is obliged to marry his brother's widow, and the widow is obliged to marry her deceased husband's brother), an example of which was when Boaz, family member, impregnated his dead brother's widow Ruth to bear children on his behalf (Genesis 38). Examples of surrogacy are also found in the ancient Indian scripture, the Mahabharata. According to the Mahabharata, Gandhari, the wife of king Dhritarashtra, conceived and the surrogacy but endured a long pregnancy for nearly two years; after which she delivered a mass. Rishi Vyasa found that there were 101 cells that were put in a nutrient medium and were grown outside the womb till full term. Of these, 100 developed into the male Kauravas and one as a female child, Dushala.<sup>14</sup> Kartikey, the god of war, often termed ironically as the god of fertility, was born out of surrogacy through Shiva and not Parvati's womb, the surrogate mother being Ganga.<sup>15</sup>

### VI. Judicial Response To Surrogacy

The case of **Baby Manji Yamada v. Union of India**<sup>16</sup> deals with the custody of a child named Manji Yamada who was given birth by a surrogate in Anand, Gujarat under a surrogacy contract with her entered into by Dr Yuki Yamada and Dr Ikufumi Yamada of Japan. The sperms were given by the intending father, but eggs were taken from a donor, and not from intending mother. There were matrimonial disputes between the commissioning parents. The intending father Dr Ikufumi Yamada wanted the custody of the child, but he was forced to return to Japan as his visa expired. The Municipality at Anand issued a birth certificate in the name of the intending father who was also the genetic father. The grandmother of the baby Manji, Ms Emiko Yamada flew from Japan to take care of the child and filed a petition of habeas corpus in the Supreme Court under Article 32 of the Constitution. The Court referred the case to the National Commission for Protection of Child Rights. Ultimately, baby Manji left for Japan in the care of her genetic father and grandmother.

In **Jan Balazys Municipality of Anand**<sup>17</sup>, the Hon'ble High Court of Gujarat decided the citizenship of a child born through surrogacy. The facts of the case are a German couple entered into a surrogacy contract with an Indian woman and became parents of twins. The German Government refused to give the German citizenship to both the children as surrogacy was not legally recognised there. The intending father, Jan Balaz, applied for Indian passports for the babies but it was denied. The Court held that the children were born in India to a surrogate mother who was also an Indian national and hence they were deemed to be citizens of India within the meaning of Section 3(1)(c)(ii) of the Citizenship Act. They were then issued Indian passports, and later, the German courts permitted the couple to apply for adoption of the children.

In **P. Geetha vs The Kerala Livestock Development Board**, the High Court of Kerala<sup>18</sup> decided the rights of a female employee working as an executive in the Kerala Livestock Development Board who had applied for maternity leave for her child care who was born through surrogacy being the intending as well as the genetic mother. The Board, cited its Limited Staff Rules & Regulations, and rejected her application for maternity leave as the pregnancy and birth were not under 'normal circumstances.

'Rejecting this erroneous reasoning and discriminatory practice, the Kerala High Court granted child care leave to the petitioner. The Court accepted the technologically progressive means of attaining motherhood and accorded legal recognition to the same.'<sup>19</sup>

### **VII. Surrogacy Regulation Act 2021<sup>20</sup>**

On December 25, 2021, the Surrogacy (Regulation) Act, 2021 received President's assent in order to regulate the practice and process of surrogacy.<sup>21</sup>

#### **VII.I. Key features of the Act:**

##### **Regulation on surrogacy clinics:**

- A surrogacy clinic, which is not registered under this Act, shall not conduct or engage in activities relating to surrogacy and surrogacy procedures;
- No surrogacy clinic or any registered medical practitioner or any person shall not promote or induce a woman to become a surrogate; or deal with commercial surrogacy in any form; there will be no storage human embryo or gamete for the purpose of surrogacy except storage for other legal purposes like sperm banks, IVF and medical research.
- No surrogacy clinic, registered medical practitioner, or intending couple or any other person shall conduct or cause abortion during the period of surrogacy without the written consent of the surrogate mother and on authorisation of the same by the appropriate authority concerned.

##### **Regulation on surrogacy procedures:**

- No surrogacy procedures shall be conducted unless it is only for altruistic and completely bans surrogacy for commercial purposes and prohibits sale of children born through surrogacy or any kind of exploitation of women or children.
- An intending couple who has a medical indication requiring gestational surrogacy should be a couple of Indian origin or an intending woman, shall obtain a certificate of recommendation from the Board on an application made by them in such form and manner as may be prescribed by law.
- Surrogacy procedure cannot be initiated until and unless an order concerning the parentage and custody of the child to be born through surrogacy, has been passed by a court of the Magistrate of the first class or above on an application by the intending parents or intending woman, which shall be the birth affidavit after the surrogate child is born;
- Prior to conducting surrogacy there should be an insurance coverage in favour of the surrogate mother for a period of thirty six months covering postpartum delivery complications from an insurance company.

##### **Conditions to be fulfilled before becoming a surrogate mother:**

- She should be married woman with her own child;
- Should be between the age of 25 to 35 years old;
- A woman can become a surrogate only once in her lifetime; and
- Should have a certificate of medical and psychological fitness for surrogacy from a registered medical practitioner;
- She cannot offer her own gametes for surrogacy.

**Written informed consent of surrogate mother:** All side effects and after effects of surrogacy procedures shall be informed to the surrogate mother and also a written

informed consent of the surrogate mother to undergo such procedures in a language understood by her should be taken.

**Rights of surrogate child:** A child born out of surrogacy, shall be deemed to be the biological child of the intending couple or intending woman and the child will be entitled to all the rights which are available to natural children under any law for time being in force.

**Registration of surrogacy clinics:** Only clinics registered under this act can conduct surrogacy procedures. All surrogacy clinics which are partly or exclusively undertaking surrogacy procedures, should, within a period of sixty days from the date of appointment of appropriate authority, apply for registration under this Act.

**Establishment of National Assisted Reproductive Technology and Surrogacy Registry:** There will be a Registry which will be called the National Assisted Reproductive Technology and Surrogacy Registry for the purposes of registering surrogacy clinics under this Act.

- **National Surrogacy Board:** Under the Surrogacy Regulation Act 2021 , there will be a National Surrogacy Board that will be guide the government in policy making, and act as a supervisory body, and State Boards that will act as executive bodies.
- **The Penalties** under the Bill include: (i) undertaking or advertising commercial surrogacy; (ii) exploiting the surrogate mother; (iii) abandoning, exploiting or disowning a surrogate child; and (iv) selling or importing human embryo or gametes for surrogacy. The penalty for such offences is imprisonment up to ten years and a fine up to ten lakh rupees. The Bill also provides a range of offences and penalties for other contraventions of its provisions<sup>22</sup>.

## VII.II. Lacunae in the Act

### Right to Livelihood

The Supreme Court of India in *Olga Tellis v. Bombay Municipal Corporation*<sup>23</sup> held that the “the easiest way of depriving a person his right to life would be to deprive him of his means of livelihood.” Thus, by banning commercial surrogacy the Act violates Article 21 rights of the many women who are dependent upon surrogacy to bring themselves and their families out of poverty.

### Right to Reproductive Choices

In *K.S. Puttaswamy v. Union of India*<sup>24</sup> the Apex Court recognised that a woman has a fundamental right to freely take reproductive choices, as a part of right to life and personal liberty under Article 21 of The Constitution. The Court reasserted its decision in *Suchita Srivastava v Chandigarh Administration*<sup>25</sup>, according to which reproductive rights include a woman's privilege to carry a pregnancy to its full duration, to give birth, and to subsequently rear children; and these rights encompass of a woman's right to privacy, dignity, and bodily integrity. A complete ban on commercial surrogacy would result in denying women the choice to use their reproductive agency for monetary gain.

### Right to equality

By excluding homosexual couples and live-in couples ,the legislature has overlooked a section of the society is indicative of the fact that the Bill is not in

consonance with the present day modern social milieu that we live in and is too narrow in its understanding. Even the Supreme Court has recognised live-in relationships and homosexuality. As a result the Act discriminates on the ground of marital status and ones sexual orientation.

### **Right to privacy**

Infertility is a stigma in Indian society as result; surrogate pregnancy is kept private and confidential. The requirement of certificate of essentiality of medical indication issued by the appropriate authority is violative of right to privacy which is declared to be a fundamental right by Supreme Court in Puttaswamy judgment.

### **VIII. Conclusion**

Surrogacy is a boon for the commissioning parents but at the same time is a source of exploitation of poor women physically and psychologically and violates basic human rights of innocent children born out of these arrangements. Regulating the practice so as to ensure surrogates are protected against exploitation and protecting the future of children is a welcoming decision of legislature, but banning commercial surrogacy will take away their livelihood. The need of the hour is strict governance and regulations rather than imposing a blanket ban on commercial surrogacy as it will do more harm than good.

---

*Department of Law*

*Panjab University SSG Regional Centre*

*GX9C+86H, Una Road, Bajwara, Hoshiarpur, Punjab, India -146021*

### **References -**

1. *Black's Law Dictionary*, 8<sup>th</sup> Ed. 2529(2004)
2. Available at: <https://www.britannica.com/science/artificial-insemination>(last visited on June 25, 2022).
3. Available at: <https://surrogate.com/about-surrogacy/surrogacy-101/history-of-surrogacy/>(last visited on June 25, 2022)
4. *Supra*
5. **Baby M**, 217 N.J. Super. 313 (Ch. Div.), 525 A.2d 1128 (1987), rev'd, No. A-39 (N.J. Feb. 3, 1988)
6. Government of India, "Report on Surrogate Motherhood Ethical or Commercial"(Ministry of Women and Child Development, Centre for Social Research)
7. Renate Klein, "Where do (surrogate) babies come fromā Surrogacy as human rights violation" available at: <https://rightnow.org.au/opinion-3/surrogate-babies-come-surrogacy-human-rights-violation/>(last visited on June 17, 2022).
8. Available at: <https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC3531011/>(last visited on June 19, 2022).
9. Astha Srivastava, "The Surrogacy Regulation (2019) Bill of India: A Critique" 22(1) *Journal of International Women's Studies*, 140 (2021) Available at: <https://vc.bridgew.edu/jiws/vol22/iss1/8> (last visited on July 5, 2022).
10. Available at: <https://theconversation.com/becoming-a-parent-through-surrogacy-can-have-ethical-challenges-but-it-is-a-positive-experience-for-some-167760>(last visited on June 26, 2022)
11. *The Economics Times*, 26 Feb 2015, available at: <https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/supreme-court-asks-government-to-explain-stance-on-commercial-surrogacy/articleshow/46378518.cmsāfrom=mdr>(last visited on June 18, 2022).
12. 42 Cal. App.4<sup>th</sup> Series 718 (1996)

13. Leslie R. Schover, "Cross-border surrogacy: The case of Baby Gammy highlights the need for global agreement on protections for all parties" *Fertility and Sterility* 102 (2014).
14. Surrogacy in mythology, available at: <https://www.shethepeople.tv/news/surrogacy-in-mythology/> (last visited on July 05, 2022)
15. *Supra*
16. *JT 2008 (11) SC 150*
17. *AIR 2010 Guj 21*
18. *2015 SCC OnLine Ker 71*
19. India: Surrogacy Regulations In Indiaby Zulfiquar Memon available at: <https://www.mondaq.com/india/constitutional-administrative-law/1126150/surrogacy-regulations-in-india> (last visited on July 04, 2022).
20. *The Surrogacy (Regulation) Act, 2021 (No. 47 of 2021)*
21. Available at: <https://www.sconline.com/blog/post/2021/12/27/surrogacy-regulation-act-2021/> (last visited on July 04, 2022).
22. Available at: <https://prsindia.org/billtrack/the-surrogacy-regulation-bill-2019> (last visited on July 05, 2022).
23. *(1985) 3 SCC 545*
24. *(2017) 10 SCC 1*
25. *(2009) 9 SCC 1*

# **Role of Local Government in developing Green Marketing : An Environmental Management Perspective**

---

*Priyanka Mahanta, Amit Kumar Singh*

Green marketing as part of environmental marketing, aims at providing ecofriendly products and which have minimal negative effect to the environment. As environmental issues have now become the biggest concern, and it has become necessary for the marketers public and governments to shift towards “Green” so that they can succeed in the market, as the green products gets more consumer response than the non-green products. Environmental issues have become gradually relevant in both business and public life around the world. Not only our leaders are worried about the worsening of the situation but every average citizen is conscious of the importance of the oxygen level in our atmosphere. Carbon pollution, environmental effects, and ecosystem imbalances are the main environmental problems that have occurred so far, in addition to human activities (Sharma, 2011).

Local governance plays a vital role in any achievement towards development. The problem related to green marketing has held a prime role in which the nations of the universe still desires and strives for. The term Sustainable Development refers to where the present generation uses the resources to meet their needs but without compromising the potential of the future generation to meet their own needs. Economic growth, social inclusion and environment protection and living in harmony are some of the most important elements of the sustainable development and developing green marketing practices is one of them. Our country's people, as well as the rest of the world, are worried about global warming which is a well-known threat. As a result, in this global concern situation, corporate also have taken step towards green marketing to help reduce the harmful impact to the environment. To meet customers' needs and preferences, green marketing focuses on environmentally sustainable products (Akhil et al., 2016). It may be expensive to shift towards green in the short term, but in long run it will be cost effective. Shifting green may not be easy there may be many opportunities for the marketers as well as lot of threats to the marketers.

(Emery, 2012) explains the Sustainable Marketing model where the author exposes the importance of three P's “people, profit and planet” and the three E's

“economic, environment and equity” this model is also known as Triple bottom line. The Triple Bottom Line system helps businesses to measure their progression toward sustainability by evaluating overall organizational efficiency, which includes social and environmental efficiency as well as financial performance.



Figure : The three actors of sustainable green marketing

The 'Sustainable' green marketing became popular in the late 1990s and early 2000s. The importance of green marketing has shifted the marketing landscape. The businesses have now begun to work together promoting their goods by claiming that they are environmentally friendly. The sustainable green marketing practices can see around three actors business and industry, local and national government and civil society.

#### **Objectives:**

Gandhi Ji always tries to involve local bodies in all sustainable development activities. The main objective of this paper is to study the Role of Local Government in developing Green Marketing practices in the light of safeguarding the environment and critically examining the different green marketing approaches used by local bodies for environmental protection.

#### **Methodology**

The present study is exploratory research, and researchers used the descriptive literature survey methods for and all the information collected from journals, books, newspaper, reports and other sources. The researcher identifies different green marketing approaches and logically analysis how local governance bodies are using green marketing practices.

#### **Green Marketing: An Ecofriendly approach**

Green marketing has achieved meaningful results in the form of two published books both titled "Green Marketing". Jacquelyn Ottman (1998). According to Peattie (1999), mainly there are three aspect of green marketing, the first one was called "Ecological" green marketing, and all marketing efforts during this period were focused

on solving environmental issues and have solutions to environmental issues, the second point is that the emphasis was on 'Environmental', green marketing during this period shifted to clean technology, which included the construction of fresh goods that are environmentally friendly and creative issues with waste. The 'Sustainable' green marketing process was the third phase. It became popular in the late 1990s and early 2000s. The importance of green marketing has shifted the marketing landscape. The businesses have now begun to work together promoting their goods by claiming that they are environmentally friendly. The green marketing is mainly based on 4Ps.

**Product-** Concerns about the climate have prompted certain existing products to be updated, and in some cases, the nature, composition, or manufacturing of the products has been altered (Peattie & Charter, 2003). Designing goods with ecological goals in mind reduces resource use and waste while increasing productivity. Green products aid in the preservation and improvement of the natural world significant decrease or omission of the use of hazardous products, pollution, and wastes (Ottman et al., 2006).

**Price-** Price is one of the most crucial and important element of marketing mix as customers somehow is more conscious regarding price of a product. One of the most challenging aspects of green marketing is green pricing. Manufacturers would be motivated to build more sustainability if social and environmental costs are exposed in the pricing of the product and the buyer agrees to pay the given price. Corporate entities that incur such costs and pass them on to consumers face two risks: being accused of misusing customers' preferences and seeing their prices rise compared to their rivals (Durning, 2011).

**Place-** Making products available to the customers in a affordable manner is another important factor for the growth of the company. They should try to provide the goods in the right place at a right time and also in a efficient manner where there is less harm to the environment.

**Promotion-** Promoting the product in a effective way is the key towards success, green promotion here refers to that the company should try to advertise or promote the products where they lay down their concern for environment. This is normally accomplished by stressing the interpretation of the firm's promotional strategies, as well as by collaboration and association with social or environmental organizations (Wong & Stoneman, 2009).

Sharma et al., (2015) believe that in the current climate, it is critical to inform and raise customer consciousness about environmental issues. The corporate responsibility, also known as Corporate Social Responsibility, is to teach the community about environmental hazards. This does not happen right away, but it will happen over time. Young people today are much more conscious of the environmental protection. They want to lessen the negative effects of using services and products that are harmful to the environment.

In her article "How to Boost Your Brand's Eco-friendly Image," Watkins.J(2016) proposed some useful tips to help a company boost its eco-friendly image. The following are a few of them: Use recycled practices, make recyclable goods, mark them with acceptable sustainability symbols, inform consumers about the advantages of eco-friendly commodities, use recyclable and reusable packaging materials, raise awareness

of the company's environmental activities, and get customers interested in the company's efforts. Khan.J (2013) in his article, "A Report on Consumers Attitude toward Green Marketing and Green Products." Consumers are unaware of the advantages of green goods, organizations are not seeking to produce more environmentally friendly products and packaging. People are becoming more aware of their roles and obligations in relation to the community. Companies must use ads to inform customers about the benefits of green products. Consumers are willing to pay a higher price for environmentally friendly goods. Green marketing's effectiveness is measured by customers' perceptions and behaviours toward green goods.

In his research in the United Kingdom, Donaldson (2005) found that consumers' attitudes toward the environment had improved in general. Consumers' strong confidence in well-known commercial brands, as well as their feeble actions in response to "green" arguments, was the primary reasons for consumers' inability to perceive their concerns outside the atmosphere in their behaviour, according to this report. P. Oyewole, (2001). He makes a conceptual connection between green marketing, sustainable development, and industrial ecology in his paper. It claims that in the practice of green marketing, there should be a greater sense of environmental justice. Finally, a critical discussion is proposed to decide whether consumers are mindful of environmental justice and are able to absorb the expenses involved with it.

#### **Local Governance: Key to sustainable development**

As a term, local government has numerous definitions and interpretations, depending on who is interested. Eneanya (2010) clarifies that it is possible to generally interpret local government as Organisational bodies comprising regions that are subject to the central authority and which are subordinate to the centralized power only acts within the authority assigned to it by higher-level government policy or directives. The above view of local government emphasises its practical obligation, which puts further attention on the topic of multidisciplinary growth in which it plays a key role. Oyewo (2003) views Local government from a development point of view. It further establishes the basic role and duties of local government, whether unitary or national, in any sort of political structure. These roles are so important that if local government does not work it will lead to low level of sustainable development focusing on environmental issues.

It is possible to interpret the idea of sustainable development in many different ways, but at its heart is a development framework that attempts to balance unique, and often going to compete, needs against such a conscious of the environmental, social and economic constraints that we as a society face. The goal or mission therefore, the priority of Sustainable Development is steady connection between human activities and the natural world, which does not reduce developing nations future generation chances of enjoying a quality life as a generation of the present.

#### **Green Marketing for Sustainability**

Meeting current needs without jeopardizing future generations' ability to meet their own needs is what sustainable development is all about the World Commission on Environmental Development (WCED) says (1978). The importance of incorporating economic and environmental considerations into decision-making through regulations that preserve the value of agricultural activities in developing countries and also towards

protecting environment is a common theme throughout this sustainable development strategy. Green marketing's end product is environmental protection for current and future generations. Corporates that are more involved towards social responsibility are more into green marketing, they try to use the green marketing practices to have a healthy growth and also provide sustainability. Companies are gradually finding that displaying a high degree of social responsibility boosts brand recognition among socially conscious consumers, and green ads can help them do so. The major threat towards sustainable practices is the cost of "greenness" which does not incorporate for short-term goals.

**Social Responsibility-** Corporations' social responsibility is a term wherein they consciously address social and environmental issues in their operating processes and interactions with their stakeholders. To put it another way, social responsibility is the openness with which companies manage environmental, economic, and social issues in order to enhance relationships among workers, consumers, and beneficiaries (Jones, Clarke & Hillier, 2007). In order to explicitly answer to their beneficiaries, prominent companies, as responsible corporations, follow a very ethical process. The company with the largest market share benefits from economies of scale, brand validity, sales channel control, and, most likely, a specific marketing mix. Indeed, high-market-share corporations may vary from low-market-share corporations in terms of various aspects of market share, since high-market-share corporations may have better management or experience than others. High experience, the right business, and the right products can lead to increased market share and profitability.

### **Green Marketing and Local Governance**

Green marketing is a practice adopted by the firms in order to show environmental friendly to just gain customer attention and are just making false and misleading statement to the public and exploiting the customers for their own profit, as green products get more attention than non green products and sometimes the customers get exploited thinking it to be green products

Lack of standardization in this green marketing process, where there is no control board to keep a check on the proper adaptation of green marketing practices by the firms and that's the reason why there is more of green washing practices going on, as there is no standardization of products being green or not in such a situation the role of local bodies becomes very important.

As the cost for green marketing adaptation is high in short run so many firms are not still adopting these practices and due to its high cost of installation many firms are lacking behind. As it's a emerging concept in developing country like India, customers are not aware of the concept, but still many urban customers are aware of the merits of green products. Customers needed to be educated about it so that they can understand the usefulness of it. Indian customers have already adopted in a greater way towards herbal products and ayurvedic products where there are no harmful chemicals used and save for use. The local government can exempt some local taxes as well as they can educate the customers.

**Preventing Green Myopia-** Focusing on customers is the first law in green marketing. The main reason why people purchase such goods in the first place is because of their advantages. If its right, one can persuade customers to switch brands or even pay more

for the greener option. It won't help if a product is produced that is completely green in every way but fails to meet customer satisfaction requirements. Green myopia can result as a result of this. Furthermore, if green goods are priced too high, they will lose consumer acceptance. Government has a significant role in preventing green myopia.

As green marketing is a new concept, local government needed to educate about the positive impact of it towards the environment and help customers to change their mind towards eco friendly products (Mahanta et al 2022). As we have seen that there are lots of challenges that the marketers need to come through while adopting green marketing practices. Achieving sustainability through this practice where the ecology and economy is bounded together is challenging but will have a positive impact in the near future.

### **Conclusion:**

Green Marketing is a mechanism to achieve sustainability and environmental protection, where sustainability has become a great issue in the world and the world has become more conscious towards the environment protection. Green marketing is still in the evolving phase in India, but there are lots of opportunities laying down for the marketers to use this practice, and big change if there is a strict layout or protocol to be followed for green marketing and whole if the world uses that protocol, which needs to be support from local governments.

Even if marketers are clever enough to persuade the customers to buy the products but they should not only see from one dimension as green marketing is much wider concept than just marketing, as here it involves lot many dimensions like ecofriendly, social responsibility, sustainability etc so, it has a lot of dimensions to look over. As there is no such government protocol for green marketing there can be some protocols to set up so that the marketers turn green and even the customers can pressure the marketers to be ecofriendly. As Indian customers are somehow aware of green products and also accept products that are chemical free and have no harmful effect, but there is a need to change the customer buying behaviour so that they shift their mind towards ecofriendly products. Customers needed to be well educated about the merits of green products so that they can have a better understanding, henceforth role of local governments are very crucial.

---

*Department of Management, Mizoram University Aizawl &  
USTM Meghalaya  
Ri-Bhoi, Techno City, Killing Road, Baridua, Meghalaya - 793101*

*Department of Rural Management, Babasaheb Bhimrao Ambedkar  
University, Lucknow - 226025*

### **References -**

- Akhil, A., (2016). *Green Marketing to Meet Consumer Demands and Sustainable Development- Challenges and Opportunities. International Journal of Advanced Trends in Engineering and Technology (IJATET)*, 1, pp.271-284
- Donaldson, R. H. (2005), —*Green brands*, NZ Marketing Magazine.
- Durning, A.T. (2011). *How much is enough Earths van*, London.

- Emery, B. (2012). *Sustainable Marketing*. England: Pearson.
- Eneanya A. N. (2010). *Local Government Administration in Nigeria: A Comparative Perspective*. Lagos: University of Lagos Press.
- Jones, P., Clarke-Hill, C., Comfort, D., & Hillier, D. (2007). *Marketing and corporate social responsibility within food store*, *British Food Journal*, 109(8), 582-593
- Khan J. (2013) *A study on Consumers attitude towards Green Marketing and Green Products*, *International Journal of Advanced Trends in Computer Science and Engineering*, Vol. 2, Issue- 6, pp. 258-268
- Ottman, J. (1998). *Green marketing: Opportunity for innovation*. USA: NTC Business Books.
- Oyewo. T.A (2003).: *The A to Z of Local Government in Nigeria*, Ibadan: Jator Publishing Company
- Oyewole, P. (2001). *Social Costs of Environmental Justice Associated with the Practice of Green Marketing*. *Journal of Business Ethics*, 29(3), Feb, pp. 239-252
- Peattie, K & Martin, C. (2003). *The Marketing Book*, Butterworth Heinemann, Publication.
- Peattie, K. (1999). *Green marketing*. London: Macdonald & Evans.
- Mahanta, P., Singh, A.K., Carolyne, V., (2022). *Role of Sustainable Communication in Green Marketing Strategies* *Journal of Positive School Psychology* Vol 6(6) pp 8517-23
- Sharma Y (2011). *Changing consumer behaviour with respect to green marketing—a case study of consumer durables and retailing*. *International Journal of Multidisciplinary Research*, 1(4), pp.152-162
- Sharma, N.K. Pandey, N. and Rubina Saji (2015). *Green Marketing: A Study of Emerging vs Opportunities and Challenges in Indian Scenario*. *International Journal of New Technology and Research*, 1(4):51-57.
- Watkins Jeriann (2016) *How to Boost Your Brand's Eco-friendly Image*, *Marketing Prof.* vol. 1, pp-1-5
- Wong, V. Turner, W. & Stoneman .P. (2009). *Marketing Strategies and Market Prospects for Environmentally Friendly*. *Consumer Product British Journal*.

# **Expounding the Conflating Terms on Working Remotely**

***Swasti Singh, Yashwant Singh Thakur***

In recent years there is an immense increase in ways of working remotely all over the world due to the increase in technology and remaining connected. The earlier Indian economy was based on a barter system where people worked through their homes, but working ways changed after the Industrial Revolution. Workers moved out of their homes and started going to factories and offices. To provide employees with better work-life and improved means of communication employees were given other options to work remotely wherein they can work from their homes or any other places. After years of the need for change in working, office automation has begun with the usage of technology, computer and communications patterns changed to support office functions. The use of technology removed the constraint of location and physical space in real-life scenarios. With the advent of technology and means of communicating using technology, various options of flexible working and telecommuting have increased like Work from Home (WHF), Remote Work (RW), Home Based Working (HBW), etc. are being adopted by both employees and organizations. All these terms are conflated but there is a slight difference among them. Although teleworking was a term used for decades. define teleworkers as employees and self-employed workers who use ICT devices (in particular, smartphones, tablets, laptops, and desktop computers) to perform their work at least 'around 3 4 of the time', and who work in at least one other location than their employer's premises at least several times a month.

States that work from home is an arrangement where an employee performs their work responsibilities and works at the home using information and communications tools. Also, Work from home (WFH) is defined as a working day that is spent in the home environment whereas, remote work, defined here as work that occurs at home or any location that is not a formal employer site (such as a café or third. party co-working space) on a full-time or near full-time basis (i.e., four or more days a week). stating that WFH is different as remote working allows an employee to work from anywhere. considers Home-based working, a dichotomous term for both home-based producers and workers. As per the Government of India (GOI) in 2008 accepted home-based workers are a) contributing and helping family workers or own-account workers involved in the production process of in their homes, for the market, and (b) workers working in their

homes for remuneration, resulting in a product or service demanded by the employer(s), irrespective of the provision of materials and other resources. Most researchers consider part (b) of the above definition as it talks about the employees.

It becomes pertinent to understand how working remotely can be functioned by the organizations This paper highlights the transition of working ways and why it is today's demand.

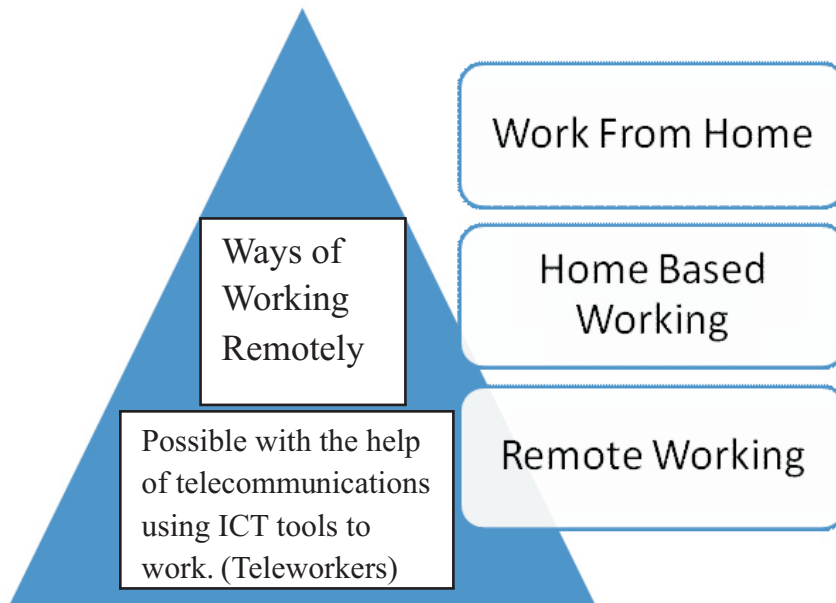


Fig 1.1 Ways of Working Remotely

Source (Self Developed)

Fig 1.1 explains different ways of working remotely with the help of telecommunications. So Telecommuting is replacing commuter's travel with telecommunications and telework is about using telecommunications but doesn't talk about travel so it is imperceptibly different. Therefore, when we talk about an employees' ways of working remotely, there can be options to Work from Home (visiting the office at times and working from home only); Home-Based Working (where they work for remuneration according to the demand and service of the employer, they may use telecommunications to the least); and Remote Working (where there is no location constraint and one doesn't go to the workplace. These terms are different but interchangeably used.

The objective of this research paper is to explain all the critical aspects and terms related to working remotely while also differentiating the terms used interchangeably with the support of literature. It states the differentiation of all the ways of working remotely considering how it is important in today's time and should not be conflated. The importance of working remotely and a brief history of how working remotely came into existence are discussed in the paper.

### Background of Working Remotely

Employees after the industrial revolution had started going to a traditional setup of a workplace but soaring prices of gasoline made commuting an expensive way to work therefore, the transition from traditional to working remotely began with (WFH) policies in the 1970s. The attractiveness of telecommuting due to its cost-saving feature for both employees and employers is stated earlier in the work of .Due to the intervention of automation working remotely was possible provided the required job, individual and organizational characteristics are suited for the job . To have better communication one can have video conferences unlike before where one can send only business emails lacking personal touch but social media platforms like Facebook, Twitter, etc acts as a distraction for the employees.

Although various studies found that working remotely was also a good way of working, organizations like yahoo, HP, etc had stooped it, way back in 2010, concerned about productivity as a negative impact . But due to the covid-19 pandemic working remotely was the only way of working left. Only the jobs required to go to the workplace were being done at the office by maintaining low or no contact. To maintain social distancing flexible ways of working were considered by the organizations to work without hampering their main business.

There will be a rise in such jobs as there are various sets of workers who are working in WFH-friendly jobs. Workers working in WFH-friendly jobs within Asia including Turkey is 30.1 percent .

### Importance of working remotely

Says more employees will be interested in opting for Work from Home due to the increase in using technology to work. Therefore, working remotely and the option to work will increase. WFH may become a choice of both employees and employers as it is more beneficial in many ways. stated Women are having a positive response toward WFH and employees are inclined toward Flexible Working Arrangements (FWA). Employees opting to work remotely, creating a new set of workers, and changing inorganizational structure make it more relevant to understand these terms. Although lack of proper guidelines has created disinterest among the employees at places . There are various benefits to considering employers' points of view such as immigration issues, cost to run an office, recruit the best employees globally makes these options more relevant, especially in the era of knowledge workers. Employees looking for an enriched life have to fulfill their commitments and are over the age of 30 years looking for flexible ways of working.

Being an advantageous way of working inclination towards working remotely is there among employees from all various sectors. 60 percent of the total employees surveyed preferred remote working.

Employees preference to work

| Remote work | Hybrid work |
|-------------|-------------|
| 64 percent  | 45 percent  |

Fig 1.2 Employees' Preference to Work

Source

Home-based workers when added to the probable workforce working in unorganized sectors of beedi and embroidery show growth of 201 percent nearly as shown in Fig1

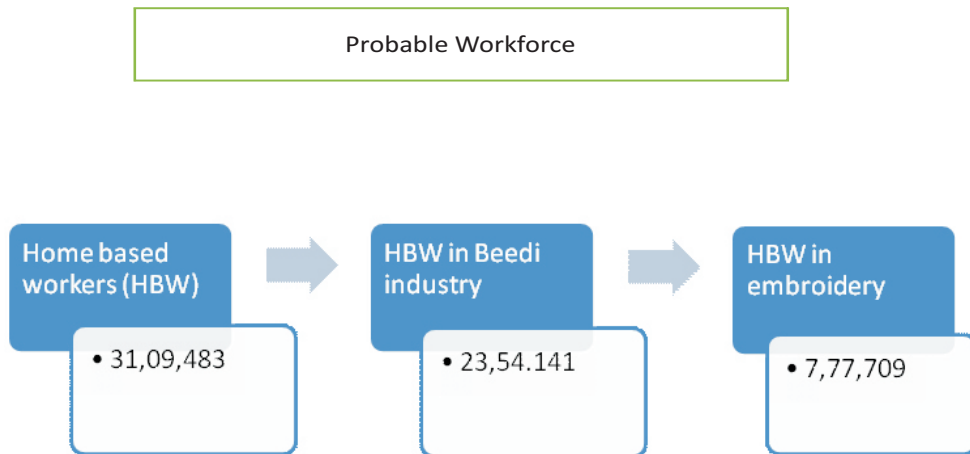


Fig1.3 Growth of Home-Based Workers

Source

Employees from various sectors are involved in Home-Based Working in India. The Figure below involves the summation of data including identified and probable home-based workers.

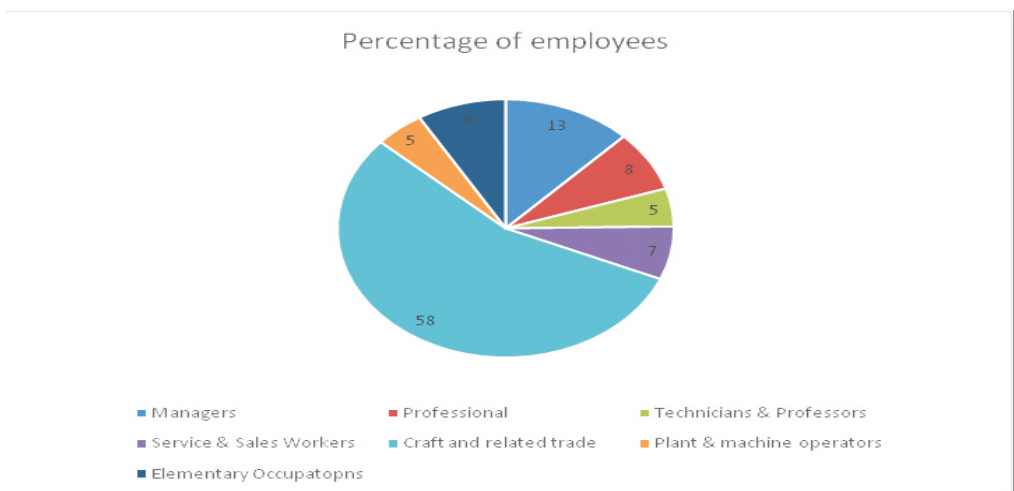


Fig 1.4 Percentage of employees involves in Home-Based workers from various trades

Source

## Literature Review

The concept of telecommuting has emerged way back in 1976 when studied how it could be a better alternative to commuting. They suggested that employees working away from the office or in different cities, work in teams through means of telecommunication and stay connected. This is a cost-effective measure as it saves the expenses incurred when employees stay in the office or the benefits that are being given to them when they commute to the office space. But said, earlier it wasn't considered a suitable option for many jobs considering the importance of being present but things have changed post-pandemic. Although technological feasibility and coordination are essential for working from home, keeping pace with technology and suitable management practices is a task. mentioned that physical (IT Tools and workplace) and mental (working without disruptions) environment is a must for any such worker. also suggested that in the future WFH is a feasible option as the factors supporting advantages and benefits are more critical than those impacting weakness and threats of working from home. But getting an opportunity to work from anywhere i.e. remote work is more feasible for employees as they were able to work in their preferred locations without any interruptions, or can create their work environment unlike WFH.

Even the management of such diverse and virtually connected teams is difficult and challenging for organizations. highlighted the importance of self-efficacy theory in the management of such themes as people with high self-efficacy will positively react to the challenging situations but people with low self-efficacy may get depressed and quit so virtual organizations must focus on communication and investment in training and support of employees.

(Rani & Unni, 2009) in their extensive research considered micro and macro factors for growth in home-based work in India, which suggested that it is beneficial as it generates income in households and gradually the wages may improve, it also brought the participation of women workforce who were not able to work due to mobility and social issues.

Understanding the relevance and lack of policy Government of India (GOI) included provisions for work from home employees in their gazette to the ministry of labor and employment in the year 2020. Although a comprehensive set of rules and regulations to protect such employees are still lacking rules and regulations as per the industry are must because every industry is different in terms of working ways. It is difficult to electronically replace the work in the hospitality and tourism industry, but in a knowledge-based industry where educated employees work, it becomes feasible. Thus, the provisions for such workers who are working remotely are required according to their needs and the industry in which they are working.

## Concluding discussions

Telework was performed for a long time in the world and in India but after liberation and with the adaptation of technology in work, organizations have started office automation reducing the energy and time of their workforce. Over the years when communication became easier with the help of technology, different avenues to work have started. One does not require to sit in one place and work, any employee can work

from anywhere. This flexibility to work from anywhere has increased manifolds and created a lot more work opportunities for people looking for employment. Employees and millennials in India are looking for such job opportunities. As per the survey 64 percent of the workers preferred remote working and 45 percent of workers prefer a hybrid, model of work. Location is not a constraint anymore. Virtual teams and organizations are hiring people irrespective of geographical boundaries. Work from home, remote working and home-based working has become a part of telecommuting. These conflating terms for working remotely are expounded in the paper with the help of literature.

### **Practical Implications and future direction**

Telework was implemented in offices but was not rampant in India. With multinational firms and the application of technology working ways have changed but every organization has its own set of rules concerning alternative methods of working. The government of India has issued guidelines to protect employees working from home during the corona period but they also need more comprehensiveness as individuals will continue to work like this. A study on employees resisting work like this needs to be trained and counseled to work in this way. Organizations need to make and adhere to policies for such workers protecting their rights and making them part of their organization. Exploration of various factors to continue working from home needs to be studied (Anderson & Kelliher, 2020) to frame policies accordingly considering the diverse workforce.

---

School of Commerce and Management  
Doctor HariSingh Gour Vishwavidyalaya  
Sagar - 470003 (M.P.)

### **References -**

- Aithal, P. S. R., Shailashree, V. T., & Acharya, P. S. (2015). AN EMPIRICAL STUDY ON WORKING FROM HOME A POPULAR E-BUSINESS. *International Journal of Advance and Innovative Research*, 2(April), 18.
- Albion, M. J., & Chee, M. (2006). Flexible Work Options within the Organisational System. *Australian Journal of Career Development*, 15(2), 42–52. <https://doi.org/10.1177/103841620601500208>
- Anderson, D., & Kelliher, C. (2020). Enforced remote working and the work-life interface during the lockdown. *Gender in Management: An International Journal*, 35(7), 677–683. <https://doi.org/10.1108/GM-07-2020-0224>
- Armanda Cetrulo, Guarascio, D., & Virgillito, M. E. (2020). The Privilege of Working From Home at the Time of Social Distancing. *Intereconomics*, 142–147. <https://doi.org/10.1007/s10272-020-0891-3>
- संसद-संसद.-सं.-01012021-224080, Pub. L. No. REGD. No. D. L.-33004/99, 2020 1 (2020).
- Basu, S. (2022, February 24). Remote work model sees a rise in compensation for employees in India: Indeed Report. *The Economic Times*. <https://economictimes.indiatimes.com/industry/services/education/education-spend-rose-to-4-6-of-gdp-target-6-javadekar/printarticle/68245671.cms>
- Bhatia, D., & Mote, A. S. (2021). Work from Home (WFH): The New Normal. *Work from Home (WFH): The New Normal*. *International Journal of Future Generation Communication and Networking*, 1(May), 1905–1916.
- Bhattacharyya, S. J. and U. (n.d.). Work from home: Understanding the gaps in India's regulatory framework. *The Times of India*. Retrieved April 19, 2022, from <https://timesofindia>.

- indiatimes.com/blogs/voices/work-from-home-understanding-the-gaps-in-indias-regulatory-framework/
- Carillo, K., Cachat-Rosset, G., Marsan, J., Saba, T., & Klarsfeld, A. (2020). Adjusting to epidemic-induced telework: empirical insights from teleworkers in France. *European Journal of Information Systems*, 30(1), 69–88. <https://doi.org/10.1080/0960085X.2020.1829512>
- Choudhury, P. (Raj), Foroughi, C., & Larson, B. (n.d.). Work-From-Anywhere: The Productivity Effects of Geographic Flexibility. *Strategic Management Journal*. <https://doi.org/10.1002/smj.3251>
- Choudhury, P. R. (2020). Our Work by - from Anywhere Future. *Harvard Business Review*, 1–18.
- Holgersen, H., Jia, Z., & Svenkerud, S. (2021). Who and how many can work from home? Evidence from task descriptions. *Journal for Labour Market Research*. <https://doi.org/10.1186/s12651-021-00287-z>
- ILO. (2020). An employers ' guide on working from home in response to the outbreak of COVID-19. ILO publications.
- ILO. (2021). Working from home From invisibility to decent work.
- Juhász, R., Squicciarini, M. P., & Voigtländer, N. (2020). Away From Home and Back (NBER Working Paper No. 28251; NBER WORKING PAPER SERIES). <http://www.nber.org/papers/w28251%0D>
- López-Igual, P., & Rodríguez-Modroño, P. (2020). Who is teleworking and where from? Exploring the main determinants of telework in Europe. *Sustainability (Switzerland)*, 12(21), 1–15. <https://doi.org/10.3390/su12218797>
- Mukherjee, S., & Narang, D. (2022). Digital Economy and Work - from - Home? The Rise of Home. *Journal of the Knowledge Economy*, 0123456789. <https://doi.org/10.1007/s13132-022-00896-0>
- Nilles, J. M., Carlson, F. R., Gray, P., & Hanneman, G. (1976). Telecommuting—An Alternative to Urban Transportation Congestion. *IEEE Transactions on Systems, Man and Cybernetics*, SMC-6(2), 77–84. <https://doi.org/10.1109/TSMC.1976.5409177>
- Nurul Adilah Saludin, Noorliza Karia, H. H. (2013). Working from Home ( WFH ): Is Malaysia Ready for Digital Society? *Entrepreneurship Vision 2020: Innovation, Development Sustainability, and Economic Growth*, 981–989.
- Olson, M. H., & York, N. (1983). Remote office work: changing work patterns in space and time. *Communications of the ACM*, 26(3).
- Purwanto, A., Asbari, M., Fahlevi, M., Mufid, A., Agistiawati, E., Cahyono, Y., & Suryani, P. (2020). Impact of Work From Home ( WFH ) on Indonesian Teachers Performance During the Covid-19 Pandemic? An Exploratory Study. *International Journal of Advanced Science and Technology*, 29(5), 6235–6244.
- Rani, U., & Unni, J. (2009). Do Economic Reforms Influence Home-Based Work? Evidence from India. *Feminist Economics*, 15(3), 191–225. <https://doi.org/10.1080/13545700902835586>
- Soroui, S. T. (2020). Understanding the drivers and implications of remote work from the local perspective: An exploratory study into the dis/reembedding dynamics. *Technology in Society*, 1–28. <https://doi.org/10.1016/j.techsoc.2020.101328>
- Staples, D. S., Hulland, J. S., & Higgins, C. A. (1999). A Self-Efficacy Theory Explanation for the Management of Remote Workers in Virtual Organizations A Self-Efficacy Theory Explanation for the Management of Remote Workers in Virtual Organizations. *Organization Science*, 10(6), 758–776. <https://doi.org/http://dx.doi.org/10.1287/orsc.10.6.758>
- Thorstensson, E. (2020). The Influence of Working from Home on Employees ' Productivity. Karlstad university.
- Vyas, L., & Butakhieo, N. (2021). The impact of working from home during COVID-19 on work and life domains? an exploratory study on Hong Kong. *Policy Design and Practice*, 4(1), 59–76. <https://doi.org/10.1080/25741292.2020.1863560>

# **Subaltern Space and the Politics of Place: A Tale of Ethnic Exclusion of the Tea-tribes of Eastern Himalayas**

---

*Mehebab Alam, Maya Shanker Pandey*

Situated in the lush green hills of the Eastern Himalayas, the Dooars is the most formidable region in India for tea plantations. Colonial planters had explored the inaccessible terrains of the great Himalayas and planted tea bushes across the region. Since then, it had attracted the attention of the outsiders from the greater world. This region is largely known for its tea, timber, and tourism in today's India. Tea in this region however has not grown in a day. It has a long and contentious history. Tea had travelled to India from the Chinese Peninsula through colonial enterprises and been densely concentrated at the Himalayan foothills of Dooars due to its favourable climatic conditions. The tea plantation was first introduced in colonial Assam and then in Darjeeling in 1856. It quickly became the largest organized industry and brought about a marked demographic change in comparison to other provincial districts of the then Bengal Province. In the postcolonial national narrative, the location of this region has been largely defined by the account of colonial ethnographic writings. Various forms of narratives, tourist brochures, films, music, and arts have romanticized tea gardens in the region. In most of these representations, the workers working in the gardens have either been brushed aside or objectified through aesthetic enframing. The deep undercurrents beneath it have in most cases evaded public attention. This paper is an attempt to understand the tribal population in the context of their everyday struggle for recognition in the land they have been inhabiting for so long.

## **Locating the Terrain**

There is a lack of materials and resources to construct the history and identity of this region. The early history of this region is more obscure than that of the entire history of Bengal and Assam. The whole terrain presents a wide diversity of tribal, marginal, ethnic, non-ethnic, indigenous, and migrant communities with their distinct way of life. The public perception is that it's a backward area, infested with backwardness and primitive practices. Historically, human habitation had started late in this area in comparison to other parts of the Eastern Himalayas. Covered with deep forests, under the Himalayan ranges, it had been a sparsely populated place since time immemorial.

Through a long course of migratory history, Sino-Tibetan and Tibeto-Burman ethnicities of Mongoloid origin along with the Aryans and Austriacs had entered this land over the centuries, resulting in mixed ethnicities. Cultural conglomeration over the centuries is a characteristic feature of this region. Social formations in this region are marked by pre-colonial, colonial, and post-colonial transitions. Various forms of Hinduism, together with Buddhism, Islam, Christianity, and Animism have spread their distinct influence over this land. The spread of Christianity was a significant phenomenon among the tea tribes. Christian missions entered this land along with the line of tea plantations. Christians within the tea gardens are mostly the followers of Roman Catholicism, though the Protestants have a significant presence. History reveals that the conversion into Christianity happened mostly within the tribal population. Also, the Rabha, Mech, Gorkha, and Bodos were converted. The conversion did not happen within the Bengalis though they consist the majority of its population. In today's time, nearly half a million Christian population and around a thousand churches are visible here. Even though the Christians here are the religious minorities. Austric-Arya-Dravidian and Mongoloid are the cultural identity of the Dooars, which was built over centuries. Mech, Khen, Koch, Rava, Rajbanshi, and some other tribes had entered this land on the eastern side of the territory, while the Gorkha or Nepalese, Lepcha, and other hill tribes arrived through the western periphery. Due to large migration from different corners of the surrounding region, it became an ethnolinguistic hotspot. The demographic pattern more or less remained unchanged till the colonial planters showed their interest in these regions. It was the last addition to the British Raj in India under the Bengal Province. Before 1864, it was under the reign of the Bhutan Monarch. Through the Sinchula Pact in 1864, Jalpaiguri came under the British colonial regime along with Kalimpong in Darjeeling. The territory of Western Dooars was formed between the rivers of Teesta and Sankosh. In the meantime, Warren Hastings appeared as the Governor of the East India Company to rule over this region and entered into power politics with the local rulers. Almost all the deserted lands, pastures, and forests were occupied for tea plantations. Roads and rails were built along with this. A large number of people had arrived as indentured labourers to work in the tea gardens, mostly from Chotnagpur, Purulia, Manbhum, Singbhum, and other parts of the tribal belts. In the course of time, they permanently settled themselves in the tea-growing areas, cutting all contact with the outside world.

### **From Nomads to Labours**

The introduction of tea plantations necessitated two basic conditions, large-scale cultivable land, and cheap labour. This area was sparsely populated hence the local labour was not sufficient. Moreover, the planters were inclined to the local labours as they had better bargaining power. Those who were residing on this land were hardly interested in this new enterprise. Even if some showed initial interest, they were dissuaded by the colonizer's policy of meager wage. The equation started changing with their plan to outsource manpower from the hinterlands of India. They adopted a policy to import labour force from the draught-stricken regions of middle India, particularly from the tribal belts as they were most vulnerable in their existence. Men and women from different tribal families were brought into these plantations with the promise of a better fortune, a secure job, and a good income. Among them, the Santhals were the largest in

number as they formed the most underprivileged section of the society. Agents who were locally known as 'arkatis' (Bhowmik, 239) were employed to fetch people from different tribal areas. They used to receive a bounty amount of 100 - 120 rupees per person to bring them into these plantations whereas the workers had been paid 2.5 to 3 rupees in a month along with a small quantity of food grains. For five long years, they had to work in a tough condition under the 'sardars' and for staying several years in an alien environment, gradually they got alienated from their land and became rootless. These people brought from far-flung areas hardly had any say over anything in these tea gardens. The control over the plantations had always remained in the hands of colonial masters. If we analyse the cotton plantation in America or sugarcane plantation in the Caribbean, Mauritius, and Fiji, the same patterns were followed. The past of these tribes was nomadic, tribal, and non-literate communities that came down to a chain of labour ecosystem from generation to generation. "These workers are largely descendants of immigrants who were brought to these areas to work as plantation labour a few generations ago and are now permanently settled with little or no connection to their places of origin" (Bhowmik 243). In general, the plantations were the products of colonialism and in postcolonial situations, it remain so. If we analyse the history of indentured labourers for hundred and fifty years in the tea gardens, it would be visible that these so-called tea tribes or tribal populations gradually became marginal in Dooars' ethnoscares. The Indian nation-state has more or less overlooked these ethnic minorities in its process of cultural and political recognition, despite the fact that they are made a part of the constitutional and institutional framework. No systematic and recorded history has so far been written on the tea tribes of this region. The problems, prospects, and challenges of these so-called Adivasi or tea-tribes need to be heard and understood in the context of India's multi-ethnic mosaic.

### **The Story of Social Exclusion**

This paper intends to explore the lived conditions and experiences of the workers in tea gardens who under various nomenclature have been defined as Adivasi, tea-tribes, and ex-tea tribes. The term 'tea-tribe' came into existence from the 1990s and applied to the tea garden workers in Assam, mostly consisting of Adivasi or tribal ethnicities who through a long course of migratory history came to Assam in the form of indentured labourers. It attempts to explore the socio-cultural, economic, and political position of Oraon, Munda, Kharia, Santhals, and other tribal groups in the tea gardens who forms the 'nation from below' (Biswas 231). Also, ethnography guides as an agenda to understand the cultural location of ethnic groups lost in the periphery of 'ethnoscares' (Appadurai 296). The process of social exclusion is visible in all the spheres of tea gardens. "The social exclusion is a process of systematically discriminating against scheduled groups and keeping them outside the power centers and resources" (Tirkey). Ethnic exclusion is also the same process where systematic discrimination against the smaller ethnicities and tribal groups is visible across the globe and throughout the entire history of humanity, it's a prevalent phenomenon. "It is the process in which individuals or the entire population of a community are systematically blocked from (or denied full access to) various rights, opportunities, and resources that are normally available to members of a different group" (Tirkey). So, the notion of ethnic exclusion is

synonymous with the notion of rights. In the tea gardens, some sections of society, particularly the tribals are forced to remain in isolation and deprived of the rights to access socio-cultural and economic opportunities. Despite being awarded the status of Scheduled Tribes, they largely remain outside the spheres of development. Age-old stagnation, illiteracy, lack of resources, unproductivity, hunger, and deprivation are the visible factors that forced them to remain in a backward stage. Even the socialist and progressive political establishments, derived through the communist and socialist traditions have failed to uplift them in a social hierarchy. Their condition remains unchanged, bearing a witness to 'the wretched of the earth' (Fanon). It fails to meet the problems, prospects, and challenges of these myriad tribes in a globalized world. "If Indianization for Sri Lankans, Vietnamization for the Cambodians, Russianization for the people of Soviet Armenia and the Baltic Republics" (Appadurai 295) then certainly the dominant Bengali and Nepali influence is playing the role of a big brother over the smaller ethnic communities. They are: "a minority in a majority world" (qt. in Mishra 76).

### **Deprivation and Discontents: Mirroring Life in the Tea Gardens**

It is an everyday scene at the tea gardens that on every morning around seven o'clock, men and women, in hundreds and thousands, fling towards tea gardens to work for eight long hours with a short break at noon. Everything is done by the people and it's much needed to understand the emotions of the people. Labourers are the main stakeholders in tea gardens as it's a labour-intensive industry. It's the women who are the backbone of the tea industry. More than sixty percent of the workforce consists of women alone. Women outnumber men as they are more skilled in plucking tea leaves. This labour force mostly comes from tribal women, who through a chain of labour ecosystem served these tea plantations throughout the ages. They are very simple. The comfort of financial well being or a decent livelihood is beyond the reach of these women who come from the most deprived and marginal sections of society. They procure the finest quality of tea yet they don't have the privilege to enjoy its brew. The whole body of subaltern studies and the philosophy of feminist liberation are remarkably silent over the persisting issues of women's empowerment in the tea gardens. Though socialist feminism focuses on the oppressive structure of deprivation of women, it failed to register various voices that dwell on the periphery of nation-space. Though the provisions of Labour Law have mandated minimum wage, standard dwellings, education, health, drinking water, sanitation, and other facilities from time to time, in reality, these things are poles apart from the workers. Everywhere it depends on the goodwill of planters and managers. They are forced to work with a minimum wage under temporary arrangements. Hunger, malnutrition, and the loss of lives are always recurring events in the tea gardens and often make newspaper headlines. Debates, discussions, and reports over media outlets have failed to bring any significant change into the lives there. The situation goes unchanged. Health and education are the most neglected in tea garden areas and throughout generations, they remain non-literate. Even all the means of modern lifestyle have failed to bring alteration in their ethnic way of life. Without a sense of knowing their roots, identity, and democratic rights, they are lost in the world, largely unaccommodated, and deluded. The dance of democracy and the existing political order has made them extremely vulnerable in various spheres of life. The condition of Adivasi and other ethnic

tribes remain unchanged since independence. The ethnic life-worlds have made them unaccustomed to a modern world. In the eyes of an outsider, they remain an ethnic specimen, bearing age-old features of primitivism. Understanding and preserving tribal culture is very critical, particularly when it comes to the tea gardens of North Bengal as the life and lore of these tribes have not been documented. They have lost in the past so many indigenous, cultural and social practices. A rich reservoir of knowledge on the traditional medicinal practices is about to eliminate. The journey for higher studies is always difficult for the students from these tea gardens. In the case of school children, the dropout rate is much higher in comparison to the other regions of the nation. They are stranger at home as the majority of them don't possess land rights. Class division based on the economic hierarchy is a strong phenomenon in tea garden lives. It's time for the entire nation to reflect on the contextual realities in tea gardens, to mitigate the persisting problems and challenges with a wise approach. Between 1<sup>st</sup> January 2006 to 31<sup>st</sup> March 2007, 571 deaths were reported due to poverty, hunger, malnutrition, and basic health amenities. "Of the 571 deaths, 465 people died in their dilapidated homes, in other words, no medical attention in hospitals was available in the case of 80% of the deaths" (Mukhia 80). It's a fact that the average people are in confusion about the history and heritage of these tribes. The outer appearance of the tea garden often deceives the world. The reality is completely different from what is shown. It will not be an exaggeration to compare the labourers working in the tea gardens with the serfs in the medieval age or slave labours in the cotton, rubber, tobacco, and sugarcane plantations in America, Oceania, the Caribbean, and in some other islands.

### **The Peripheral Portrait: Writing as Witness**

History, ethnicity, society, religion, practices, cultures, and customs have been documented on different platforms over a period of time, but it mostly remains in local languages. With the changing facets of time, the history of this region needs to be taught, needs to be written, and needs to be evaluated. In various forms of writing, right from colonial to contemporary times, the tea garden has appeared in two different ways; some romanticized it while the others have explored the day-to-day lives and the plight of its people. In today's time, marginalization of the smaller and endangered ethnicities is a great concern and the experiences of the peripheral people are giving birth to the rise of subaltern voices. It was the Nepali writers after independence, who being influenced by the socialistic trends have depicted the real-life situations of the tea gardens to some extent. The social philosophy of the tea garden is beautifully expressed in the writings of Indra Bahadur Rai, Rabindra Kumar Moktan, Badri Narayan Pradhan, Mohan Dukhun, Indra Sundas, and others. Missionaries have a significant contribution to the spread of education. Their accounts, memoirs, travelogues, and ecclesiastical documents reveal great detail on the life and lore of indentured laborers and local ethnic tribes. A Baptist document at Champaguri Church reveals the history of conversion. "Writings related to tea gardens were not uncommon but they lacked designation. So, we have thought of giving them a shape and a name by classifying them under a class. The expression of tea garden life in the words of truth and beauty has led to the birth of a unique variety of literature revolving in the periphery of tea gardens which we have named 'Tea Garden Literature' (Mukhia, vii). This tea garden literature is a creative excavation of their own

heritage and the literary depictions of the experiences of the tea garden workers have acquired great significance. This kind of writing will always be relevant and will remain of great importance in understanding the tea garden as well as its people.

### Conclusion

Comparative race studies are the outcome of anthropological divisions of humankind and based on certain biological features, anthropologists have divided human beings primarily into three major races, such as Caucasoid, Mongoloid, and Negroid. Out of these three major races, five thousand ethnic groups have derived in this world. However, the European Union in its declaration has rejected such artificial classifications by stating that this kind of arbitrary division will apartheid human beings in a greater way. This is the Mongoloid fringe of India, tribal ethnicities of Austro-Asiatic origin having a distinct language, religion, culture, practices, habits, and customs had always been alienated into this land. All the persisting issues of migration, diaspora, deterritorialization, and the sense of insecurity are the prevalent phenomenon among them. "Deterritorialization, in general, is one of the central forces of the modern world since it brings laboring populations into the lower class sectors and spheres of relatively wealthy societies" (Appadurai 301). Projecting the people from this vibrant region under the umbrella terms such as Adivasi, tea-tribes, tribal and others are not justifiable to the ethnic minorities and their culture, nor it is acceptable in the discourse of human sciences. There are more things to explore in this region beyond being considered a natural paradise. It's time for the entire nation to look at the tea gardens as it is, leaving apart the stereotypes.

---

Department of English  
Banaras Hindu University (U.P.) 221005

### References -

- Appadurai, Arjun. "Disjuncture and Difference in the Global Cultural Economy." *Theory, Culture & Society*, vol. 7, no. 2-3, June 1990, pp. 295-310, doi:[10.1177/026327690007002017](https://doi.org/10.1177/026327690007002017).
- Biswas, P and Suklabaidya, C. *Ethnic Life Worlds in North-East India: An Analysis*. New Delhi: SAGE Publications, 2006
- Bhowmik, Sharit K. "Ethnicity and Isolation: Marginalization of Tea Plantation Workers. *Race/Ethnicity: Multidisciplinary Global Contexts*, vol. 4, no. 2, Indiana University Press, 2011, pp. 235-53, <https://doi.org/10.2979/racethmulglocon.4.2.235>.
- Fanon, Frantz. *The Wretched of the Earth*. New York: Grove Press, 1963
- Mishra, Tilottama (ed.). *Oxford Anthology of Writings from North-East India: Poetry and Essays*. New Delhi: Oxford University Press, 2011
- Mukhia, Terence. *Tea Garden Literature*. New Delhi: Sahitya Akademi, 2017
- Tirkey, Lalit P. "Scheduled Communities of North Bengal Tea Gardens: Unintended Consequences or Politics of Exclusion." *Politics of Exclusions and Inclusions in India: Construing Commonalities and Complexities*, New Delhi: Authors Press, 2016

# **Share of Educational Loan Non-performing Assets in Total Loan Non-performing Assets Disbursed By Nationalized Banks in Madhya Pradesh: An Analysis**

---

*Anuradha Gupta, D.K Nema*

---

## **Introduction**

Education is a strong weapon to strengthen the society. Education educates human being and enhances to think big and reinforce analytical power of the individuals. Education is the instructional process that intended to inclusive development of personalities, providing with essential tools to take part in routine activities of the world. As it dismisses illiteracy and enriches moral values in the entities. Education is used as vibrant tool for the expansion, progress and empowerment of Human Resources through the worldwide. Education is the fundamental prerequisite of democracy; it impacted the overall human resource development and economic growth of the homeland. Nationwide and state level policies are framed to support financially to the borrowers that dream to fly and enjoy with higher education but economically weaker. Meanwhile Indian government endeavors to provide primary education universally to all in the nation, higher education is gradually moves to the province of private sector. Need for institutional funding required with the rising cost of higher education in the market and higher education cost increases due to the progressively decrement in government subsidies. Resultant, development of Model Education Loan Scheme by Indian government with the consultation of Indian Bank Association and Reserve Bank of India to economically assist to the Indian student to fulfil their higher study dreams globally at their desired place<sup>1</sup>. The potential employment opportunities dwindled after ward the successful accomplishment of higher education leads to non-payment of student loans turned into Non-Performing Assets<sup>2</sup>.

## **Objective**

- To study the cause and effect of Non-Performing Assets due to Education Loan in Nationalized Banks in Madhya Pradesh.
- To analyze the share of Educational Loan's Non-Performing Assets in Total Loan's Non-Performing Assets disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh during 2014-15 to 2021-22.

### Hypothesis

**H<sub>0</sub>:** There is no significant share of Educational Loan Non-Performing Assets in Total Loan's Non-Performing Assets disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh.

**H<sub>1</sub>:** There is significant share of Educational Loan Non-Performing Assets in Total Loan's Non-Performing Assets disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh.

### Research Methodology

The researcher uses secondary data resources to achieve the objective of the study such as share of Educational Loan Non-Performing Assets in Total Loan Non-Performing Assets disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh, published by State Level Bankers Committee (SLBC); Bank wise statistical table regarding share of Educational Loan Non-Performing Assets in Total Loan Non-Performing Assets is represented in the paper. To prove the hypothesis of the study, researcher uses some of statistical test such as correlation and t test. Correlation is applied to test the relationship and degree of correlation of coefficient between both the variables and t test (also popularized with the name 'student test' and t statistics) are used to test the significance of the share of Educational Loan's Non-Performing Assets in Total Loan's Non-Performing Assets disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh for the period of eight years from 2014-15 to 2021-22.

### Non-performing Assets In Banking Sector and Education Loan Sector In India

#### Non-Performing Assets

Loans or advances that are in default or in arrears are classified as non-performing assets (NPAs). When principal or interest payments are late or missed, a debt is in arrears. When the lender considers the loan agreement to be broken and the borrower or debtor is unable to fulfil his obligations, the loan is in default. The conception of NPAs emerged in India after Reserve Bank of India introduced reforms in the financial sector during the year 1991 to reflect a bank's true financial health in accordance with the recommendations of Committee on Financial System headed by Shri. M. Narasimham. Non-performing assets are those that failed to bring in any income or returns for the bank for a predetermined period of time.

Financial institutions use this classification for loans and advances that are overdue and don't have any interest or principal payments. A red flag is displayed if an account is overdue for more than one month, and an NPAs is declared if it is overdue for longer than two months. This is why the Reserve Bank of India introduced the Special Mention Accounts (SMA) category in January 2014, which shows early signs of stress from borrower failure to fulfil their debt commitments within the specified days<sup>3</sup>.

| SMA Category | Classification basis                                                    |
|--------------|-------------------------------------------------------------------------|
| SMA0         | Principal or Interest not Overdue but showing incipient signs of stress |
| SMA1         | Principal or Interest Overdue for 31 to 60 days                         |
| SMA2         | Principal or Interest Overdue for 61 to 90 days                         |

Source: Annual report of 2014-15 of Ministry of Finance

### **Characteristics of Non-Performing Assets**

- After the borrower has failed to make payments for an extended period of time, non-performing assets (NPAs) are recorded on the balance sheet of the bank.
- NPAs cost the lender financially, and a high number of NPAs over time may alert regulators that the bank's financial stability is in peril.
- NPAs can be categorized as a substandard asset, doubtful asset, or loss asset, depending on the duration of time overdue and possibility of repayment of loan.
- Lenders have options to recoup their losses, including by seizing any collateral or selling the loan to a collection agency for a significant discount<sup>4</sup>.

### **Types of Non-Performing Asset (NPAs)**

As per RBI guideline, banks usually classify non-performing assets into two broad categories as Gross Non-performing Assets (GNPAs) and Net Non-Performing Assets (NNPAs).

#### **1. Gross NPAs:**

Gross non-performing assets (GNPAs) refers to the sum total of all bad debts (classified as per the RBI guidelines as on balance sheet date) that the banks have to be failed in collecting from aspirants or the borrowers have failed to honor their contractual obligations of paying the loan amount with interest.

#### **2. Net NPAs:**

The amount left over after subtracting the provision for doubtful and unpaid debts from the total of defaulted loans is known as the net non-performing asset (NNPA). It is the real loss of student loan debt. The true cost to banks is revealed by net NPAs.

Net Non-Performing Assets = Gross NPAs – (Interest debited to borrower and not recovered and not recognized as income and kept in interest suspense) – (Amount of provision held in respect of NPAs) – (Amount of claim received and not appropriate)

OR

**Net Non-Performing Assets** = Gross NPA – (Balance in Interest Suspense account + DICGC/ECGC claims received and held pending adjustment + Part payment received and kept in suspense account + Total provisions held)<sup>5</sup>

The central bank's guidelines require banks to make sizeable provisions against NPAs because the number of NPAs on Indian banks' balance sheets is enormous and the process of recovery and writing them off takes a long time. Because of this, there is a significant difference between Gross and Net NPAs<sup>6</sup>.

### **Classification of Assets:**

As per RBI guidelines, banks are classifying their assets into two broader categories i.e., Performing Assets and Non-Performing Assets. Performing Assets includes Standard assets and Non-Performing Assets includes Sub-Standard assets, Doubtful assets and Loss assets. where:

- For the term loans, interest and/or principal instalments are overdue for more than 90 days;
- When it comes to overdraft or cash credit advances, the account is considered to be "out of order" if the outstanding balance exceeds the sanctioned limit or drawing power continuously for 90 days, there have been no credits for 90 days as of the balance sheet date, or the credits are insufficient to cover the interest debited during the same time.

- However, net-non-performing asset does not have a grace period and is calculated and categorized as a net non-performing asset right away in relation to bills purchased/discounted, the bill remains past due for a period of more than 90 days. Bank balance sheets generally include non-performing assets. Here are some briefings of Performing and Non-Performing Assets:

| Performing Assets     |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                 |
|-----------------------|-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| Standard Asset        | Normal Flow of Income and bank hold only normal risk                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                            |
| Non-Performing Assets |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                 |
| Sub-standard Asset    | <p>With effect from March 31, 2005, Sub-standard Asset are those which</p> <ul style="list-style-type: none"> <li>has remained as NPAs for a period of <b>less than or equal to 12 months</b>.</li> <li>have credit weaknesses that endanger the liquidation of the debt.</li> <li>there are also possibility of incurring and sustaining some losses if the deficiencies are not corrected.</li> </ul>                                                         |
| Doubtful Asset        | <p>With effect from March 31, 2005, A doubtful Assets are those which</p> <ul style="list-style-type: none"> <li>remained as a sub-standard asset <b>for a period of 12 months</b>.</li> <li>has all the weakness characteristics as defined for the sub-standard assets.</li> <li>Additionally, the weakness makes full liquidation or collection based on currently known facts, conditions and values which are highly doubtful and questionable.</li> </ul> |
| Loss Asset            | <ul style="list-style-type: none"> <li>A loss asset that has been identified by the bank's internal auditors and reserve bank of India's external auditors but the amount has not been written off fully.</li> <li>It is uncollectible.</li> <li>Have little value of assets such as continuance or maintenance of assets (as a bankable asset is not warranted or acceptable though there may be some salvage or recovery value).</li> </ul>                   |

### **Causes of non-performing Assets in Banking Sector**

As per RBI study conducted in the year 1999 over 800 top NPAs accounts of 17 banks, there are two factors responsible for high level of NPAs in Indian banking sector. These factors are Internal and External.

#### **Internal Factors**

1. Alteration of funds for the expansion/diversification/modernization
2. Implementation of new projects
3. Endorsing associate concerns
4. Time and Cost is overrun at the time of project implementation
5. Lack of co-ordination amongst lenders
6. Funds borrowed are not utilized as for it was borrowed
7. Managerial insufficiencies
8. Incomplete or faulty documentation

#### **External Factors**

1. Ineffective recovery trial
2. Willful defaults
3. Natural calamities
4. Industrial sickness
5. Accidents and natural calamities etc.
6. Amendments in government policies from time to time

### **Causes of Non-Performing Assets in Education loan sector**

Student loans becoming NPAs is the system failing in getting back the loan. There are some reasons for Non-Performing Assets in education loan sector which are as follows:

1. Unemployment
2. Underemployment (mismatch between fees for course and salary for job offered)
3. Willful defaults
4. Weak recovery policy
5. Amendments in government policies
6. Recession/Pandemic
7. Demonetization
8. Comparatively low merit (causes for not getting job or accomplishment of job with unsatisfactory salary)

### **Effects of Non-Performing Assets**

Effects of NPAs can be observed by emphasizing over non-performing assets or loans placed in the balance sheet viz,

- The non-payment of interest or principal amount of loan reduces the cash flow of lender, which disrupts budgeting and lowers the earnings.
- The Loan loss provisions, which are made to cover potential losses may reduce the capital available to issue subsequent loans.
- The Actual losses from non-performing assets are calculated and written off against the earnings.

### **Writing off Non-Performing Assets**

According to Section 43(D) of the Income Tax Act of 1961, interest income

related to any categories of bad or doubtful debts that may be prescribed, taking into account the RBI's guidelines regarding such debts, is subject to taxation in the previous year in which it is credited to the bank's profit and loss account or received, whichever is first.

- This clause does not apply to the previously-mentioned provisioning requirements. In other words, the money set aside to cover NPAs in the manner described previously is not eligible for tax deductions.
- As a result, the banks should either make all necessary provisions in accordance with the RBI's rules or write off such advances and claim such applicable tax benefits by developing an appropriate methodology in consultation with their auditors or tax experts. Recoveries made in these accounts must be offered for tax purposes in accordance with the regulations<sup>7</sup>.

### **Share of Educational loan Non-performing Assets In Total Loan non-performing Assets Disbursed By Nationalized Banks In Madhya Pradesh**

The public sector banks were badly suffering from rising NPAs in student loan debt. Due to the government's declaration that public sector banks cannot refuse education loans to any deserving and meritorious students; public sector banks issue a significant portion of education loans. Banks adopts the model education loan programme developed by the Indian Banks Association (IBA) which provides a 15years repayment period, when disbursing education loans to the borrowers. After study completion, there is a one-year moratorium period for repayment under this plan. Further, the moratorium on payments can be extended 2-3 times during the life cycle of education loan on account of spells of unemployment or underemployment. The study explores the share of Educational Loan's NPAs in Total Loan's NPAs disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh for last eight years duration 2014-15 to 2021-22. Here, total loan refers to the all types of loan credited by Indian banks. To easily observe and understand this study, tabular information is represented in table number 1 and the data are collected from the State Level Bankers Committee's annual report of 2014-15 to 2021-22.

**Share of Educational Loan Non-Performing-Assets in Total Loan Non-Performing-Assets  
disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh during 2014-15 to 2021-22  
Table:1**

| Name of Bank              | 2014-15        |                  |                         | 2015-16      |               |                         | 2016-17      |                |                         |
|---------------------------|----------------|------------------|-------------------------|--------------|---------------|-------------------------|--------------|----------------|-------------------------|
|                           | NPAs of EL     | NPAs of TL       | % of EL NPAs in TL NPAs | NPAs of EL   | NPAs of TL    | % of EL NPAs in TL NPAs | NPAs of EL   | NPAs of TL     | % of EL NPAs in TL NPAs |
| <b>1</b>                  | <b>2</b>       | <b>3</b>         | <b>4</b>                | <b>5</b>     | <b>6</b>      | <b>7</b>                | <b>8</b>     | <b>9</b>       | <b>10</b>               |
| Allahabad Bank            | 539            | 33730            | 1.598                   | 512          | 46919         | 1.091                   | 663          | 108847         | 0.609                   |
| Andhra Bank               | 7              | 1813             | 0.386                   | 8            | 1904          | 0.420                   | 13           | 4848           | 0.268                   |
| Bank of Baroda            | 306            | 26109.17         | 1.172                   | 1291         | 65929         | 1.958                   | 807          | 118030         | 0.684                   |
| Bank of India             | 955            | 35267            | 2.708                   | 6461         | 67953         | 9.508                   | 1874         | 85471          | 2.193                   |
| Bank of Maharashtra       | 220.52         | 13081.56         | 1.686                   | 288          | 18697         | 1.540                   | 770          | 59167          | 1.301                   |
| Canara Bank               | 198            | 9947.43          | 1.990                   | 347          | 18995         | 1.827                   | 436          | 39403          | 1.107                   |
| Central Bank of India     | 1115.5         | 44038.59         | 2.533                   | 1525         | 99785         | 1.528                   | 1761         | 117512         | 1.499                   |
| Corporation Bank          | 117            | 1135             | 10.308                  | 51           | 12156         | 0.420                   | 56           | 6222           | 0.900                   |
| Dena Bank                 | 182            | 6631             | 2.745                   | 189          | 11370         | 1.662                   | 199          | 23105          | 0.861                   |
| IDBI Bank Limited         | 10.48          | 2640.02          | 0.397                   | 16           | 76454         | 0.021                   | 10           | 55382          | 0.018                   |
| Indian Bank               | 0              | 3738.64          | 0                       | 0            | 4215          | 0                       | 19           | 3517           | 0.540                   |
| Indian Overseas Bank      | 8.95           | 17166.97         | 0.052                   | 20           | 17817         | 0.112                   | 15           | 15290          | 0.098                   |
| Oriental Bank of Commerce | 0              | 10072            | 0                       | 389          | 34087         | 1.141                   | 413          | 36667          | 1.126                   |
| Punjab and Sindh Bank     | 0              | 3089.2           | 0                       | 82           | 3865          | 2.122                   | 60           | 4028           | 1.490                   |
| Punjab National Bank      | 601            | 63386            | 0.948                   | 551          | 81031         | 0.680                   | 426          | 112586         | 0.378                   |
| State Bank of India       | 16.07          | 158709.15        | 0.010                   | 397          | 111401        | 0.356                   | 1551         | 119839         | 1.294                   |
| Syndicate Bank            | 198            | 5753             | 3.442                   | 216          | 19550         | 1.105                   | 297          | 20922          | 1.420                   |
| Uco Bank                  | 8              | 39134            | 0.020                   | 458          | 72460         | 0.632                   | 887          | 65065          | 1.363                   |
| Union Bank of India       | 720.13         | 41019.76         | 1.756                   | 816          | 65727         | 1.242                   | 832          | 70969          | 1.172                   |
| United Bank of India      | 11             | 642.49           | 1.712                   | 0            | 0             | #DIV/0!                 | 33           | 8584           | 0.384                   |
| Vijaya Bank               | 0              | 694              | 0                       | 15           | 2218          | 0.676                   | 22           | 2644           | 0.832                   |
| Bhartiya Mahila Bank      | -              | -                | -                       | -            | -             | -                       | 0            | 7              | 0                       |
| <b>Total</b>              | <b>5213.65</b> | <b>517797.98</b> | <b>1.007</b>            | <b>13632</b> | <b>832533</b> | <b>1.637</b>            | <b>11144</b> | <b>1078105</b> | <b>1.034</b>            |

| Name of Bank              | 2017-18      |                |                         | 2018-19      |                |                         | 2019-20      |                |                         |
|---------------------------|--------------|----------------|-------------------------|--------------|----------------|-------------------------|--------------|----------------|-------------------------|
|                           | NPAs of EL   | NPAs of TL     | % of EL NPAs in TL NPAs | NPAs of EL   | NPAs of TL     | % of EL NPAs in TL NPAs | NPAs of EL   | NPAs of TL     | % of EL NPAs in TL NPAs |
| 1                         | 2            | 3              | 4                       | 5            | 6              | 7                       | 8            | 9              | 10                      |
| Allahabad Bank            | 485          | 51013          | 0.951                   | 2019         | 77754          | 2.597                   | 1940         | 126105         | 1.538                   |
| Andhra Bank               | 14           | 5472           | 0.256                   | 22           | 8444           | 0.261                   | 36           | 10008          | 0.360                   |
| Bank of Baroda            | 951          | 148180         | 0.642                   | 917          | 164565         | 0.557                   | 932          | 224318         | 0.415                   |
| Bank of India             | 633          | 137278         | 0.461                   | 1007         | 241573         | 0.417                   | 4659         | 345204         | 1.350                   |
| Bank of Maharashtra       | 234          | 73795          | 0.317                   | 861          | 83658          | 1.029                   | 207          | 63290          | 0.327                   |
| Canara Bank               | 521          | 41342          | 1.260                   | 645          | 57044          | 1.131                   | 488          | 72458          | 0.673                   |
| Central Bank of India     | 1970         | 167930         | 1.173                   | 2719         | 217121         | 1.252                   | 3297         | 215508         | 1.530                   |
| Corporation Bank          | 135          | 15392          | 0.877                   | 167          | 16347          | 1.022                   | 129          | 25388          | 0.508                   |
| Dena Bank                 | 267          | 31121          | 0.858                   | 261          | 30573          | 0.854                   | -            | -              | -                       |
| IDBI Bank Limited         | 5            | 121041         | 0.004                   | 62           | 139681         | 0.044                   | -            | -              | -                       |
| Indian Bank               | 20           | 15953          | 0.125                   | 12           | 5583           | 0.215                   | 20           | 7151           | 0.280                   |
| Indian Overseas Bank      | 14           | 23422          | 0.060                   | 7            | 24877          | 0.028                   | 25           | 23311          | 0.107                   |
| Oriental Bank of Commerce | 343          | 43309          | 0.792                   | 298          | 53402          | 0.558                   | 382          | 72358          | 0.528                   |
| Punjab and Sindh Bank     | 55           | 4914           | 1.119                   | 90           | 6902           | 1.304                   | 47           | 8930           | 0.526                   |
| Punjab National Bank      | 892          | 211571         | 0.422                   | 2068         | 323018         | 0.640                   | 2961         | 341414         | 0.867                   |
| State Bank of India       | 2518         | 100161         | 2.514                   | 1523         | 530545         | 0.287                   | 2454         | 409520         | 0.599                   |
| Syndicate Bank            | 237          | 27318          | 0.868                   | 310          | 32632          | 0.950                   | 236          | 25294          | 0.933                   |
| Uco Bank                  | 936          | 69170          | 1.353                   | 1535         | 114769         | 1.337                   | 1084         | 117665         | 0.921                   |
| Union Bank of India       | 893          | 95349          | 0.937                   | 1031         | 105912         | 0.973                   | 1019         | 126492         | 0.806                   |
| United Bank of India      | 18           | 13240          | 0.136                   | 26           | 5392           | 0.482                   | 34           | 6574           | 0.517                   |
| Vijaya Bank               | 30           | 3809           | 0.788                   | 44           | 8049           | 0.547                   | -            | -              | -                       |
| <b>Total</b>              | <b>11171</b> | <b>1400780</b> | <b>0.797</b>            | <b>15624</b> | <b>2247841</b> | <b>0.695</b>            | <b>19950</b> | <b>2220988</b> | <b>0.898</b>            |

| S.N | Name of Bank          | 2020-21      |                |                         | 2021-22 (upto dec.) |                |                         | Mean of NPAs of EL | Mean of NPAs of TL | Mean Rank of NPAs of TL |
|-----|-----------------------|--------------|----------------|-------------------------|---------------------|----------------|-------------------------|--------------------|--------------------|-------------------------|
|     |                       | NPAs of EL   | NPAs of TL     | % of EL NPAs in TL NPAs | NPAs of EL          | NPAs of TL     | % of EL NPAs in TL NPAs |                    |                    |                         |
|     | <b>1</b>              | <b>2</b>     | <b>3</b>       | <b>4</b>                | <b>5</b>            | <b>6</b>       | <b>7</b>                | <b>8</b>           | <b>9</b>           | <b>10</b>               |
| 1   | Bank of Baroda        | 666          | 230047         | 0.290                   | 879                 | 207198         | 0.424                   | 843.63             | 7                  | 148047.02               |
| 2   | Bank of India         | 523          | 316353         | 0.165                   | 1973                | 330327         | 0.597                   | 2260.63            | 2                  | 194928.25               |
| 3   | Bank of Maharashtra   | 692          | 44035          | 1.571                   | 83                  | 50056          | 0.166                   | 419.44             | 9                  | 50722.45                |
| 4   | Canara Bank           | 637          | 110698         | 0.575                   | 1198                | 114300         | 1.048                   | 558.75             | 8                  | 58023.43                |
| 5   | Central Bank of India | 3710         | 177692         | 2.088                   | 2950                | 187804         | 1.571                   | 2380.94            | 1                  | 153423.82               |
| 6   | Indian Bank           | 22           | 109800         | 0.020                   | 1341                | 181133         | 0.740                   | 179.25             | 10                 | 41386.33                |
| 7   | Indian Overseas Bank  | 11           | 13940          | 0.079                   | 35                  | 14124          | 0.248                   | 16.99              | 12                 | 18743.50                |
| 8   | Punjab and Sindh Bank | 66           | 9716           | 0.679                   | 42                  | 10467          | 0.401                   | 55.25              | 11                 | 6488.90                 |
| 9   | Punjab National Bank  | 3499         | 480490         | 0.728                   | 4277                | 479254         | 0.892                   | 1909.38            | 3                  | 261593.75               |
| 10  | State Bank of India   | 2846         | 393602         | 0.723                   | 1983                | 476591         | 0.416                   | 1661.01            | 4                  | 287546.02               |
| 11  | Uco Bank              | 1571         | 104932         | 1.497                   | 776                 | 101562         | 0.764                   | 906.88             | 6                  | 85594.63                |
| 12  | Union Bank of India   | 1093         | 189017         | 0.578                   | 1473                | 215278         | 0.684                   | 984.64             | 5                  | 113720.47               |
|     | <b>Total</b>          | <b>15336</b> | <b>2180322</b> | <b>0.703</b>            | <b>17010</b>        | <b>2368095</b> | <b>0.718</b>            | <b>13635.08</b>    |                    | <b>1420218.56</b>       |

**Source:** Compiled data from State Level Banker's Committee's report of Madhya Pradesh duration 2014-15 to 2021-22

EL - Education Loan

TL - Total Loan

NPAs – Non-Performing Assets

Table number 1 reveals the study regarding share of Education Loan's Non-Performing-Assets in Total Loan's Non-Performing-Assets disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh during 2014-15 to 2021-22. To simplify the table number 1, a new table number 2 are prepared with the same targets for same duration which discloses the aggregate share of Education Loan's NPAs in Total Loan's NPAs for combined eight years from 2014-15 to 2021-22.

Table: 2

**Share of Educational Loan Non-Performing-Assets in Total Loan Non-Performing-Assets  
disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh during 2014-15 to 2021-22**

Amount in Lacs

| Financial Year      | NPA of EL        | NPA of TL          | % of EL NPAs in TL NPAs |
|---------------------|------------------|--------------------|-------------------------|
| 2014-15             | 5213.65          | 517797.98          | 1.007                   |
| 2015-16             | 13632            | 832533             | 1.637                   |
| 2016-17             | 11144            | 1078105            | 1.034                   |
| 2017-18             | 11171            | 1400780            | 0.797                   |
| 2018-19             | 15624            | 2247841            | 0.695                   |
| 2019-20             | 19950            | 2220988            | 0.898                   |
| 2020-21             | 15336            | 2180322            | 0.703                   |
| 2021-22 (upto Dec.) | 17010            | 2368095            | 0.718                   |
|                     | <b>109080.65</b> | <b>12846461.98</b> | <b>0.849</b>            |

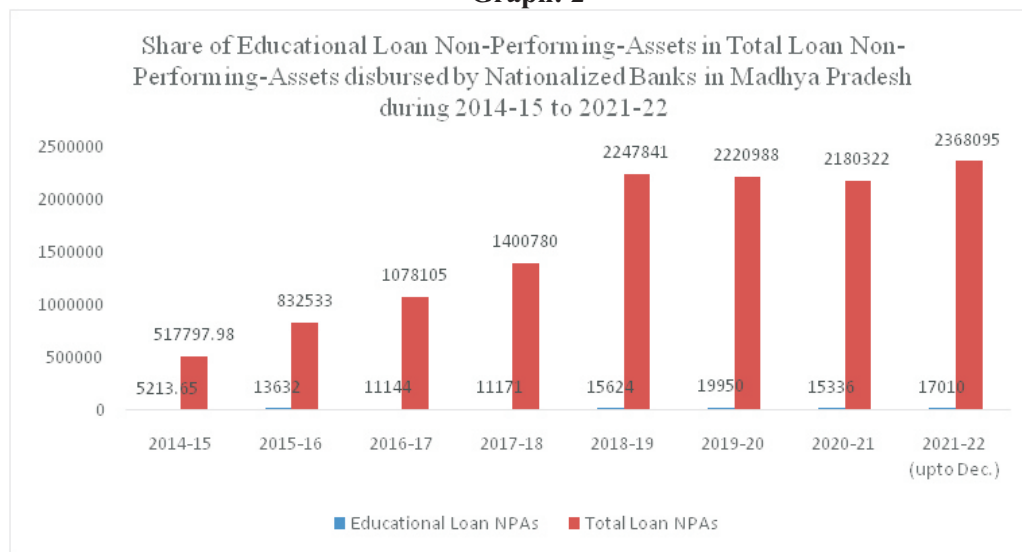
Source: Table 1

EL - Education Loan

TL - Total Loan

NPA - Non-Performing Assets

Graph: 2



Source: Table 2

Table 2 shows the share of Education Loan's NPAs in Total Loan's NPAs disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh from the financial year 2014-15 to 2021-22. Share of Education Loan's NPAs in Total Loan's NPAs is more than 5 times of share of education loan disbursal in total loan disbursal by public sector banks in Madhya Pradesh as per data of table number 1. It means NPAs of Education Loan in Madhya Pradesh is much more than of education loan disbursal. Table number 2 discloses that share of Education Loan's NPAs in Total Loan's NPAs mounted to 1.637 % in 2015-16 from 1.007 % in 2014-15 due to more disbursal of student loan in the state (more of low-ticket size loan where no collaterals are needed). During the survey, SBI bank manager said that collateral free education loan distribution, unemployment and underemployment etc. are some of the major reasons behind rising of non-performance assets in education loan field in the state. Suggestions during the survey reveals that banks starts avoiding of low ticket size loan distribution in the state to control NPAs in the study loan field and its' effect can be seen in further years that share of education loan NPAs continues to decrease from 1.637 % in 2015-16 to 1.034 % in 2016-17, 0.797 % in 2017-18, 0.695 % in 2018-19, 0.703 % in 2020-21 and 0.718 % in 2021-22 but slightly increases in 2019-20 with 0.898 % due to open more accounts for availing loan without the repayment of previous loan accounts and amount.

Major cause of increasing NPAs in public sector banks are frauds (willful default), lenient management, underemployment, unemployment etc. To save this sinking boat, major steps were taken by Indian government in the previous year (2020-21) like merger and amalgamation of many of poorly performing banks with other banks in India.

| Correlation between Non-Performing Assets of Education Loan and Non-Performing Assets of Total Loan disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh during 2014-15 to 2021-22 |                    |                    |
|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|--------------------|--------------------|
| Table:3                                                                                                                                                                         |                    |                    |
| Amount in Lacs                                                                                                                                                                  |                    |                    |
| Name of Banks                                                                                                                                                                   | Mean of NPAs of EL | Mean of NPAs of TL |
| Bank of Baroda                                                                                                                                                                  | 843.63             | 148047.02          |
| Bank of India                                                                                                                                                                   | 2260.63            | 194928.25          |
| Bank of Maharashtra                                                                                                                                                             | 419.44             | 50722.45           |
| Canara Bank                                                                                                                                                                     | 558.75             | 58023.43           |
| Central Bank of India                                                                                                                                                           | 2380.94            | 153423.82          |
| Indian Bank                                                                                                                                                                     | 179.25             | 41386.33           |
| Indian Overseas Bank                                                                                                                                                            | 16.99              | 18743.50           |
| Punjab and Sindh Bank                                                                                                                                                           | 55.25              | 6488.90            |
| Punjab National Bank                                                                                                                                                            | 1909.38            | 261593.75          |
| State Bank of India                                                                                                                                                             | 1661.01            | 287546.02          |
| Uco Bank                                                                                                                                                                        | 906.88             | 85594.63           |
| Union Bank of India                                                                                                                                                             | 984.64             | 113720.47          |
| r bet <sup>n</sup> mean of NPAs of EL and TL                                                                                                                                    | 0.832              |                    |
| n                                                                                                                                                                               | 12                 |                    |
| df                                                                                                                                                                              | 10                 |                    |
| t test                                                                                                                                                                          | 4.748              |                    |
| Source: Table 1                                                                                                                                                                 |                    |                    |

**Note\*:**  $r = \text{correl}(\text{array 1}, \text{array 2})$

$df = (n-2)$

$t \text{ test} = (r/\sqrt{1-r^2}) * \sqrt{n-2}$

EL – Education Loan

NPAs – Non-Performing Assets

TL – Total Loan

r – Correlation

bet<sup>n</sup> – Between

n – Number of paired observations

df – Degree of Freedom

### **Testing of hypothesis:**

Table 3 prepared by the researcher based on the information available in table number 1. The table number 3 has tried to find the relation between Education Loan Non-Performing Assets and Total Loan Non-Performing Assets disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh during 2014-15 to 2021-22 and also tries to know that the relationship is either significant or not. To find the relation between both of the variables, simple correlation (Karl-Pearson's coefficient of correlation) has been calculated and to test the level of significance of coefficient of correlation, t test has been applied. Here, 5% the level of significance is to be taken into consideration (leaving 1 % of level of significance) because the study has not been experimented in laboratory (not such type of requirement of this study). It means the work done here is on 95 % level of Confidence.

Observation of the study discloses that there is a **High** limited degree of correlation i.e., **0.832** (above + .75 and upto +.90) between Education Loan NPAs and Total Loan NPAs disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh during 2014-15 to 2021-22. On the other hand, level of significance can be tested and known by comparing the critical and calculated value of t test. The critical value of 't' test at 5% level of significance and for 10 Degree of Freedom is **(2.228)**<sup>\*</sup>. Since the calculated value of t is **(4.748)** which is more than its critical value **(2.228)**. Resultant, the Null Hypothesis ( $H_0$ ) is **Rejected** and Alternative hypothesis ( $H_1$ ) is **Accepted**. It means **there is significant relation between Non-Performing Assets of Education Loan and Non-Performing Assets of Total Loan** disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh in preceding eight years during the financial year 2014-15 to 2021-22.

### **CONCLUSIONS**

Observation of the study rooted that there is a strong relationship between Education Loan Non-Performing Assets and Total Loan Non-Performing Assets disbursed by Nationalized Banks in Madhya Pradesh. As per table 3 analysis, it is found that top four banks which have higher share of Non-Performing Assets (NPAs) in total loan that also indicating the higher share of Non-Performing Assets (NPAs) in Education Loan sector. Reversely, the banks that have lower share of NPAs in Total Loan also have lower share of NPAs in Education Loan sector.

Table 3 illustrated that State Bank of India is the bank positioned first in case of Non-Performing Assets in Total Loan while placed fourth in Non-Performing Assets of Education Loan. Punjab National Banks positioned second in containing NPAs in Total Loan and third in NPAs of Education Loan, followed by Bank of India that captured third

position in NPAs of Total Loan and second in NPAs of Education Loan and Central Bank of India ranked fourth in NPAs of Total Loan and first in NPAs of Education Loan.

Contrary, Punjab and Sindh Bank recovery rate of loan is high resultant, lowest NPAs (12<sup>th</sup> position) in case of Total Loan and ranked 11<sup>th</sup> in case NPAs of Education Loan. Next Indian Oversea Bank gain 11<sup>th</sup> in NPAs of Total Loan and 12<sup>th</sup> place in NPAs of Education Loan and Indian Bank positioned 10<sup>th</sup> in both the cases of NPAs of Total Loan and Education Loan. Conclusively it is true to say that there is a high positive correlation between the NPAs of Education Loan and Total Loan in Nationalized Banks in Madhya Pradesh during preceding eight years from 2014-15 to 2021-22.

Higher rate of NPAs reveals that the banks should improve their credit recovery procedures over the years because higher NPAs reduces overall profitability of the banking sector. Public sector banks in Madhya Pradesh have considerably higher level of NPAs in total loan as well as in education loan sector. NPAs need to be reduced and controlled in order to increase the overall profit ability of Nationalized Banks in Madhya Pradesh.

---

*Department of Commerce,*

*Doctor Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar (M.P.) - 470003*

#### **References -**

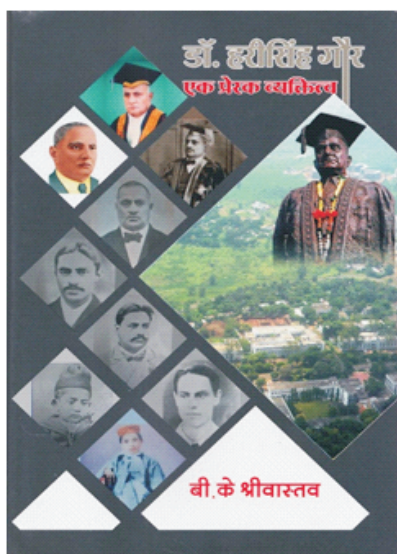
1. Gupta, A., & Nema, D. (2022). *Critical Evaluation of Disbursement of Education Loan by Nationalized Banks in India. International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT)*, h200 to h214.
2. Begum, G., & Viswanadham, P. (2018). *Management of NPA in higher education loans: A study on public sector banks in India. National Journal of Multidisciplinary Research and Development*, 72-78.
3. Abilash. (2021). *Non-performing assets (npa): a review of (npa) mechanism and its emerging menace in indian public sector banks. National Conference on Commerce and Trade: Marian College, India.*
4. Tuovila, A. (2021, October 07). *Investopedia. Retrieved from Investopedia website: <https://www.investopedia.com/>*
5. Das, Sulagna ; Dutta, Abhijit;. (2014). *a study of NPA of Public Sector Banks in India. IOSR Journal of Business and Management*, 75-83.
6. Kumar, S. (2014). *Non Performing Assets: An Indian Perspective. International Journal of Academic Research in Economics and Management Sciences*, 175-187.
7. *Master Circular - Prudential Norms on Income Recognition, Asset Classification and Provisioning pertaining to Advances. (2014). Retrieved from DBOD-MC On IRAC Norms: <http://www.iibf.org.in/documents/IRAC.pdf>*
8. Shukla, S., & Gupta, K. (n.d.). *Statistical Analysis. Agra: Sahitya Bhawan Publications.*
9. *State Level Bankers Committee. (2015 to 2022). Retrieved from State Level Bankers Committee web site: <http://www.slbcmadhyapradesh.in/>*

## पुस्तक-समीक्षा

### जीवनी और इतिहास के बीच एक सम्भव संवाद

(डॉ. हरीसिंह गौर : एक प्रेरक व्यक्तित्व)

आशुतोष



26 नवम्बर, 1870 को शौर्य-भूमि बुंदेलखंड के सागर में जन्में, और राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के समकालीन, माँ भारती के अमर सपूत एवं विलक्षण प्रतिभा के धनी डॉ. हरीसिंह गौर का सम्पूर्ण जीवन ज्ञान, संकल्प और पुरुषार्थ की जय-गाथा है। उनकी शिक्षायी प्रतिबद्धता की कर्तव्य यात्रा सागर, जबलपुर, नागपुर की पगडंडियों से होते हुए विश्वविख्यात केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ज्ञान शिखर तक पहुँचती है।

केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में रहते हुए गौर साहब ने अकादमिक उपाधियों को हासिल करने के साथ ही देश-दुनिया के समकालीन मुद्दों के प्रति अभिनव समझ तथा अपनी रचनात्मक प्रतिभा से अपने समय के अनेक बौद्धिकों, राजनीतिज्ञों और रचनाकारों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। हरीसिंह गौर जिन्हें बचपन में ही उनके अध्यापक ने 'आग का तिलगा' कहा था, वे भारतीय आकांक्षा का सूर्य बन भारत वापस आये। शुरुआत के कुछ वर्षों तक आपने जबलपुर, नागपुर जैसे शहरों में नौकरियाँ की और कुछ ही समय बाद

सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देकर एक अधिवक्ता के रूप में काम शुरू किया। इस कार्य में बहुत जल्दी ही अखिल भारतीय स्तर पर उनकी ख्याति बन गयी साथ ही विधि-शास्त्र की अनेक पुस्तकों के रचनाकार के रूप में भी वे अपने जीवन काल में ही किम्वदंती बन गये थे।

ऐसे डॉ. सर हरीसिंह गौर के जीवन और कर्म को तथ्यपरक ढंग से प्रो. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव ने "डॉ. हरीसिंह गौर : एक प्रेरक व्यक्तित्व" पुस्तक में प्रस्तुत किया है। प्रो. श्रीवास्तव एक प्रशिक्षित इतिहास लेखक

समीक्ष्य पुस्तक : डॉ. हरीसिंह गौर : एक प्रेरक व्यक्तित्व

डी.के. प्रिंटवर्ड प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2021

मध्य भारती-83, जुलाई-दिसम्बर, 2022, ISSN 0974-0066, pp. 246-248

यूजीसी केयर लिस्ट, ग्रुप-सी (मल्टीडिसिप्लिनरी), क्र.सं.-15

है। उनका वस्तुपरक दृष्टिकोण उन्हें इतिहास का एक पूर्वाग्रह मुक्त अध्येता के रूप में प्रतिष्ठित करता है। उन्होंने गौर साहब जैसे करिश्माई व्यक्तित्व को बड़े ही मनोयोग से दर्ज किया है। यह पुस्तक डॉ. हरीसिंह गौर के समग्र जीवन-संघर्ष, उपलब्धियों और बुंदेलखंड तथा देश के लिए उनके द्वारा किये गए कार्यों का प्रामाणिक लेखा-जोखा है। इतिहास विषय से संबंधित होने के कारण ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव के लेखन की प्रविधि भी वही है। उन्होंने अपने किताब में गौर साहब से संबंधित प्रत्येक बात या तथ्य को विश्वसनीय एवं उपयुक्त सन्दर्भ के साथ रखा है। भले वह उनके सन्दर्भ में कोई चर्चित प्रकरण हो या लोक में चला आ रहा कोई किस्सा; उन्हें भी पूर्व में प्रकाशित किसी न किसी आलेख से ही संदर्भित किया है। यह पद्धति प्रो. श्रीवास्तव को एक सचेत लेखक के रूप में स्थापित करती है।

वैसे तो डॉ. हरीसिंह गौर ने 'सेवेन लाइव्ज' शीर्षक से अपनी आत्मकथा लिखी थी। जिसमें जिसमें 23 जनवरी 1944 तक का उनका जीवन दर्ज है। यह डॉ. गौर की अंतिम रचना है। गौर साहब का देहावसान 25 दिसम्बर 1949 को हुआ था, ऐसे में ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव की यह पुस्तक गौर साहब की आत्मकथा 'सेवेन लाइव्ज' में दर्ज जीवन के आगे की भी कथा है। इसे गौर साहब की प्रामाणिक जीवनी कहा जा सकता है। किताब में 15 शीर्षकों के माध्यम से सम्पूर्ण गौर चरित दर्ज है। जो लोग डॉ. गौर के अद्वितीय अवदान से परिचित हैं, वे इस बात से सहमत होंगे कि डॉ. गौर जैसे चिरागी व्यक्तित्व पर पर कुछ लिखना एक साथ आसान और मुश्किल दोनों है। यदि आप डॉ. गौर पर मनोरंजक किस्से सुनाना चाहते हैं तो यह बहुत आसान है, पर यदि आप डॉ. हरीसिंह गौर के होने के वास्तविक अर्थ से रूबरू होना और कराना चाहते हैं तो यह बहुत मुश्किल है। और इस मुश्किल से पार पाने का एकमात्र रास्ता है- लेखकीय ईमानदारी और प्रामाणिक सामग्री संकलन का बेशुमार धैर्य और परिश्रम। मुझे यह कहते हुए संतोष हो रहा है कि प्रो. श्रीवास्तव ने इस कसौटी पर खुद को सही साबित किया है। समग्र गौर जीवन चरित को एक व्यवस्थित संरचना और क्रम में बेहद जरूरी संदर्भों के साथ दर्ज करते हुए लेखक ने एक खास किस्म की वर्णन शैली का प्रयोग किया है। जिसमें कौतुहल भी है और रोचकता भी।

गौर साहब के बचपन के दिनों, युवा अवस्था के संघर्ष, ज्ञानार्जन के लिए देश-विदेश की यात्रायें और रहवास, लेखन, कविता, राजनीति, शिक्षा, समाज और विधि के क्षेत्र में उनके द्वारा किये गये कार्यों आदि को तथा उनके सम्बन्ध में उनके समकालीनों के विचारों प्रस्तुत करने में प्रो. श्रीवास्तव की निष्ठा और कौशल काबिले तारीफ है। गौर साहब के जीवन और दर्शन के साथ ही प्रो. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव ने गौर साहब से संदर्भित प्रत्येक व्यक्ति, लेखन, विचार, पुस्तकों, लेखों आदि का भी पुस्तक के आखिर में विस्तृत परिचय के साथ उल्लेख किया है। यह उनकी लेखकीय विनम्रता है। इस पूरी पुस्तक में प्रो. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव की यह विनम्रता देखी जा सकती है। लेखन में विनम्रता का अपना नफा-नुकसान होता है। जिसकी बानगी इस पुस्तक में अनेक जगह देखने को मिलती है। हर बात के लिए सन्दर्भ देने के विनम्र आग्रह ले चलते यह पुस्तक गौर साहब से संदर्भित तथ्यों का प्रामाणिक कोश ज्यादा लगती है जीवनी कम। यद्यपि कि लेखक ने गौर साहब के जीवन के जुड़े अनेक मार्मिक एवं प्रेरक प्रसंगों को उद्धरित करते हुए उसकी सरस व्याख्या भी की है। इतिहास-लेखक की दृष्टि वर्ण्य-विषय की तथ्यपरकता पर होती है और जीवनी कारकी दृष्टि अपने चरित-नायक के जीवन के मार्मिक स्थलों की पहचान और उसके वर्णन पर केंद्रित होती है। इसमें अच्छा-बुरा या सही-गलत का सवाल नहीं है। यह महज प्रस्थान विन्दु के पार्थक्य का मसला है। वावजूद इसके अपनी इस पुस्तक में प्रो. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव ने डॉ. गौर को याद करते हुए जीवनी और इतिहास जैसे दो महत्वपूर्ण माध्यमों के बीच एक सम्भव संवाद को सुलभ कराया है।

मेरी समझ से इस किताब की जरूरत तब और बढ़ जाती है जब गौर साहब के बारे में इतनी सारी बातें बिखरी पड़ी हैं, उन बातों में अंतर्विरोध भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, गौर साहब के बारे में बहुत सारे किस्से सुने-सुनाये जाते रहे हैं। जिनमें से अधिकांश का जिक्र स्वयं गौर साहब की आत्मकथा "सेवेन लाइव्ज" में या उनके सम्बन्ध में उपलब्ध अन्य प्रामाणिक आलेखों आदि में भी नहीं मिलता है। ऐसे में एक आपद धर्म की तरह प्रो. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव ने सुनी-सुनाई चर्चाओं में तथ्यपरक ढंग से प्रभावी हस्तक्षेप किया है।

इस लिहाज से किताब का शीर्षक 'डॉ. हरीसिंह गौर : एक प्रेरक व्यक्तित्व' भी अत्यंत मानीखेज है। डॉ. गौर बुन्देली आकांक्षा के सूर्य थे, और सूर्य अपनी आग से सूर्य होता है इसलिए जब सूर्य के बारे में लिखना हो तो कागज पर नहीं तो न सही पर दिल में वही आग होनी चाहिये। डॉ. गौर ने तत्कालीन औपनिवेशिक राजसत्ता, ज्ञान सत्ता और न्याय सत्ता के विरुद्ध एक देशी दर्प को खड़ा और प्रतिष्ठित किया। ऐसा करने के लिए पहले तो उन्होंने स्वयं को अपने पूर्वाग्रहों से आजाद किया। क्योंकि मुक्ति का स्वप्न पूर्वाग्रहों से छुटकारे के बिना सम्भव नहीं है।

उदहारण के तौर पर इस किताब में दर्ज उस प्रसंग का जिक्र करना ज्यादा मुफीद रहेगा जब डॉ. गौर ने एक बूढ़ी माँ की फरियाद पर ई.ए.सी. की नौकरी से त्यागपत्र देकर वकील का गाउन पहन लिया था। एक सुविधाजनक जिंदगी के बरक्स एक जद्दोजहद की जिन्दगी का चयन कर लिया। लेकिन इसी मुश्किल निर्णय ने डॉ. गौर को डॉ. गौर बनाया। मुझे यह प्रसंग बहुत प्रेरित करता है। अपने इस निर्णय से गौर साहब ने हमें यह सिखाया है कि कुछ बड़ा करना है तो हमें अपने 'कम्फर्ट जोन' से बाहर निकलना ही होगा। खुद को 'डी-क्लास' करने और सुरक्षित दायरे के बरक्स एक-एक अपरिभाषित रस्ते पर निकल पड़ने का साहस ही हमें मनुष्यता के अप्रतिम उजाले से साक्षात्कार करा सकता है। इस किताब में प्रो. श्रीवास्तव ने गौर साहब के चिरागी व्यक्तित्व के ऐसे बहुत सारे प्रसंगों का यथातथ्य जिक्र किया है। वे प्रसंग प्रेरक भी हैं और बरसों से घिर आये बेचैन अंधियारे में सुराख करती हुयी रौशनी की एक मुकम्मल आहट भी हैं। डॉ. हरीसिंह गौर पर केन्द्रित यह पुस्तक निश्चित रूप से आने वाली पीढ़ियों के लिए एक प्रेरक उदहारण के रूप में कार्य करेगी।

किताब में लेखक के इतिहासकार एवं साहित्यकार दोनों तरह के व्यक्तित्व का संतुलित वैभव देखने को मिलता है। मेरी समझ यह है कि इतिहास और साहित्य दोनों एक दुसरे के पूरक हैं। साहित्य के बिना इतिहास बदहवास हो जाता है और इतिहास के बिना साहित्य बंजारा। दुनिया के सर्वोत्तम इतिहास ग्रन्थ साहित्य के गुण सूत्रों के साथ रचे गये हैं। श्रीवास्तव जी ने अब तक इतिहास की तो बहुत सारी किताबें लिखीं हैं, पर अपनी इतिहासपरक तथ्यात्मकता और साहित्यिक सरसता के साथ लिखी गयी डॉ. हरीसिंह गौर की जीवनी के साथ वे अब इतिहास बनाने की ओर बढ़ रहे हैं। आखिरकार इतिहास में इतिहास लिखने का नहीं इतिहास बनाने का आनन्द दर्ज होता है।

इस दृष्टि से वे डॉ. गौर के सच्चे वारिस हैं। डॉ. गौर जैसे शख्सियत के वारिस जाति, धर्म, गोत्र और क्षेत्र से तय नहीं किये जा सकते, डॉ. गौर के वारिस तो उनके विश्वविद्यालय में अध्ययनरत, कर्मरत वह प्रत्येक व्यक्ति है जिसने बेहतर मनुष्यता और सत्य के उजाले के प्रति खुद को समर्पित कर दिया है।

प्रो. बी.के. श्रीवास्तव सीधे-सज्जन मानुष हैं, उनकी ही तरह उनकी यह किताब भी है। इसमें किसी प्रकार की कोई कलात्मक लेखकीय कसरत आपको नहीं मिलेगा। सच को सच की ही तरह कहा गया है, और यदि ऐसा है तो एक लेखक के तौर पर यह कोई मामूली बात नहीं है।

---

हिन्दी विभाग

डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय

सागर-470003 (म.प्र.)